शुभाशीष/ शुभकामना

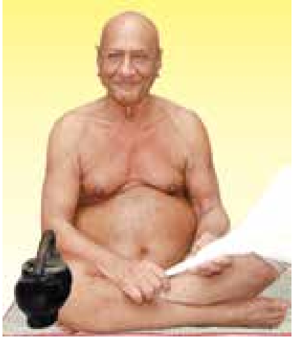

प.पू. सिद्धांत चक्रवर्ती, राष्ट्र संत
आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज

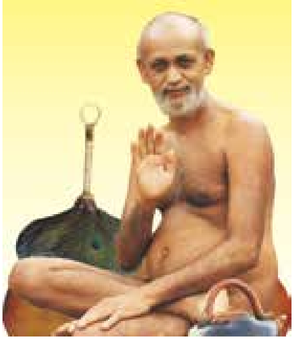

प.पू. प्राकृत भाषा चक्रवर्ती,
आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज

खवगराय-सिरोमणी

(क्षपकराज शिरोमणि)

ग्रंथकार :

आचार्य वसुनंदी मुनि

परम पूज्य सिद्धांत चक्रवर्ती, राष्ट्रसंत, श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज की 100 वीं जन्म जयंती महोत्सव के उपलक्ष्य में प्रकाशित

ग्रंथ : खवगराय-सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)

ग्रंथकार : प्राकृतभाषा चक्रवर्ती आचार्य श्री वसुनंदी मुनि

सम्पादन : आर्यिका वर्धस्व नंदनी

संस्करण : प्रथम (सन् 2025)

प्रतियाँ : 1000

ISBN : **978-93-94199-76-7**

मूल्य : **₹210/-** (Not for Sale)

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति (रजि.)

प्राप्ति स्थल : C/117, बेसमेंट, सेक्टर 51, नोएडा-201301
मो. 9971548889, 8800091252

मुद्रक : मित्तल इंडस्ट्रीज़, नई दिल्ली
मो. 9312401976

Visit us @ www.acharyavasunandi.com

भावाभिव्यक्ति

–आचार्य वसुनंदी मुनि

दिवाकर का दिव्य प्रकाश, सुधाकर की मनोरम ज्योत्सना, पुष्पों की सुरभि, वृक्षों के फल, सरिताओं का जल, ग्रीष्मकाल में प्रवाहमान शीतल वायु युक्त मेघाच्छिन्न आकाश, मनोहर प्रकृति तथा धरती की उदारता और क्षमाभाव जिस प्रकार सर्वहितंकर सुखद शांतिदायक होता है उसी प्रकार साधुजनों का सान्निध्य, उपदेश, दृष्टिपात आसन्नभव्यों के लिए हितसंवर्द्धक होता है। भारतीय वसुधा अध्यात्म की उर्वरा शक्ति से परिपूरित, संयम की खाद से पुष्ट, सम्यग्ज्ञान के दिव्य प्रकाश से आलोकित, इंद्रिय निरोध रूप उभयतप रूपी सौरभ से समन्वित अनादिकाल से आज तक सतत् प्रवाही मंदाकिनी की तरह प्रतिष्ठा को प्राप्त हुई है।

जिस प्रकार क्षारीय पदार्थों से वस्तुओं की स्वच्छता व शुद्धता प्राप्त होती है उसी प्रकार साधु पुरुषों के दिव्यदर्शन से भद्र परिणामी प्राणियों का चित्त भी शुद्ध व स्वच्छ हो जाता है। जिस प्रकार पुष्पों की सुरभि प्राणियों के नासासंपुटों को तृप्त करने वाली होती है, मिष्ट फलों से उदर तृप्ति होती है, यथेच्छ चित्र वा दृश्यावलोकन से युगल नयन संतुष्ट होते हैं, कर्णप्रिय ध्वनि रूपी अमृत का पान कर श्रोत्र धन्य-धन्य हो जाते हैं वा यथेच्छ पदार्थों का संस्पर्श भी हर्षातिरेक से उत्पन्न रोमांच करने वाला होता है उसी प्रकार साधु पुरुषों के मधुर, सारगर्भित, परमहितकारी, सत्यानुस्यूत, सर्वज्ञ वचनानुगामी दिव्य अमृतोपमा उपदेश भव्यजनों के

चित्त को आह्लाद व परमानंद देने वाला होता है, मिथ्यात्रय के सघन तिमिर का विनाशक है, भ्रम रूपी रोगों को विनष्ट करने लिए परमौषधि है, विषय–कषाय से सताये प्राणियों के लिए सुखद आश्वासन है, पाप पंक में निमग्न प्राणियों के लिए सुदृढ़ व सम्यक् अवलंबन है, संयम, तप व प्रशस्त ध्यान के लिए उर्वराशक्तियुक्त खाद व शीतल, मधुर जल के समान प्रतिभासित होता है।

जिस प्रकार नारी की शोभा शील से, परिवार की शोभा सुसंस्कारों से, समाज की शोभा एकता से, राज्य की शोभा सत्यवादी नृपति से, योगी की शोभा अध्यात्मवृत्ति से, तपस्वी की शोभा इच्छा निरोध वा जितेंद्रिय वृत्ति से, धर्म की शोभा अहिंसा से, कुल की शोभा सुपुत्र से, इक्षुदंड की शोभा मिष्ट रस से, सुमनों की शोभा मनोहर सुरभि से, दीप की शोभा दिव्य प्रकाश से, साधक की शोभा वैराग्य से, सद्‌गृहस्थ की शोभा प्रभुभक्ति व सुपात्रदान से भारतीय संस्कृति में स्वीकृत है उसी प्रकार मानव व प्राणीमात्र की शोभा उत्तमसाधकों से वा आत्मवेत्ता परम समाधि में लीन योगियों से है।

ध्यान, ध्याता, ध्येय व ध्यान के समीचीन फल से युक्त शुद्धात्मानुभवी यतिजन पृथ्वी पर वरदान हैं। वे साधु–संत मात्र साधु ही नहीं, धरती के देवता हैं, उनकी पूजा, भक्ति स्तुति, सेवा, वैयावृत्ति, उपकरण व अभयदान भव्यजीवों के लिए चिंतामणि रत्न, कल्पवृक्ष, कामधेनू एवं पार्श्वमणि की तरह से मनोवांछित फल प्रदान करने वाले हैं तथा आत्मा को परमात्मा बनाने वाले हैं।

जिस प्रकार प्राण के बिना देह, विद्युत् के बिना विद्युत उपकरण, जल के बिना सरिता, घृत के बिना क्षीर, रत्नों के बिना रत्नाकर, मोती के

बिना सीप, धर्म के बिना जीवन व्यर्थ होता है उसी प्रकार ऋषि, मुनि, संत, श्रमण, अनगार,भदंत, क्षपणक व साधुजनों के बिना प्राणिजगत् को मानना चाहिए।

जब धरती की प्यास तीव्र होती है तब श्याम सघन मेघ उस संतप्त पृथ्वी को संतृप्त करते हैं। क्षुधातुर बालक माँ की याद करते हुए रुदन करता है तो माँ वात्सल्यपूर्वक अमृतोपमा दुग्धपान कराती है। कोकिलाओं के आनंद के लिए आम्र मंजरी विकसित होती है, षट्पद वा मधुकर समूह की अदम्य प्यास को बुझाने के लिए पुष्प अपना सौरभ बिना शर्त के लुटाते हैं। कहने का अभिप्राय है जब, जहाँ, जिस वस्तु या वातावरण की आवश्यकता होती है तब वहाँ उस वस्तु या वातावरण को प्रकृति स्वयं निर्मित करती है।

जब-जब वसुधा पर धर्म ह्रासमान अवस्था को प्राप्त होता है, प्राणी सदाचार से विमुख होने लगता है, मानवता कराहने लगती है, पापों का साम्राज्य बढ़ने लगता है, निरंतर दु:खों की मूसलाधार वर्षा होने लगती है, दुष्टजन शिष्टों को पीड़ा देकर आनंदानुभूति करते हैं, दया, करुणा, अहिंसा, मैत्री, परोपकारादि सिसकने लगते हैं तब धर्म के संवर्द्धन, पाप के विसर्जन, धर्मात्माओं को आलंबन, दुष्टों के निराकरण, मोक्षमार्ग के प्रवर्तन, कुमार्ग के निरोध हेतु तीर्थंकरादि महापुरुष समय-समय पर क्रमश: अवतार लेकर के मानवता का उद्धार करते हैं।

तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र, कामदेव, कुलकरादि महापुरुषों के समान इस पंचमकाल में आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज जैसे महापुरुष, महान आत्माएँ जन्म लेती हैं। जो संसार के बहाव में बहते नहीं बल्कि युगप्रवर्तक बनकर संसार को समीचीन दिशा व दशा प्रदान करते

हैं। जिस प्रकार सूर्य की किरण से आलोकित एक समीचीन पगडंडी कोई भी पथिक स्वीकार करता है, अनिवर्त रूप से गतिमान् हुआ वह पथिक यदि अन्य बाधाओं का त्याग करके निःकांक्षित रूप से गतिशील रहता है तब वह गन्तव्य तक निश्चित पहुँच ही जाता है। उसी प्रकार संतों की कृपादृष्टि तथा वरद व्यक्तित्व उनके जीवन को सुखद, शांतिमय व मंगलमय रूप प्रदान करने वाला होता है।

जिस प्रकार एक मंगलकलश को मंगलरूप देने में कुंभकार की अहम् भूमिका होती है उसी प्रकार व्यक्ति को, समाज को, पूरी सृष्टि को मंगल रूप प्रदान करने में संतों की अहम् भूमिका अनादिकाल से स्वीकार की गई है। यही संतों का परिवेश होता है जिसे प्राप्त करके अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के परिणाम भी बदलने लगते हैं, जिनके परिवेश में पहुँचते ही एक क्रूर परिणामी जीव के परिणाम भी शांत हो जाते हैं। क्या हमने और आपने पढ़ा या सुना नहीं कि जिस वन में अवधिज्ञान आदि ऋद्धिधारी महामुनिराज तपस्या करते थे वहाँ नदी किनारे एक ही घाट पर सिंह व गाय पानी पीते थे, साँप नेवले खेलते थे, सूखे तालाबों में पानी भर आता था, सूखे वृक्ष भी हरे-भरे हो जाते थे। यह केवल किंवदंतियाँ नहीं हैं, ये सत्य के पाषाणों पर अनुभूति की कसौटी से कसे हुए शिलालेख हैं, इन्हें कभी भी मिथ्या नहीं किया जा सकता।

आचार्य गुरुदेव श्री विद्यानंद जी मुनिराज भी कहा करते थे कि जहाँ साधुओं के बैठने से एकेन्द्रिय जीव भी आनंद को प्राप्त करते हैं वहाँ आज ना सही एकेन्द्रिय किंतु पंचेन्द्रिय जीव तो आनंदित हो जाने चाहिए। समाज में एकता व अखंडता वृद्धिंगत होनी चाहिए। मैत्री, प्रेम, समन्वयता व सौहार्द का वातावरण बनना चाहिए।

क्या सूर्य किसी व्यक्ति विशेष का होता है, क्या चंद्रमा की चाँदनी किसी व्यक्ति विशेष के लिए होती है, क्या आकाश पर कोई व्यक्ति अपना एक प्रभुत्व सदा-सदा के लिए बनाकर रख सकता है, क्या पृथ्वी के किसी खंड को कोई व्यक्ति अपना सर्वदा मानकर रख सकता है? अरे! जो चक्रवर्ती भी बनते हैं, वे भी कालखंड के लिए होते हैं, उसके बाद जब उनका जीवन समाप्त हो जाता है तब दूसरे चक्रवर्ती आकर उसी छह खंड को अपना बताते हैं। पुनः यही क्रम सदा चलता ही रहता है। यही क्रम अनादिकाल से उपकार और उपकारी का संबंध बनाये रखे हुए है। इसी शिष्य व गुरु की परंपरा में, उपासक व आराध्य की परंपरा में अनेक ऋषियों, मुनियों ने इस पृथ्वी पर अवतार लेकर के अपनी दिव्य चरणरज से भूतल को पवित्र किया। अपनी वाणी के माध्यम से अमृत का सिंचन किया और अपने दिव्यदर्शन से नेत्रों को तृप्ति प्रदान की। उनके स्वरूप का चिंतन करने से मन आप्लावित हो जाता है। उन्हीं संतों की श्रृंखला में एक संत हैं जिन्हें हम सदियों तक स्मरण करेंगे, इतिहास सहस्राब्दियों तक जिन्हें भुला नहीं सकता वे संत हैं **''आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज''।**

दिव्यात्माओं के व्यक्तित्व व कृतित्व को आबद्ध करने में शब्द भी अक्षम हैं। आचार्यश्री के व्यक्तित्व, व्यवहार, चर्या व भंगिमा इत्यादि सभी में एक प्रकृष्ट सौन्दर्य बोध के दर्शन होते हैं। उनके विराट व्यक्तित्व को लिपिबद्ध करना सीप की अंजुलि में सागर भरने के समान है। जन्म से लेकर समाधिपर्यन्त उनका समस्त जीवनवृत्त उन्हें युगसृष्टा के नाम से उद्घोषित करता है।

आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज ने जिनशासन प्रभावना के स्तंभ स्थापित कर जो चिरकालीन जीवंतता उसे प्रदान की उसका सीमांकन शब्दों में कभी नहीं किया जा सकता। आचार्यश्री नीतिवान्, साहित्यकार, विभिन्न कलाओं के ज्ञाता, अहिंसा के पालक व प्रचारक इत्यादि के साथ उच्चकोटि के साधक भी थे। उनका अनुशासित जीवन नारियल के समान बाहर से कठोर व अंतरंग में ऋजु परिणामों से युक्त होने से बहुत मृदु व सरल था। राजनेताओं, मूर्धन्य विद्वानों व श्रेष्ठीवर्ग ने आचार्यश्री के जीवन से शुभ प्रेरणा प्राप्त की। इतना ही नहीं अच्छे कार्यकर्ताओं ने समाजसेवा करने की विलक्षण कार्यशैली व अप्रतिम प्रतिभा का जो रूप प्राप्त किया वह उनके ही निर्देश व अनुशासित कार्यशैली का सुपरिणाम था।

प्रवचन में उनके अनुशासित वचन, सौहार्दपूर्ण वाक्य और लालित्यपूर्ण कोमलकान्त पदावलियाँ विशाल जनसमूह के आकर्षण का कारण थीं। वे किसी भी विषय पर धाराप्रवाह प्रमाणिक व जन-मन उद्बोधक वाणी बोलते थे। अपने व्यक्तित्व को पिघलाकर दूसरों के अंतरंग तक उतारने वाले "मुनि विद्यानंद" असंख्य लोगों के हृदय दीपकों को भव्यालोक प्रदान करते थे। सामान्यजन हो या श्रेष्ठी वर्ग, निर्धन हो या धनवान्, कृषक हो या श्रमिक, व्यापारी हो या ब्राह्मण, प्रतिभावान हो या राजनेता, कलाकार हो या साहित्यप्रेमी सभी उनके प्रवचनों में ऐसे आकर्षित हो चले आते थे जैसे कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि से गोपिकाएँ खिंची चली आती थीं। वे अनुपम वक्तृत्व शैली के श्रेष्ठ जीवंत उदाहरण थे।

ओजस्सी तेजस्सी, वच्चस्सी पहिदकित्तियायरिओ।
सीहाणुओ य भणिदो, जिणेहिं उप्पीलगो णाम।।480।।

–(भगवती आराधना)

जो ओजस्वी हो, तेजस्वी हो, वाक् संयमी हो, प्रभूतकीर्ति वाला हो, सिंह के समान उग्र पुरुषार्थी हो, उत्पीड़क अर्थात् दूसरों की माया रूपी शल्य को निकालने वाला हो, सिंह के समान उग्र पुरुषार्थी हो, वह ही श्रेष्ठ वक्ता हो सकता है। आचार्य अकलंकदेव स्वामी ने 'महाकुलीन' होना भी आवश्यक माना है। ऐसा वक्ता नव-नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा का धनी होता है।

उन निरीह संत के प्रवचनों में सांप्रदायिक भावनाओं, जाति, पंथवाद की बेड़ियों को तोड़कर प्रत्येक वर्ग दृष्टिगोचर होता था। वास्तव में आचार्यश्री संप्रदाय पुरुष न होकर एक राष्ट्रसंत और विश्वपुरुष थे। वे अपने प्रवचनों में एक श्वांस में ही वेद, उपनिषद्, गीता, बाइबिल, कुरान, धम्मपद और समयसारादि समस्त आगम ग्रंथ उच्चरित कर देते थे। उनका ज्ञान सामान्य के धरातल से आकाश के समान बहुत ऊँचा था।

वे अध्यात्म के मर्मज्ञ, भूगोल व इतिहास के विशेषज्ञ संगीत के पंडित एवं चित्रकलादि लोकशास्त्र के विविध विषयों के सम्यक् ज्ञाता थे। जैन वाङ्मय के उद्यान में केली करने वाले वे अनेकांत की मंगलमूर्ति थे।

उनकी आध्यात्मिक वृत्ति बाह्य क्रियाओं की निवृत्ति रूप सरल, सहज शुद्धात्मानुभूति एवं स्वात्म संवेदन रूप थी। उनके प्रशस्त मुखमंडल पर झलकते हुए भाव अत्यंत धवल, शुभ्र वर्गणाओं से युक्त आभामंडल बरबस ही किसी को भी धर्म की ओर अनुप्रेरित करने वाला था।

उनके कक्ष में प्रवेश करते हुए ऐसा लगता था जैसे किसी शांति–मूर्ति आतापनादि योग में संलग्न किन्हीं महाऋषि के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। एकांतवादी विद्वान् एवं मोह के निविड अंधकार में फंसे हुए भारत की राजधानी में वास करने वाले भोगी– विलासी अमीरवर्ग उनसे कुछ प्राप्त करने की लालसा में प्यासे चातक की तरह से उनके दर्शनों के लिए घंटों तक प्रतीक्षा भी करते थे। वे बाह्य प्रभावना से अपने उपयोग को परिवर्तित कर आत्माभिमुखी होते हुए परमानंद के सागर में अवगाहन करते रहते थे।

आचार्यश्री अध्यात्म और साधना के शिखर पर रहते हुए भी अन्य जनों की मानवीय भावभूमि से सर्वथा विलग नहीं थे। वे ऐसे निर्मल दर्पण रहे जिनमें श्रमण संस्कृति प्रतिबिंबित होती थी। वे अनंत प्रेरणाओं के अजस्र स्रोत, आदर्श जीवन शैली के जीवंत उदाहरण, देश प्रेम की भावनाओं से अनुरंजित, समय के पाबंद, उत्कृष्ट साधक, ललित कला प्रेमी, ज्ञान व तप के पुंजीभूत, अहिंसा के आराधक और प्राकृत वाङ्मय के विकास के पुरोधा थे। जहाँ वे आत्मसाधना में योगीश्वर की भूमिका में थे वहीं वे मानवता के चित्रकार भी थे। संपूर्ण विश्व में अहिंसा की अमर क्रांति कर वे साधक आज भी सभी के हृदयों में जीवंत हैं। उन्होंने जिनशासन प्रभावना के जो आदर्श स्तंभ स्थापित किए हैं वे श्रद्धालुओं के द्वारा सदैव अभिवंदनीय हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ हमने किसी ख्याति, पूजा, लाभादि की आकांक्षा से नहीं लिखा अपितु भक्ति से प्रेरित होकर गुरु– गुणगान मात्र किया है। गुरु–गुण ागान आत्मविशुद्धि व गुणों की प्राप्ति में कारण भी है क्योंकि जैसी चर्चा होती है वैसी चर्या होती है। जिस प्रकार वन में जिस मार्ग से गजराज,

सिंहादि गमन कर जाते हैं वहाँ से शशक, मूषकादि भी जाने में सरलता से समर्थ हो ही जाते हैं, उसी प्रकार इस लेखन के क्षेत्र में महान् आचार्यों ने गमन किया, उनकी कृपा से लघु प्राणी के समान मैं भी समर्थ हो सकता हूँ। इस ग्रंथ के लेखन में हमें बहुत आनंद की अनुभूति हुई, आशा है कि आप सबको भी इस ग्रंथ के पढ़ने में विशिष्ट आनंद की अनुभूति होगी।

अलमति विस्तरेण

''सर्वेषां मंगलं भवतु''

जैनम् जयतु शासनम् विश्वकल्याणकारकम् **ॐ अर्हं नमः**

क्षपकराज और कृतिकार

संसार में प्रत्येक प्राणी जन्म व मरण के ओर-छोर के मध्य जीवन यापन करता है किन्तु वह जीवन कोई आधेय बनकर जीता है तो किसी का जीवन आधार स्वरूप होता है। आधार के अभाव में आधेय की संस्थिति होना असंभव ही है। जैसे घृत का आधार दुग्ध, ऊष्णता का अग्नि, शीतलता का जल, सौरभ का सुमन, छह द्रव्यों का आकाश, मोक्ष का रत्नत्रय, रत्नत्रय का सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्दर्शन का आधार आत्मा है उसी प्रकार जिनधर्म प्रभावना व जिनशासन के आधारस्तम्भ स्वरूप थे 'परम पूज्य आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज'। आचार्यश्री आर्हती परम्परा में वीतराग और अनुराग की संयुति थे। जहाँ एक ओर आचार्यश्री ने प्रभावशाली वक्तृत्व कला से समाज के सभी वर्गों को सम्यक् बोध दिया और लाखों की भीड़ को अनुशासित करने वाले कुशल नेतृत्व कर्त्ता हुए तो दूसरी ओर भीड़ में भी निज नीड़ का अनुभव कर एकत्व के दिव्य आलोक में आत्मान्वेषी भी। आगम के सर्वांगीण अध्येता साधक आचार्य श्री विद्यानंदजी मुनिराज **''मुनीनाम् अलौकिकी वृतिः''** जैसी सूक्ति को जीवंतता प्रदान करने अलौकिक युग पुरुष हुए।

आचार्यश्री का वह अन्तिम उपदेश आज भी मानस पटल पर उत्कीर्ण है जो उन्होंने परम पूज्य आचार्य भगवन् गुरुदेव श्री वसुनंदी जी मुनिराज के विनय युक्त निवेदन पर कहा था कि **''मैं जीवनभर आनंद से रहा, आज भी आनंद में हूँ और आगे भी आनंद से ही जाऊँगा।''** वस्तुतः आचार्यश्री का जीवन अनूठा ही था जो स्वयं के साथ जन-जन के आनंद का व विशुद्धि का कारण बना। वास्तविकता में विद्या का आनंद लेने वाले हमारे दादागुरु का ज्ञान फलीभूत हुआ जो कि आगम सम्मत ही था।

परम पूज्य आचार्य गुरुदेव श्री वसुनंदी जी मुनिराज की वात्सल्यानुकंपा से आचार्यश्री के आनंदपूर्ण क्षणों का साक्षी बनने का परम सौभाग्य भी हमें प्राप्त हुआ एवं सीखने मिला वात्सल्य, विनय, अनुशासन और विद्याध्ययन का जीवंत पाठ।

आचार्य श्री में एक **राष्ट्रसंत** की राजनैतिक उच्च स्तरता के साथ ही एक अनासक्त योगी एवं दृढसंयमी के दर्शन भी सहज प्राप्त होते हैं और आध्यात्मिकता की गहराई देख उनके आध्यात्म क्षितिज में उड़ान भरने का साहस भी। आचार्यश्री सिद्धान्त के षट्खण्डों पर विजयी अर्थात् पारगामी होने से सिद्धान्त चक्रवर्ती हुए तो आगमोक्त विशुद्ध समाधि कर **''क्षपकराज शिरोमणि''** के रूप में आत्महितैषी साधकों लिए प्रेरक निमित्त भी।

ऐसे क्षपकराज शिरोमणि, सिद्धान्त चक्रवर्ती, राष्ट्रसंत, परम पूज्य आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज आदर्शोत्तम महान व्यक्तित्व की सल्लेखना पूर्ण उत्तम समाधि के निकटतम दृष्टा होने का पुण्य अवसर हमें प्राप्त हुआ, इसके लिए हम अपने गुरु जी के सदैव ऋणी रहेंगे।

22 सितम्बर 2019 का वह दिवस जब उन अनुत्तर साधक की समाधि का वास्तविक स्वरूप हृदयंगम हुआ तब चेतना में नवीन ऊर्जा का संचार हुआ। ऐसी श्रेष्ठ समाधि इस युग के ज्येष्ठ व श्रेष्ठ आचार्यश्री के तपोपूर्ण, निश्छल आदर्श जीवन की परिचायक ही थी। कहा भी है–

तपस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च।
पठितस्य श्रुतस्यापि, फलं मृत्युः समाधिना।।16।।

–(मृत्यु महोत्सव)

तपे गए तप का, पाले गए व्रत का और पढ़े गए शास्त्र का एक ही फल है समाधिपूर्वक मरण का वरण।

कुछ अल्पज्ञ सल्लेखना को आत्मघात समझते हैं, वह अज्ञानी दया के पात्र हैं, अज्ञानांधकार में भ्रमित हैं। वह नहीं जानते कि सल्लेखना उपवन में खिले पुष्पों की सुरभि है तो आत्मघात सड़े-गले पदार्थों की असहनीय गंध। सल्लेखना आत्मविशुद्धि का असीमित सागर है तो आत्मघात दलदल की दु:सह पंक। एक मुक्तिद्वार है तो दूसरा नरकादि दुर्गतियों का सुगममार्ग। एक 'माँ' है तो दूसरा मातंग।

सल्लेहणो य दुविहा, अब्भंतरिया य बाहिरा चेव।
अब्भंतरा कसायेसु, बाहिरा होदि हू सरीरे।।206।।

–(भगवती आराधना)

सल्लेखना दो प्रकार की है–अभ्यंतर और बाह्य। अभ्यन्तर सल्लेखना कषायों में और बाह्य सल्लेखना शरीर में। अर्थात् कषायों को कृश करना आभ्यन्तर और शरीर को कृश करना बाह्य सल्लेखना है।

सम्यक्काय कषाय लेखना सल्लेखना –(स.सि. 7/22)

अच्छे प्रकार से काय और कषाय का लेखन करना अर्थात् कृश करना सल्लेखना है।

परम पूज्य गुरुदेव के कुशल निर्यापकत्व में दादा गुरु की क्षपकत्व की यात्रा समस्त जिज्ञासाओं का समाधान बनकर प्रस्तुत हुई और प्रत्यक्षदर्शियों के लिए साक्षात् 'तीर्थ'।

ते वि कदत्था घण्णा य हु ति जे पावकम्ममल हरणे।
ण्हायंति खवयतित्थे सव्वादर भत्ति संजुत्ता।।2000।।

–(भगवती आराधना)

क्षपक एक तीर्थ है क्योंकि संसार से पार उतारने में निमित्त है। अतः जो दर्शक सम्यक् आदर भक्ति के साथ उस तीर्थ में स्नान करते हैं वे भी कृत्य-कृत्य होते हैं तथा सौभाग्यशाली भी।

यूँ तो परम पूज्य गुरुदेव के चरण सान्निध्य में हम भी अनेक समाधियों के प्रत्यक्षदर्शी रहे। प्रत्येक समाधि स्वयं में अनुपम थी किन्तु एक दीर्घकालीन साधक की समाधि के साक्षी बनने का सातिशय पुण्य अपने पूज्य गुरुदेव की अनन्य कृपा से ही जागृत हुआ। त्रय दिवसों की क्षपकराज की समतापूर्ण यमसल्लेखना की साधना देख निर्यापकाचार्य की अहम् भूमिका निभाने वाले परम पूज्य आचार्य भगवन् श्री वसुनंदी जी गुरुदेव ने उन्हें **''क्षपकराज शिरोमणि''** कहकर सम्बोधित किया।

गुरु शिष्य का यह संबंध दशरथ और राम के समान ही प्रतिभासित हुआ। परस्पर इन दोनों के स्नेह वात्सल्य का अहसास तब और गहरा हुआ जब समाधि के समय आचार्यश्री ने गुरु जी को स्मरण किया और पूज्य गुरुदेव प्राप्त संकेत से अभीभूत होते हुए पारणा करके तुरंत ही नोएडा से कड़ी में धूप में 25 किमी. विहार कर गुरु चरणों में सेवा हेतु कुन्दकुन्दभारती में उपस्थित हुए। पूज्य गुरुदेव को आचार्यश्री के लिए दिया गया वह वचन भी प्रतिक्षण स्मरण रहा जब एक गुरु ने अपने शिष्य के समक्ष तत्त्ववार्ता के दौरान कहा कि ''महाराज जी! आप मुझे वचन दो कि आप मेरी समाधि यात्रा में सहयोगी रहेंगे, यह दायित्व आपका है।'' गुरु मुख से उनकी समाधि की बात सुनना भावात्मक ही था फिर भी गुरु जी ने धैर्य और साहस का परिचय देते हुए दोनों हाथ जोड़ विनयपूर्वक कहा कि महाराज जी! यह तो मेरा कर्त्तव्य है और सौभाग्य

भी, आप निश्चिंत रहें। गुरु जी का यही संकल्प गुरु शिष्य की समीपता बनाये रखा रहा।

इसी कारण सन् 2019 का वर्षायोग गुरुजी का (ससंघ नोएडा सै. 50 में सम्पन्न हुआ। चातुर्मास के दौरान अनेक बार कुंदकुंद भारती दर्शनार्थ पहुँचने के उपरान्त जब पूज्य गुरुदेव का निर्यापकाचार्य के रूप में प्रथम बार आगमन हुआ तब एक गुरु के निष्पृहता, सर्वस्व त्याग, विशुद्धि और शिष्य के प्रति विश्वास तथा एक शिष्य की विनयशीलता, समर्पण व कर्त्तव्यनिष्ठा के साक्षात् दर्शन हुए।

पूज्य गुरुदेव द्वारा अपने गुरु को विधिपूर्वक यमसल्लेखना ग्रहण कराना, औत्तमार्थिक प्रतिक्रमण कराना, संस्तरारूढ़ कराना, प्रतिक्षण गुरु को अपलक निहारते हुए सोलहकारण आदि विषयों द्वारा संबोधन देकर उन्हें सचेत करना ये सब कुशल निर्यापकत्व का लक्षण चरितार्थ था।

भारतीय राष्ट्र की शिराओं में पुनः धर्म को संचारित करने वाले ज्येष्ठ व श्रेष्ठ संत परम पूज्य क्षपकराज शिरोमणि, सिद्धान्त चक्रवर्ती, राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज रूपी दैदीप्यमान दिव्य दिवाकर जब अस्त हुआ तब लाखों दर्शकों की भावना विशुद्ध व परिणामों की अभिव्यक्ति हुई और परम पूज्य गुरुदेव के समक्ष अनेक भव्यों का निवेदन व प्रार्थना प्रस्तुत हुई कि हे गुरुदेव! जिस साहस और धैर्य के साथ आपने अपने गुरुदेव की उत्तम समाधि कराकर एक कुशल निर्यापकत्व व आदर्शोत्तम शिष्य की भूमिका निभाई है उसी प्रकार हमारी भी उत्तम समाधि कराके हमें कृतार्थ करना।

परम पूज्य गुरुदेव की अपने गुरु के प्रति श्रद्धा, भक्ति व समर्पण देखते हैं तो विस्मय और आश्चर्य के चित्राम मानस पटल पर उत्कीर्ण हो जाते हैं कि आज भी चन्द्रगुप्त के समान गुरु भक्ति से समन्वित गुरु के साक्षात् दर्शन हो रहे हैं। प्रत्यक्ष में गुरुभक्ति करना तो प्राय: सरल होता है किन्तु दादा गुरु की समाधि में निर्यापकत्व का कर्त्तव्य निर्वहन के उपरान्त परोक्ष में गुरु भक्ति का उदाहरण अन्य प्राप्त होना दुर्लभ है।

जहाँ परम पूज्य गुरुदेव ने विभिन्न आयोजन से गुरु माहात्म्य प्रकाशित कर श्रद्धा सुमन अर्पित किये वहीं प्राकृतमय अनेक ग्रंथों की रचना के साथ ही आचार्य श्री के सम्पूर्ण जीवन पर आधारित ''खवगराय शिरोमणि'' (क्षपकराज शिरोमणि) नामक वृहदकाय प्राकृत ग्रंथ की भी रचना की। यह पूज्य गुरुदेव की गुरुभक्ति का विशुद्ध परिणाम ही है। ''खवगराय शिरोमणि'' जैसे महान ग्रन्थ का प्रणयन प.पू. आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज की जीवंतता दर्शाता है साथ ही ग्रंथ का आद्योपान्त अध्ययन दादा गुरु के प्रत्यक्ष सान्निध्य का आभास भी कराता है।

जहाँ एक गुरु (आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज) ने समाज को आ. श्री वसुनंदी जी के रूप में एक सशक्त आदर्श चेतन कृति दी तो वही एक शिष्य ने 'खवगराय सिरोमणि' जैसी महान ग्रंथ के रूप में जीवंत अचेतन कृति समाज के लिए प्रदान कर गुरुभक्ति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत कृति युगों-युगों तक भव्य जीवों के लिए संबल बनकर जीवन के हर मोड़ पर उत्साह, साहस, उमंग व सन्मार्ग के लिए प्रेरक निमित्त ही होगी और एक युग पुरुष के अनुकरणीय प्रभावशाली व्यक्तित्व की छाप संतापित हृदयों में संतोष व विशुद्धि में कारण भी बनेगी।

क्षपकराज का जीवंत व्यक्तित्व और कृतिकार का कृतित्व दोनों ही महानता के शिखरों पर फहराने वाला शाश्वत ध्वज है और दिग्दिगंत में युगों-युगों तक जिनशासन की गौरवगाथा दर्शाने वाली सर्वमान्य प्रशस्ति।

गुरु शिष्य का यह अनुपम संगम वह पावन तीर्थ है जिसमें संस्नापित प्राणी कर्म रज से विमुक्त हो विशुद्धात्मन होता हुआ सिद्ध सदन में शाश्वता विश्राम प्राप्त करता रहेगा।

प्रस्तुत ग्रंथ की रचना कर पूज्य गुरुदेव ने जनमानस पर जो अनन्य उपकार किया है उसके लिए सभी साधकगण, विद्वत्गण एवं समूची जैन समाज ही नहीं जनमानस सदैव कृतज्ञ रहेगा।

अन्ततः श्री जिनेन्द्रदेव के चरण कमलों में वंदन करके परम पूज्य ज्येष्ठ आचार्यश्री के प्रति भावपूर्ण विनयांजलि समर्पित करते हुए परम पूज्य गुरुदेव के प्रति यही भावना कि आप सम युगपुरुष से यह वसुन्धरा और पोषित रहे तथा जिनके अथक प्रयासों से यह जिनशासन रूप कल्पद्रुम पुष्पित व पल्लवित हुआ है ऐसे मेरे गुरुवर तन, मन व चेतन से सदैव स्वस्थ रहें और दीर्घजीवी हों। उनका वरदहस्त सम्पूर्ण जगती पर मंगलमय आशीषों की बरसात करता रहे।

हम भी स्वयं में अत्यन्त सौभाग्यानुभव करते हैं कि प.पू. चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज, महातपस्वी आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज, आध्यात्मयोगी आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज भारत गौरव आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज, सिद्धान्त चक्रवर्ती आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज एवं प.पू. गुरुदेव अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आ. श्री वसुनंदी जी मुनिराज की गौरवशाली निर्मल परम्परा में दीक्षित होकर

रत्नत्रय की साधना करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और हम भी साधना का सर्वश्रेष्ठ फल उत्तम समाधि को प्राप्त कर सकें।

इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, प्राकृत भाषा चक्रवर्ती, राष्ट्र हितैषी संत, आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज के श्री चरण कमल युगल में अन्तस् के श्रद्धा की गहराइयों से सिद्ध-श्रुत-आचार्यभक्ति सहित अनन्तशः नमोस्तु.....नमोस्तु.....नमोस्तु.....

इति शुभम् भूयात्

जैनम् जयतु शासनम्   विश्व-कल्याण-कारकम्   गुरु चरणाम्बुज चंचरीक

-उपाध्याय प्रज्ञानंद मुनि

ॐ अर्हं नमः

संपादकीय

एदम्हि रदो णिच्चं, संतुट्ठो होदि णिच्चमेदम्हि।
एदेण होदि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं॥

–समयसार, 206

ज्ञानमात्र आत्मा में लीन होना, इसी से संतुष्ट रहना और इसी से तृप्त होना यह परम ध्यान है। इसी से वर्तमान में आत्मा को सच्चे आनंद की प्राप्ति होती है और उसके बाद संपूर्ण ज्ञानानंद स्वरूप केवलज्ञान की भी प्राप्ति होती है।

परम पूज्य सिद्धांत चक्रवर्ती, राष्ट्र संत, दादा गुरु आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज के विषय में कथन करने से पूर्व उनकी उनके द्वारा 108 बार पठित समयसार ग्रंथ की इस प्रिय गाथा का निरूपण आवश्यक सा प्रतीत होता है, जो संभवतः उनके व्यक्तित्व वा जीवन-शैली की परिचायक है। प्रतिक्षण विद्या में आनंद प्राप्त करने वाले, विद्या प्राप्ति के लिए सभी को संप्रेरित करने वाले, चलते-फिरते विश्वविद्यालय आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज का जीवन वृत्त उनकी अलौकिकी प्रवृत्ति व विलक्षण कार्य क्षमता व युगप्रवर्तन का द्योतक है।

आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज के महान् व्यक्तित्व, जिनशासन प्रभावक कार्यादि को जानने का अवसर हमें आ. गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के द्वारा लिखित इस ग्रंथ से प्राप्त हुआ।

आचार्यश्री की स्वाध्याय में गहनतम अभिरुचि वात्सल्य, वैय्यावृत्ति, श्रेष्ठ वक्तृत्व कला, हिन्दी साहित्य पर अधिकार अनेक भाषा-विदत्व,

सहनशीलता, साधना में दृढ़ता निष्प्रमादी वृत्ति इत्यादि सुमेरु का उल्लंघन करती प्रतीत होती हैं। उनके जीवन वृत्त में लोकोपकारों की एक विशाल शृंखला समन्वित होती है, जिसे शब्दों के बंधन में बाँध पाना संभव नहीं है।

आचार्यश्री का जीवन सर्वस्व त्यागी, बहुमुखी प्रतिभा युक्त, तत्त्वसंग्रही एवं सर्व जनहितकारी व उपकारी रहा है। नियमित स्वाध्याय, प्रखर चिन्तन और तलस्पर्शी व मूलग्राही मनन के बल पर ही उन्होंने अनेक विषयों पर अपना अधिकार स्थापित किया। देश की जनता, शासन व प्रशासन सभी जिनका आश्रय पाने को आतुर थे वे मानवता के चित्रकार सदैव जन-सामान्य के बीच सभी प्रकार के जाति, संप्रदाय, मत-मतान्तरों के बंधनों से मुक्त होकर आगे बढ़े। तभी तो जैन, हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख इत्यादि सभी उनके प्रवचनों में 'तुमसे लागी लगन...' गुनगुनाते हुए दौड़े चले आते थे। आचार्यश्री जहाँ पहुँचते वहाँ से अविश्वास, घृणा, उच्च-नीचता का सांप्रदायिक विष नष्ट हुआ प्रतीत होता था। कहीं मुस्लिम तो कहीं वैष्णव आदि संप्रदायों ने आचार्यश्री के प्रवचन आयोजित कराकर उन्हें विश्वधर्म संप्रेरक के रूप में मान्यता प्रदान की।

अलबिरुनी, फर्दिनान्द मैगलन, फाह्यान, ह्वेनत्सांग, मार्कोपोलो, मेगस्थनीज आदि भारत के बड़े पर्यटक थे किन्तु आचार्य श्रीविद्यानंद जी मुनिराज की पूरब से पश्चिम व उत्तर से दक्षिण तक की विहार यात्राएँ उन्हें भी पराजित करती हैं। उसी मध्य जैनधर्म इतिहास, संस्कृति, साहित्य, पुरातात्विक सामग्री व पांडुलिपियों की गवेषणा आदि महत्वपूर्ण कार्य भी उनके द्वारा किये गए। आचार्यश्री वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य-विज्ञानी, उच्चकोटि के ज्योतिषी, वास्तुकार व गणितज्ञ भी थे।

अहिंसा की, जिनशासन की ध्वजा जो समूचे देश में आचार्यश्री ने फहरायी वह हमें आचार्य समन्तभद्र स्वामी आदि पूर्वाचार्यों का स्मरण कराती है। जैन भजन रिकॉर्डिंग, जैन पंचरंगा ध्वज, जैन प्रतीक नव-नव विषयों पर प्रवचन, विद्वानादि के उत्साहवर्धन हेतु पुरस्कार इत्यादि आचार्यश्री की ही देन है। हम अपनी कलम से यदि कुछ लिखेंगे तो ऐसा ही प्रतीत होगा जैसे एक नन्हा बालक अपने दोनों हाथों को फैलाकर समुद्र की असीमता को बतला रहा हो।

दादा गुरु आचार्य श्रीविद्यानंद जी मुनिराज का यह जीवन चरित्र जिसका सृजन पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज ने किया यह सभी के लिए एक अनुपम भेंट है। गुरु के विषय में ग्रंथ-सृजन शिष्य की गुरुभक्ति, विनम्रता आदि का घोतक है। वैसे भी आचार्य गुरुवर की अपने गुरु के प्रति भक्ति को कौन नहीं जानता, यह तो सर्व विदित है ही। गुरु की महिमा शास्त्रों में भी बहुत प्रकार से वर्णित है। गुरु की अनिवार्य आवश्यकता को मनीषियों ने निरूपित किया है-

विना गुरुभ्यो गुणवान्नरोऽपि, धर्मं न जानाति विचक्षणोऽपि।
आकर्णदीर्घोज्ज्वल-लोचनोऽपि, दीपं विना पश्यति नान्धकारे॥

-(नीतिसार)

तीक्ष्ण बुद्धि वाला गुणवान पुरुष भी गुरु के बिना उसी प्रकार धर्म का स्वरूप ज्ञात नहीं कर सकता जिस प्रकार कानों तक लंबी, सुंदर और निर्दोष आँखों वाला व्यक्ति यदि अंधकार में आँखों को फाड़-फाड़कर देखे तो भी बिना दीपक के उसे वस्तु दृष्टिगत नहीं होती।

गुरु की महिमा का प्रतिपादन करने वाले अनेक उद्धरण शास्त्रों में प्राप्त होते हैं, यथा-

गुरु दिणयरु गुरु हिमकिरणु गुरु दीवउ गुरु देउ।
अप्पहँ परहँ परंपरहँ जो दरिसावइ भेउ।।

–आ. योगींद्रदेव

जो परंपरा से आत्मा और पर का भेद दर्शाते हैं–ऐसे गुरु सूर्य हैं, गुरु ही चंद्रमा है, गुरु दीपक हैं और गुरु ही देव हैं।

जो गुरु देव, माता, पिता, भाई, बंधु, इत्यादि सभी हैं, जो संसार के कारणों के नाश का उपाय बताकर मोक्षमार्ग प्रशस्त करते हैं, उन परमोपकारी गुरु के प्रति सम्मान का भाव नहीं रखने वालों के लिए कवि शूद्रक कहते हैं–

ये सत्यमेव न गुरून् प्रतिमानयन्ति।
तेषां कथं नु हृदयं न भिनत्ति लज्जा।।

–(मुद्राराक्षस, 3/33)

यह सत्य है कि जो लोग गुरुजनों का सम्मान नहीं करते उनका हृदय लज्जाविदीर्ण क्यों नहीं हो जाता?

गुरु की गंभीरता का यशोगान करते हुए आचार्य हेमचंद्र सूरी ने कहा है–

देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारं तु सारस्वतं।
जानीते नितरामसौ गुरुकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः।
अब्धिर्लंघित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गंभीरतां।
आपाताल-निमग्न पीवरतनुर्जानाति मंदराचलः।।

पल्लवग्राही पुस्तकी विद्या से अब तक अनेकों ने वाग्देवी की उपासना की है। सारस्वत–सार को मात्र गुरुकुल–वास में निवास करके आक्लिष्ट

हुआ मुरारी कवि ही जानता है। कपिभटों ने समुद्र का लंघन तो किया लेकिन क्या उसकी गहराई को जाना? नहीं जाना। उसकी गहराई को पाताल तक डूबा हुआ महान् मंदराचल ही जानता है।

गुरुभक्तिसती मुक्त्यै, क्षुद्रं किं वा न साधयेत्।
त्रिलोकीमूल्यरत्नेन, दुर्लभः किं तुषोत्करः॥

परम पूज्य आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज जिन्हें वर्तमान में प्राकृत भाषा व ग्रंथ का उन्नायक भी कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उन्होंने राष्ट्र, अध्यात्म, नैतिक मूल्य, आचार सिद्धान्त, ज्योतिष, प्रथमानुयोग आदि के प्रति अपनी लेखनी चलायी। प्राकृत ग्रंथों के लेखन में उनकी लेखनी आज भी प्रवर्तमान है। जब विभिन्न विषयों पर मौलिक ग्रंथों की रचना गुरुदेव कराते हैं तब विचार आता है ''क्या कोष्ठबुद्धि ऋद्धिधारी मुनिराज के मस्तिष्क में अलग-अलग विषयादि के कोष्ठ इस प्रकार होते हैं जिससे उनके ज्ञान में निःशंकता व निर्मलता बनी रहती है?'' संभवतः इन शब्दों को कोई अत्यधिक भक्ति से अनुस्यूत समझे किन्तु यह प्रश्न उन सभी के मस्तिष्क में एक बार तो आएगा जिसने गुरुवर के समस्त प्राकृत साहित्य का पठन किया हो।

दादा गुरु आचार्य श्रीविद्यानंद जी मुनिराज का जन्म शताब्दी वर्ष प्रवर्तमान है जिसके अंतर्गत ग्रंथ प्रकाशन, कीर्तिस्तंभ की स्थापना आदि का कार्यक्रम चल रहा है। उसी में पूज्य गुरुदेव ने अपने गुरु के प्रति कृतज्ञता भाव से गुरु भक्ति से प्रेरित होकर प्रस्तुत ''खवगराय सिरोमणी'' नामक ग्रंथ की रचना की।

इस ग्रंथ को पढ़कर कई बार रोमांच हो आता, कभी मन में आश्चर्य की तरंग उठतीं तो कभी श्रद्धा-भक्ति की वीथियाँ हठकेलियाँ करतीं। एक

व्यक्ति ने हमसे कहा था कि “Acharya Shree Vidyanand ji Muniraj was the hero of that time.” संभवतः इन शब्दों के गांभीर्य को हम तब समझ न पाए हों किन्तु गुरुवरश्री के द्वारा रचित इस ग्रंथ को पढ़कर हम भी उन्हीं शब्दों को दोहरायेंगे।

पूज्य गुरुदेव की असीम अनुकंपा है कि उनके कारण हम आज दादा गुरु के विषय में जान पाए। यूँ तो कई बार गुरुवरश्री स्वाध्याय, प्रवचनादि में दादा गुरु के विषय में बताते हैं किन्तु इस प्रकार किन्हीं आदर्श व्यक्तित्व का जीवनचरित्र आपको सुव्रत के लिए प्रेरित करता है, गुणों के प्रादुर्भाव में निमित्त बनता है। इस ग्रंथ को पढ़कर जो आनंद हमें आया, उसको लिपिबद्ध तो नहीं किया जा सकता क्योंकि आनंद एक अनुभव है जिसका पूर्णतया प्रदर्शन संभव नहीं। किन्तु हमें आशा नहीं विश्वास है कि यह ग्रंथ आपकी आत्मविशुद्धि, दृढ़ श्रद्धा, जिनशासन के प्रति समर्पण भाव आदि में निमित्त अवश्य बनेगा।

परम पूज्य आचार्य भी वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा प्रस्तुत ग्रंथ ‘खवगराय-सिरोमणी’ गाथाओं में निबद्ध है। हमारे दादा गुरु के जीवनवृत्त का वर्णन करने वाले इस ग्रंथ के संपादन का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ, इसके लिए हम पूज्य गुरुदेव के सदैव कृतज्ञ रहेंगे। यद्यपि हममें ग्रंथ संपादन की योग्यता व साहस तो नहीं फिर भी सूर्य की चमक पाकर काँच भी वज्र सम दमक उठते हैं। हम कथंचित् जो भी कर पाए हैं वह सब गुरुकृपा का प्रतिफल ही है। आचार्य गुरुवर की यह गुरु भक्ति हम सभी के लिए जीवन के आधार स्वरूप महाशिक्षा है। गुरुभक्ति के पथ से गुजरकर ही परमात्मा से मिला जा सकता है, इस सत्यता का परिचय हमें आचार्य गुरुवर के जीवन से होता है।

आचार्य भगवन् की अविच्छिन्न लेखनी उनकी अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगिता को प्रमाणित करती है। सिद्धांत आदि के कठिन विषयों पर वा बहुजनोपयोगी सामान्य विषयों उनकी लेखनी सदैव प्रवर्तमान रहती है। यह समाज, देश वा राष्ट्र युगों-युगों तक भी उनके द्वारा प्रदान किये गए श्रुत को विस्मृत न कर सकेगा एवं शताब्दियाँ उनके प्रति अपना कृतज्ञ भाव अवश्य व्यक्त करेंगी।

प्रस्तुत ग्रंथ 'खवगराय-सिरोमणी' (क्षपकराज शिरोमणि) के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढें, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ग्रंथाध्ययन करें। जन-जन के श्रद्धापुंज परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, प्राकृत भाषा चक्रवर्ती आचार्य श्री वसुनंदी जी गुरुवर के संयम, तप, ज्ञान व साधना की सुरभि सहस्रों वर्षों तक विश्व को सुरभित करती रहे। गुरुवरश्री को आरोग्य लाभ हो एवं अपने लक्ष्य को वे शीघ्र प्राप्त करें।

परम पूज्य गुरुवरश्री के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति सहित योगत्रय की शुद्धिपूर्वक कोटिशः नमोस्तु... नमोस्तु.... नमोस्तु....

जैनम् जयतु शासनम् **विश्वकल्याणकारकम्**

श्री शुभमिति फाल्गुन कृष्ण नवमी
वीर निर्वाण संवत् 2551
शनिवार, 22 फरवरी 2025
श्री सिद्धक्षेत्र मथुरा चौरासी **-आर्यिका वर्धस्वनंदनी**

आचार्य श्री महावीरकीर्ति जी एवं आचार्य श्री देशभूषण जी : एक परिचय

पंचाचार का पालन करने वाले और शिष्यों को इसका पालन कराने वाले आचार्य कहलाते हैं। कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री वीरसेन स्वामी ने 'आचार्य' को परिभाषित करते हुए कहा है–

पञ्चविधमाचारं चरति चारयतीत्याचार्यः चतुर्दश- विद्या-स्थानपारकः एकादशांगधरआचारङ्गधरो वा तात्कालिकस्वसमय-परसमयपारगो वा मेरुरिव निश्चलः क्षितिरिव सहिष्णुः सागर इव बहिः क्षिप्तमलः सप्तभय-विप्रमुक्तः आचार्यः।

–(षट्खंडागम, 1/1/1, पृष्ठ 49)

जो दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तप और वीर्य इन पाँच आचारों का स्वयं आचरण करते हैं और दूसरे साधुओं से आचरण कराते हैं उन्हें आचार्य कहते हैं। जो चौदह विद्यास्थानों में पारंगत हैं, ग्यारह अंग के धारी हैं अथवा आचारांगमात्र के धारी हैं अथवा तत्कालीन स्वसमय और परसमय में पारंगत हैं, मेरु के समान निश्चल हैं, पृथ्वी के समान सहनशील हैं, जिन्होंने समुद्र के समान मल अर्थात् दोषों को बाहर फेंक दिया है और जो सात प्रकार के भय से रहित हैं उन्हें आचार्य कहते हैं। और भी कहा है–

पवयण-जलहि-जलोयरणहाया-मलबुद्धिसुद्धछावासो।
मेरुत्व णिप्पकंपो सूरो पंचाणणो वज्जो।।29।।
देसकुल-जादिसुद्धो सोमंगो संग-भंग उम्मुक्को।
गयणव्व णिरुवलेवो आइरियो एरिसो होदि।।30।।

संगहणुग्गहकुसलो सुत्तत्थ-विसारदो पहियकित्ती।
सारणवारणसोहण-किरियुज्जुत्तो हु आइरियो॥31॥
–(षट्खंडागम, 1/1/1 पृ. 50)

अर्थात् प्रवचनरूपी समुद्र के जल के मध्य में स्नान करने से अर्थात् परमागम के परिपूर्ण अभ्यास और अनुभव से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गई है, जो निर्दोष रीति से छह आवश्यकों का पालन करते हैं, जो मेरुपर्वत के समान निष्कंप हैं, जो शूरवीर हैं, जो सिंह के समान निर्भीक हैं, जो निर्दोष हैं, देश, कुल और जाति से शुद्ध हैं, सौम्यमूर्ति हैं, अंतरंग और बहिरंग परिग्रह से रहित हैं। आकाश के समान निर्लेप हैं, जो सूत्र अर्थात् परमागम के अर्थ में विशारद हैं, जिनकी कीर्ति सब ओर फैल रही है, जो सारण अर्थात् आचरण, वारण अर्थात् निषेध और शोधन अर्थात् व्रतों की शुद्धि करने वाली क्रियाओं में निरंतर उद्युक्त हैं, उन्हें आचार्य कहते हैं।

परम पूज्य दादा गुरु सिद्धांत चक्रवर्ती, राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज ने क्षुल्लक दीक्षा आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज एवं मुनि दीक्षा भारतगौरव आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज से ग्रहण की। दादा गुरु के इन दोनों गुरुओं का संक्षिप्त परिचय यहाँ कहते हैं–

आचार्य श्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज

फिरोजाबाद नगर के कटरा पठान मुहल्ले के पद्मावती पुरवाल जाति के सेठ रतनलाल जी एवं श्रीमती बूंदा देवी के वैशाख कृष्ण नवमी वि. सं. 1967 में एक तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम महेन्द्र कुमार रखा गया। इनका प्रारंभिक अध्ययन श्री चंद्रप्रभु जैन पाठशाला फिरोजाबाद में हुआ तथा इंदौर में न्याय, व्याकरण, तर्क, वैद्यक, ज्योतिष आदि का गहन अध्ययन किया।

ये बचपन से ही गंभीर व उदासीन तो थे ही। एक दिन बारह भावना की कुछ पंक्तियों को पढ़कर उनका वैराग्य स्पष्ट झलकने लगा।

यह मानुष पर्याय सुकुल सुनिवों जिनवाणी।
यह विधि गए न मिले, सुमणि ज्यों उदधि समानी॥

उन्होंने बीस वर्ष की आयु में परम पूज्य मुनि श्री चंद्रसागर जी से ग्राम पीसांगन, अजमेर (राज.) में 7 प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये।

पुनः आचार्य श्री वीरसागर जी मुनिराज से सन् 1939 में गुजरात प्रांत में स्थित टांकाटुका में क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की थी। दिनोंदिन प्रखर साधना, सामर्थ्य, योग्यता इत्यादि को देखकर मुनिकुंजर श्री आदिसागर जी ने सन् 1942 में इन्हें ऐलक दीक्षा प्रदान की। पुनः ऐलक श्री महावीरकीर्ति जी की आगमसम्मत आदर्श चर्या व ज्ञाननिष्ठा को देखकर मुनि श्री आदिसागर जी अंकलीकर ने उदगाँव (महाराष्ट्र) में 17 मार्च, 1943 को इन्हें निर्ग्रन्थ दिगंबर मुनि दीक्षा प्रदान की। पुनः आचार्य श्री आदिसागर अंकलीकर जी ने अपना अंतिम समय निकट जानकर आश्विन शुक्ल 10 सन् 1943 में अपना आचार्य पद अपने शिष्य मुनि श्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज को देकर अपना उत्तराधिकारी बनाया।

इन्होंने निर्यापकाचार्य पद का निर्वहन कर योग्य वैय्यावृत्ति करके, अपने गुरु की समाधि सिद्ध करायी।

उसके पश्चात् आचार्य वीरसागर जी (आचार्य शांतिसागर जी दक्षिण के पट्टाचार्य) की समाधि जयपुर में कराई थी। उस समय संघ ने मिलकर निर्णय लिया कि ये महावीरकीर्ति जी मुनिराज योग्य व इस समय प्रधान हैं अतः आचार्य श्री वीरसागर जी का आचार्य पट्ट इन्हें ही सौंपा जाए।

ऐसा विचारकर कुछ प्रमुख साधु और वृद्ध ब्र. सूरजमलजी उनके पास निवेदन लेकर गये, तब उन्होंने कहा–मैं मेरे मुनिदीक्षा गुरु आचार्य श्री आदिसागर जी अंकलीकर के द्वारा आचार्यपद को प्राप्त हूँ अतः आप गुरु श्रीवीरसागर जी के प्रथम शिष्य मुनि श्री शिवसागर जी से ही आचार्य पट्ट के लिए निवेदन करें, मैं उन्हें प्रेरित करूँगा क्योंकि वे ही इस पट्ट पद के योग्य हैं और वे परम तपस्वी भी हैं और शास्त्रों के ज्ञाता भी हैं।

आचार्य श्रीमहावीरकीर्ति जी मुनिराज का हिंदी, इंग्लिश, संस्कृत, प्राकृत आदि 18 भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था। इन्हें पक्षियों की भाषा का भी ज्ञान था अर्थात् पक्षियों की चहक सुनकर वे क्या कह रहे हैं, समझ लेते थे। वे न्याय, व्याकरण, साहित्य, धर्म, आयुर्वेद, ज्योतिषी, सामुद्रिक शास्त्र के विशेषज्ञ थे। वे निमित्तज्ञान से भावी घटनाओं को जान लेते थे।

आचार्यश्री के ऊपर समय-समय पर अनेक उपसर्ग हुए, सम्मेदशिखर जी आदि स्थानों पर लाठियों से प्रहार भी हुआ किन्तु सब कुछ दृढ़ता से सहकर वे अपनी साधना में अटल रहे। इन्होंने धर्मानंद श्रावकाचार, प्रायश्चित विधान, वचनामृत, प्रबोधाष्टक (स्वोपज्ञ टीका सहित) जिनधर्म रहस्य, चतुर्विंशति स्तोत्रादि ग्रंथों की टीका एवं रचना की।

आचार्यश्री का अंतिम चातुर्मास सिद्धक्षेत्र श्री गिरनार जी में हुआ था। वहाँ से विहार कर पालीताना की यात्रा करते हुए संघ तारंगा जी की तरफ जा रहा था कि मार्ग में आचार्य श्री अस्वस्थ हो गए और माघ कृष्ण 6 सन् 1972 में रात्रि 9.15 बजे मेहसाना नगर में इनका समाधिमरण हो गया। समाधि के तीन दिन पूर्व ही आचार्यश्री ने सभी संघस्थ त्यागीव्रतियों को बुलाया व सबको संबोधित कर निर्देश देकर आचार्य पद मुनिश्री सन्मतिसागर जी व गणिनी पद आर्यिका श्री विजयमती माता जी के लिए दिया।

आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज

कर्नाटक के बेलगाम के कोथली जिले में धनी जमींदार परिवार के श्री सत्यगौड़ा एवं श्रीमती अक्कादेवी पाटिल के मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा (28 नवंबर सन् 1905 में एक दिव्य पुत्र ने जन्म लिया। उस बालक का नाम बड़े प्रेम से बालगौड़ा पाटिल (बालप्पा) रखा गया। बालक ने अपनी प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा हिंदी,अंग्रेजी, मराठी व कन्नड़ माध्यम में सदलगा में और माध्यमिक शिक्षा गिलगिंची आर्टल हाईस्कूल बेलगाम में संपन्न की। इनके साथ इनके सबसे अच्छे मित्र डॉ. ए.एन. उपाध्याय ने भी यह शिक्षा पूरी की। दोनों ने संस्कृत व प्राकृत भाषाओं में बॉम्बे विश्वविद्यालय से ऑनर्स के साथ कला स्नातक की उपाधि प्राप्त की और बाद में स्नातकोत्तर के लिए पुणे चले गए और भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट में शामिल हो गए। यहाँ ए.एन. उपाध्याय राजाराम कॉलेज, कोल्हापुर में प्राकृत व्याख्याता के रूप में सम्मिलित हुए। बालगौड़ा ने अपना शोध मूल संदर्भों की सहायता से जारी रखने का निर्णय लिया, जो जैन मंदिरों में सुरक्षित रखे गए थे, जहाँ वे आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज के संपर्क में आए एवं उनके व्याख्यानों से अत्यधिक प्रभावित हुए।

जब बालगौड़ा 3 माह के थे तब इनकी माँ का एवं जब 12 वर्ष के थे तब पिता का वियोग हो गया। पुनः उनका पालन उनके काका जिनगौड़ा पाटिल ने किया। ये बचपन से ही हृष्ट-पुष्ट थे। वे एक बार में ही आधा सेर गुड़, तीन सेर दूध व चार कच्चे नारियल ग्रहण कर लिया करते थे। बचपन से ही वे अभिनय में रुचिवान् थे। मंच पर नारद व लिंगायत साधुओं का अभिनय करते हुए उनका मन वैराग्य की ओर

अग्रसर होने लगा। दुर्भाग्यवश विवाह के 8 दिन बाद ही उनकी चाची की कुएँ में गिरकर मृत्यु हो गई। वे बहुत सुंदर थीं किंतु जब शव कुएँ से बाहर निकाला गया तब वह बहुत विद्रूप था, माँस-मज्जादि को देखकर उन्हें बहुत विरक्ति हुई। विरक्ति के ये भाव दिनोंदिन बढ़ते रहे किन्तु जब आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज का सान्निध्य मिला तब स्पष्टतया वे सामने आ गए। उन्होंने उनके सान्निध्य में जिनग्रंथों का अध्ययन किया। उनका दृढ़ वैराग्य, ज्ञान, निष्ठा आदि को देखकर आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज ने सन् 1935 में दुर्ग (मध्यप्रदेश) में चातुर्मास के उपरांत तीर्थ रामटेक पहुँचकर उन्हें ऐलक दीक्षा प्रदान की एवं उनका आध्यात्मिक नामकरण 'देशभूषण' किया।

जब संघ यहाँ से कुंथलगिरी पहुँचा तब वृद्धिंगत विशुद्धि से ऐलक श्री देशभूषण जी ने आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज से मुक्तिदायिनी दिगंबरी दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की। पुनः कुंथलगिरी में 8 मार्च 1936 को आचार्यश्री ने इन्हें मुनि दीक्षा से अनुग्रहीत किया। आचार्य श्री के महान् व्यक्तित्व व कृतित्व से प्रभावित होकर सूरत जैन समाज ने आचार्य श्री पायसागर जी महाराज की सहमति से सन् 1948 में इन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। आचार्य रूप में श्री देशभूषण जी महाराज के नेतृत्व से प्रभावित होकर राजधानी दिल्ली की जैन समाज ने इन्हें 'आचार्य रत्न' की गौरवपूर्ण उपाधि से समलंकृत किया।

आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज निरंतर ज्ञान, ध्यान, तप में संलग्न रहते थे। आचार्यश्री ने णमोकार ग्रंथ, अपराजितेश्वर शतक, भरतेश वैभव इत्यादि अनेक कन्नड़ ग्रंथों का हिंदी अनुवाद किया। लुप्तप्रायः ताड़पत्रीय ग्रंथों का भी अनुवाद व प्रकाशन कराया। आचार्यश्री ने जैन वाङ्मय का जो संवर्द्धन दिया वह अल्पशब्दों में नहीं कहा जा सकता।

आचार्यश्री का ज्ञान नि:सीम था। वे आकाश में गमनशील ग्रहों को देखकर, उनकी स्थिति का परिज्ञान कर भावी घटनाओं को जान लेते थे। तत्कालीन प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री जी को भी ऐसे ही युद्ध की स्थिति का परिज्ञान कराकर देश की रक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

आचार्य श्री ने अपनी प्रारंभिक साधना में व्रत– उपवास को भी विशेष महत्व दिया। उन्होंने सर्वतोभद्र व्रत, महासर्वतोभद्र व्रत, बसन्तभद्र व्रत, त्रिलोकसार व्रत, वज्रमध्यविधि व्रत, मृदंगमध्यविधि व्रत, मुराजमध्यविधि व्रत, मुक्तावली व्रत और रत्नावली व्रत जैसे कठोर व्रतों का अनुष्ठान किया।

आचार्यश्री ने जिनमंदिर आदि का निर्माण व जीर्णोद्धार कराकर जिनसंस्कृति संवर्द्धन व संरक्षण के भी कार्य किए। शाश्वत तीर्थक्षेत्र अयोध्या में उत्तुंग श्री आदिनाथ स्वामी की प्रतिमा प्रतिष्ठापित कराकर संपूर्ण जैन समाज को अपनी संस्कृति के गौरव का परिज्ञान कराया।

आचार्यश्री श्रेष्ठ ध्यानी थे। उनकी ध्यान साधना का ये प्रभाव रहा कि विहार में श्रवणबेलगोला में व्याघ्र, चीता, शेर आदि सामने आ भी गए तो भी वे आचार्यश्री की ध्यानस्थ मुद्रा देख लौट गए। सर्पादि के विष का प्रभाव भी उनके शरीर पर पड़ता नहीं था। यह उनकी श्रेष्ठ साधना का ही अतिशय था। उन्होंने अनेक उपसर्गों को सहते हुए अपनी साधना को विशुद्ध बनाया।

सन् 1970 में जब आचार्यश्री जयपुर चातुर्मास के लिए आ रहे थे तब आबू के निकट अति गर्मी से व्याकुल हो, कंठ सूखने की वेदना श्रावकों ने आचार्यश्री से कही। रेगिस्तान में पानी दूर तक नहीं दिख रहा था, तब करुणाशील आचार्यश्री ने उनसे कहा कि 10 कदम आगे चलकर यह

पत्थर हटाओ। श्रावकों ने वैसा ही किया और तभी एक अद्भुत दृश्य हुआ कि पृथ्वी के गर्भ से जल का उत्स फूट पड़ा। लोगों ने अपनी तृषा शांत की व आचार्यश्री के गुणगान गाते हुए आगे विहार किया।

आचार्यश्री के तपः तेज के समक्ष तो चंबल के जंगल में विराजमान संघ को लूटने आया दस्युदल भी नतमस्तक हो गया। कोल्हापुर के निकट राधापुरी ग्राम में जब भयंकर हैजा फैला था उसी समय संयोगवशात् आचार्यश्री उस ग्राम में पधारे। महामारी से पीड़ित व्यक्तियों ने आचार्यश्री से उनकी प्राण रक्षा की प्रार्थना की। तब आचार्यश्री ने कमंडलु का जल अभिमंत्रित करके दिया जिससे वह महामारी दूर हुई और सब मंगल हुआ।

आचार्यश्री के जीवन की अनेक घटनाएँ हैं जो उनके ज्ञानबल, तपोबल, साधनाबल आदि का दिग्दर्शन कराती हैं। जैनदर्शन के अनुपम, लुप्तप्रायः 'भूवलय' नामक ग्रंथ को विश्व के समक्ष लाकर आचार्यश्री ने नव स्तंभ स्थापित किया। इतना ही नहीं ग्रंथ की महत्ता समझकर आचार्यश्री ने उसे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी को दिया जिन्होंने इसे विश्व का आश्चर्य घोषित किया।

देश-विदेश से लोग आकर आचार्यश्री के चरणों में नतमस्तक हो जाते थे। कई बार तो विदेशी उन्हें अपने देश चलने के लिए भक्तिवशात् जिद ही कर डालते। हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई, सिक्खादि आचार्य के प्रति असीम श्रद्धावान् थे। एक मुस्लिम भाई ने तो भक्तिवशात् संघव्यवस्था हेतु एक गाड़ी ही संघ को भेंट की।

कई बड़े-बड़े आयोजन आचार्यश्री के निर्देश व सान्निध्य में संपन्न हुए। एक महान् चिंतक के रूप में आचार्यश्री ने भारतीय समाज का

विश्लेषण करते हुए देश को नवीन दिशा प्रदान की। आचार्यश्री की धर्म सभाओं में मात्र जैन नहीं वरन् वैष्णव, आर्यसमाजी, मुस्लिम, हरिजन, गिरिजन, सिक्ख आदि सम्मिलित हुआ करते थे। उनकी प्रेरणा से नवनिर्मित जिनालयों, तीर्थक्षेत्रों का निर्माण व जीर्णोद्धार कार्य हुआ। आचार्यश्री ने शिक्षा को सर्वजन सुलभ बनाने हेतु अनेक विद्यालयों व गुरुकुलों की स्थापना करायी। कोथली में आचार्यश्री के नाम से मेडिकल कॉलेज आज भी संचालित है।

आचार्यश्री के आत्मकल्याणकारी व्यक्तित्व के साथ लोकोपकारी व मानव कल्याणकारी व्यक्तित्व भी सदैव वंदनीय है। विधानसभा में जाकर मीटिंग करने वाले ये एकमात्र आचार्य रहे, जहाँ आपने जैन धर्म की अमिट छाप छोड़ी।

आचार्य श्री ने पत्र के द्वारा अपना आचार्य पद श्री विद्यानंद जी मुनिराज को देकर 28 मई 1987 कोथली (कर्नाटक) में अत्यंत समत्व भाव के साथ अपने पार्थिक शरीर का परित्याग कर दिया।

आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज एवं भारत गौरव आचार्यश्री देशभूषण जी मुनिराज दोनों महान् आचार्यों के चरणों में मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करती हूँ। पुनः अपने दादा गुरु सिद्धांत चक्रवर्ती, राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज की मन के विशुद्ध परिणामों के साथ वंदना करती हूँ जिनका अद्‌भुत जीवनवृत्त आचार्य गुरुदेव ने **''क्षपकराज शिरोमणि''** के रूप में लिपिबद्ध किया। ग्रंथ को पढ़कर ही हम उनके महान् व्यक्तित्व को जान पाए हैं। यह पूज्य गुरुदेव का हम सब पर बहुत उपकार है। अन्यथा हमारे समान वय वाले या बाद वाले लोग तो ऐसे महान् व्यक्तित्व का कभी दिग्दर्शन ही न कर पायें। आचार्यश्री अपने

दिव्य–तेजस्वी व्यक्तित्व के द्वारा स्वयं अमर हैं ही किन्तु गुरुवरश्री की इस कृति ने इन्हें विशेष अमरत्व प्रदान कर दिया। प्राकृत भाषा चक्रवर्ती, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में कोटिशः वंदन करती हूँ जिन्होंने ऐसे अनेक प्राकृत ग्रंथों की रचना कर जैन वाङ्मय का ही नहीं अपितु विश्व साहित्य का अद्भुत संवर्द्धन किया।

–आर्यिका वर्चस्वनंदनी

दो शब्द

प्राचीन भारतीय भाषाओं में प्राकृत भाषा का अत्यधिक महत्त्व है। जनसामान्य की भाषा होने से धीरे धीरे यह विकसित होकर साहित्य की भाषा बन गई और इस भाषा से आगम, कथा, चरित्त, षष्ठिका, शतक, गद्यकाव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, मुक्तक, सट्टक आदि के रूप में साहित्य को समृद्ध किया जाने लगा। माधुर्य और रसात्मकता के कारण काव्यशास्त्रियों ने प्राकृत ग्रन्थों के उदाहरण देकर उसे सुगम और लोकप्रिय बनाया। वैदिक और श्रमण दोनों परम्पराओं के लेखकों ने प्राकृत भाषा से अपने साहित्य को समृद्ध किया। दिगम्बर और श्वेताम्बर मूल साहित्य की सर्जक भाषा प्राकृत ही रही। वर्तमान में दिगम्बर परम्परा में प्रभूत प्राकृत साहित्य का सृजन हो रहा है। श्वेतपिच्छाचार्य विद्यानन्द जी महाराज द्वारा प्राकृत के प्रचार और प्रसार के लिए अनेक प्रयत्न किये गये। उनके बाद प्राकृत भाषा में साहित्य-सृजन के क्षेत्र में अनेक आचार्यों और मुनिराजों द्वारा चारों अनुयोगों पर विशाल साहित्य की रचनाएं की जा रही हैं, उनमें श्वेतपिच्छाचार्य विद्यानन्द जी महाराज के परम प्रभावक शिष्य, शताधिक ग्रन्थों के प्रणेता, प्राकृत भाषा में लक्षाधिक पद्यों के रचयिता, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, महान् तपस्वी आचार्य श्रीवसुनन्दी जी महाराज का प्रमुख स्थान है। उनका व्यवस्थित संघ, संयम और श्रुताराधना में सदा लगा रहता है। धीर, गंभीर और शान्तस्वभावी आचार्यश्री वसुनन्दि जी महाराज का महनीय कृतित्व श्रुतसाधना मूलाचार्यों की परम्परा के आचार्यों की गणना में मूल्यांकित होती है। पुरुषार्थ, प्रज्ञा और प्रतिभा में आप अपने गुरु आचार्य विद्यानन्द जी महाराज की तरह ही हैं। आपमें गुरु के समान

ही हिमगिरि जैसी गुरुता, वारिधि जैसी गम्भीरता, चिन्तन में सूर्य जैसा प्रकाश, पृथ्वी जैसी सहनशीलता और चारित्र पालन में चट्टान जैसी दृढता विद्यमान है। आपके द्वारा प्राकृत भाषा में सृजित पद्यमय शीघ्र प्रकाश्यमान कृति 'खवगराय-सिरोमणी' काव्य ग्रन्थ अनेक काव्यशास्त्रीय विशेषताओं से युक्त है।

'खवगराय-सिरोमणी' काव्यग्रन्थ में 1317 गाथायें हैं। इस काव्यग्रन्थ में तपस्वी, योगी, विद्वान, कविहृदय लेखक आचार्य श्री वसुनन्दी जी महाराज ने अपने दीक्षा गुरु आचार्य विद्यानन्द जी महाराज के समग्र जीवन और उनके कृतित्व का प्राकृतभाषा में रेखांकन किया है। काव्य का प्रारम्भ मंगलस्वरूप अरहन्तादि परमेष्ठियों को नमस्कार करने के पश्चात् अपने दादा गुरु चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागर जी महाराज की स्तुति से किया गया है। चौथी गाथा में अपने गुरु आचार्य विद्यानन्द जी महाराज के जीवन चरित्र की विशालता का उल्लेख करते हुए गुरु की महिमा का निरुपण किया गया है। पूज्य गुरुदेव के चारित्र की विशालता के वर्णन करने में काव्य लेखक स्वयं को उनके सामने लघु सिद्ध करते हुए उन्हें भाव से स्मरण और नमन करते हुए 'क्षपकराज शिरोमणि' ग्रन्थ लिखने की प्रतिज्ञा करते हैं। अपने गुरु के प्रति कृतज्ञ-भाव प्रदर्शित करने और गुरु के गुणों को प्राप्त करने हेतु काव्यकार ने ग्रन्थ रचना का प्रयोजन बताया है। उन्होंने लिखा है कि सभी जीवों के उपकारक उनके गुरु राष्ट्रसन्त, सिद्धान्तचक्रवर्ती, श्वेतपिच्छीधारक आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज सम्यग्दृष्टियों के द्वारा सदा वंदनीय हैं।

काव्य ग्रन्थ की गाथा संख्या 20 से गाथा संख्या 992 तक आचार्य विद्यानन्द जी महाराज के जीवन चरित्र और कर्तृत्व पर विशद प्रकाश

डाला गया है और 993 से 1288 गाथाओं में विस्तार से उनकी शिक्षाओं पर विस्तृत चर्चा की गई है। गाथा संख्या 1289 से गाथा संख्या 1315 तक तीर्थंकरों, सिद्धों, कृत्रिमाकृत्रिम जिनचैत्य-चैत्यालयों, केवलियों, श्रुतकेवलियों एवं आचार्य श्री विद्यानन्दजी तक हुए सभी आचार्यों को वन्दन कर विशुद्धिपूर्वक यह ग्रन्थ लिखा गया है। 1316 और 1317 गाथाओं में गुरु वन्दन पूर्वक यह बताया गया है कि यह ग्रन्थ वीर निर्वाण संवत् 2550 में गुरुवर आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज के समाधिदिवस के अवसर पर भारत की राजधानी दिल्ली में कालकाजी परिषद् के लालजिनालय के विद्यानन्द निलय में आचार्यश्री वसुनन्दी जी महाराज द्वारा पूर्ण किया गया। अन्तिम गाथा 1317 में लेखक द्वारा असीम काल तक गुरुभक्ति विद्यमान रहने की कामना की गई है।

काव्य 'खवगराय-सिरोमणी' जिसे हम उत्तम ऐतिहासिक महाकाव्य की श्रेणी में भी रख सकते हैं क्योंकि इसमें ग्राम, नगर, वन आदि के वर्णन के साथ नायक के रूप में लेखक ने अपने गुरु आचार्य विद्यानन्द के जिस उदात्त चरित्र का वर्णन किया है, वह महाकाव्य होने की अधिकांश विशेषताओं को पूर्ण करता है। काव्य में सर्वत्र कवि की प्रौढ़ रचनाधर्मिता परिलक्षित होती है। काव्य-नायक आचार्य विद्यानन्द जी का गार्हस्थिक जीवन अच्छाईयों, सद्‌गुणों और साहसिक कार्यों का समवेत रूप था परन्तु उन्होंने कैसे भौतिक सुखों को त्यागकर निवृत्ति के पावन मार्ग पर चलकर अध्यात्म के शिखर का स्पर्श किया, इसका काव्यकार द्वारा काव्यशैली में सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया गया है। महाकाव्य का नायक प्रख्यात होना चाहिए। ज्ञात हो संतों की परम्परा में सार्वभौमिक व्यक्तित्व के धनी राष्ट्रसन्त परमपूज्य श्वेतपिच्छाचार्य विद्यानन्द जी महाराज विश्वसन्त के

रूप में प्रसिद्ध थे। उन्होंने आत्मकल्याण के साथ उपदेशों, पदयात्राओं, साहित्यसृजन आदि के द्वारा जैनसंस्कृति को विश्वस्तर पर प्रतिष्ठित कराने का महनीय कार्य किया। बीसवीं शताब्दी में समाज को गौरवान्वित करने वाली निधियों को प्रकाश में लाने का यदि किसी ने कार्य किया है तो उसका श्रेय आचार्यश्री को जाता है। आपकी अलौकिक आध्यात्मिक शक्ति का ऐसा चमत्कार था कि स्वनामधन्य राजनेता, प्रतिष्ठित उद्योगपति आपके पास आकर अपने कल्याण के लिए आपका आशीर्वाद प्राप्तकर स्वयं को धन्य मानते थे। देश में किसी भी दल की सरकार रही हो, उन दलों का शीर्ष नेतृत्व उनसे प्रभावित रहा। यही कारण है कि उनकी सरकार के माध्यम से उन्होंने जैनधर्म, संस्कृति, समाज, साहित्य और प्राचीन भाषाओं के उत्थान के लिए अनेक प्रयत्न किये, जिससे अन्तर्राष्ट्रिय स्तर की अनेक संस्थाएं उदय में आयीं और जैनधर्म की विश्व में प्रभावना हुई।

महाकवि वसुनन्दि जी महाराज ने सर्वत्र पदलालित्य के द्वारा काव्य की गौरव गरिमा में अभिवृद्धि की है। कवि तपस्वी होने के साथ अगाध पाण्डित्य के धनी हैं, आगम, सिद्धान्त, धर्म, दर्शन आदि विषयों के साथ उनकी छंदोलंकार शास्त्र आदि साहित्य के शास्त्रीय विषयों पर अच्छी पकड़ है। यही कारण है कि उन्होंने अपने गुरु के चरित्र के मूल्यांकन के साथ जैनदर्शन के विभिन्न सिद्धान्तों को भी स्पष्ट किया है। उनके गुरु का जीवन तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त और स्याद्वाद मयी था। उन्हें श्रेष्ठ विचारक, ओजस्वी वक्ता, संगीतज्ञ, आत्मज्ञ के रूप में जाना जाता था। उनका जन्म 22 अप्रैल 1925 में शेडवाल (कर्नाटक) में हुआ था। बचपन में उन्हें सुरेन्द्र उपाध्ये के नाम से जाना जाता था। उनके पिता का नाम श्री कल्लप्पा उपाध्ये और माता का नाम

श्रीमती सरस्वती उपाध्ये था। वंशानुगत व्यवसाय कृषि था, परन्तु उनका मन उसमें नहीं लगा और वे अपने मौसा जी का सहयोग लेकर अन्य व्यवसाय की तलाश में जुट गये। मौसा जी के सहयोग से उन्हें सैन्य सामग्री विक्रय करने वाली कम्पनी में नौकरी मिल गई, पर उनका मन गार्हस्थिक जीवन से विमुख रहता था। उन्हें शस्त्र के स्थान पर शास्त्र दिखाई पड़ता था।

वे मन में निरन्तर विचार करते रहते कि जिस आजीविका का उन्होंने चयन किया है, उसका सम्बन्ध हिंसा से है। अवसर प्राप्त होने पर सन्तों की संगति करते और शस्त्र कम्पनी को छोड़ने के प्रयत्न में जुट गये। अन्ततः उन्होंने कम्पनी छोड़ दी। उनके मन में देश, समाज और श्रमण संस्कृति के प्रति बहुत कुछ करने का भाव समाया हुआ था। सन् 1942 में वे अग्रेजों के विरुद्ध चल रहे 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भी सम्मिलित हो गये। प्रारम्भिक शिक्षा उनकी दानवाड़ में मराठी के माध्यम से हुई। इसके बाद उनका प्रवेश शान्तिसागर आश्रम शेडवाल के विद्यालय में कराया गया। विद्यार्थी जीवन में उन्हें जब भी अवसर प्राप्त होता वे साधुओं के उपदेश सुनने चले जाते। साथ ही उन्हें दुःखी प्राणियों की मदद करने, रोगियों की सेवा करने जैसे सामाजिक उत्थान के कार्यों में भी आनन्द आने लगा। शेडवाल में आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी का वर्षायोग सुरेन्द्र के जीवन परिवर्तन का प्रमुख निमित्त बना। वे आचार्य श्री के प्रवचनों में मग्न हो जाते। उनके उपदेशों का प्रभाव उनपर ऐसा हुआ कि उनके अन्तरंग में वैराग्य का अंकुर प्रस्फुटित हो गया और 15 अप्रैल सन् 1946 में 21 वर्ष की तरुणावस्था में ही उन्होंने तमदड्डी (कर्नाटक) में आचार्य श्री महावीरकीर्ति जी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर ली। क्षुल्लक

दीक्षा के बाद आपका नाम क्षुल्लक 105 श्री पार्श्वकीर्ति वर्णी रखा गया। उन्होंने परमपूज्य आचार्यरत्न श्री 108 देशभूषण जी महाराज से 25 जुलाई 1963 में दिल्ली में मुनि दीक्षा ग्रहण की। मुनि दीक्षा के पश्चात् उनका नाम मुनि श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज रखा गया। आचार्य देशभूषण महाराज जी द्वारा ही उन्हें 17 नवम्बर 1974 में उपाध्याय दीक्षा प्रदान की गई जो बीसवीं शताब्दी के प्रथम उपाध्याय कहलाये। उनकी एलाचार्य दीक्षा 17 नवम्बर 1978 को दिल्ली में हुई। एलाचार्य विद्यानन्द जी को 06 नवम्बर 1979 को इन्दौर में सिद्धान्तचक्रवर्ती की उपाधि से विभूषित किया गया। 28 जून 1987 को दिल्ली में उनको आचार्य पदारोहण किया गया। पश्चात् उन्हें आचार्य 108 विद्यानन्द जी महाराज से अभिहित किया गया।

आचार्य श्री विद्यानन्द जी तप, साधना और संयम को पाथेय बनाकर निरन्तर आगे बढ़ते रहे। रत्नत्रय उनकी सबसे बड़ी निधि रही। अपने पुरुषार्थ के बल पर उन्होंने समाजिक जीवन को पवित्र बनाने की ओर विशेष जोर दिया। आचार्यश्री की सदैव ये भावनाऐं रहीं हैं कि अहिंसा, शाकाहार, समन्वयशीलता और सर्वोदयी श्रमण संस्कृति के विचार जन जन तक पहुँचें। वे जानते थे कि ये कार्य बिना चैतन्य कृतियों और साहित्य के नहीं हो सकते। यही कारण है कि तप:साधना काल से ही उनकी प्रेरणा से सैकड़ों जनोपयोगी और श्रमणसंस्कृति के अभ्युत्थान और प्रभावना विषयक कार्य किये गये। उनमें कतिपय का नामनिर्देश अग्रलिखित है–जैन भजनों के ग्रामोफोन रिकार्डस् का सन् 1966–67 में प्रथमबार निर्माण, सन् 1974 में जैन ध्वज और जैन प्रतीक का प्रारम्भ, सन् 1974 में धर्मचक्र का प्रवर्तन एवं सभी पंथों और आम्नाओं के द्व

ारा भगवान् महावीर का राष्ट्रीय स्तर पर निर्वाण महोत्सव मनाये जाने की प्रेरणा, सन् 1978 में संगीत समयसार ग्रन्थ का सम्पादन, सन् 1980 जनमंगल कलश प्रवर्तन, सन् 1985-86 श्रावकाचार वर्ष, सन् 1988 में प्राकृतविद्या त्रैमासिक शोध पत्रिका का प्रकाशन का प्रारम्भ, सन् 1994 में सम्मेदशिखर आन्दोलन का मार्गदर्शन, सन् 1996 में लाल बहादुर राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ दिल्ली में प्राकृत अध्ययन का शुभारम्भ, सन् 2003 में चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागर जी मुनिराज का 131वाँ जन्म जयन्ती समारोह 'संयम वर्ष' के रूप में मनाया जाना, सन् 2004 में भगवान् महावीर की जन्मभूमि वासोकुण्ड-कुण्डलपुर विहार में भव्य दिगम्बर जैन मन्दिर का निर्माण, जैन समाज को भारतीय संविधान में प्रदत्त अल्पसंख्यक घोषित करने का आन्दोलन, प्राकृत भाषा के विद्व ानों को राष्ट्रपति पुरस्कार एवं अनेक मस्तकाभिषेक, महामस्तकाभिषेक, पंचकल्याणक, मन्दिर निर्माण आदि के आचार्यश्री महान् उत्प्रेरक रहे हैं।

शास्त्रभण्डारों और विभिन्न पुस्तकालयों में अप्रकाशित अनेक पाण्डुलिपियों, महत्त्वपूर्ण शोधग्रन्थों, मौलिक ग्रन्थों, टीका ग्रन्थों को आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज ने खोज कराकर उनमें से कुछ ग्रन्थों को प्रकाशित कराने का कार्य कराया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जैनधर्म की प्रभावना हेतु अंग्रेजी भाषा में जैन साहित्य का अनुवाद भी कराया। उनके द्वारा अनेक ग्रन्थों में आशीर्वाद, भूमिका, दो शब्द आदि के रूप में जो कुछ भी लिखा गया है उनका कलेवर प्रामाणिक अनेक ग्रन्थों के बराबर है। उन्होंने धर्म, दर्शन, संस्कृति, इतिहास, पुरातत्त्व प्रभृति साहित्य सृजन के साथ लोकोपकारी साहित्य की भी रचना की। आपने आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज के मार्गदर्शन में अनेक कन्नड

ग्रन्थों को संस्कृत और हिन्दी भाषाओं में रूपान्तरित किया। आचार्यश्री की वाणी में ऐसा आकर्षण था कि उनके उपदेश सुनकर आबालवृद्ध सभी प्रभावित हो जाते थे। अनेक लोगों ने सभी व्यसनों का त्यागकर उनसे व्रत ग्रहण किये। बिना कोई अध्यात्म मार्ग का पद लिए ऐसे अनेक जैन और जैनेतर व्यक्ति आचार्यश्री की प्रेरणा से कल्याणमार्ग की ओर अग्रसर हुए और अपने जीवन को सफल किया। अनेक जीवों को उन्होंने अध्यात्म मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए दीक्षित किया, उनमें परमपूज्य आचार्य वसुनन्दी जी महाराज, आचार्यश्री गुप्तिसागर जी, आचार्यश्री श्रुतसागर जी, आचार्य श्री प्रज्ञसागर जी महाराज प्रमुख हैं। श्रमण संस्कृति के संवर्द्धन और जनकल्याण हेतु आचार्यश्री की प्रेरणा से अनेक संस्थाओं की स्थापना की गई।

साक्षात् सत्य-अहिंसा की प्रतिमूर्ति दशों दिशाओं ने जिन्हें निर्ग्रन्थ समझकर मानों समवेत रूप में परिषहों को सहन करने की अटूट शक्ति प्रदान की थी, वीतराग प्रभु का निरन्तर स्मरण करते रहने से अधरोष्ठों से निःसृत होती सत्यामृतवाणी से युक्त 'विद्यानन्द' अपने इस नाम की सार्थकता को सिद्ध करते हुए विद्या में ही आनन्द लेने वाले चपलेन्द्रिय विषयों की गन्दगी से दूर निष्कलंक शरीर धारण करने वाले 108 श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज की दृष्टि में विद्वान् उसी प्रकार थे जैसे वीर प्रभु की दृष्टि में गौतम गणधर। आचार्यश्री यह अच्छी तरह जानते थे कि विद्वान्, साधु और श्रावक समाज के मध्य सेतु का कार्य करता है। विद्वानों के विचारों का जब उनकी लेखनी से मन्थन होगा तब उसमें से नवनीत प्रकट होगा। विद्वान् ही प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन, अनुवाद आदि द्वारा उन्हें साधु और श्रावकों के समझने योग्य बनाते हैं। उनका विद्वानों के प्रति

असाधारण वात्सल्य रहता था। उनका हमेशा यही प्रयत्न रहता था कि विद्वानों की परम्परा अविच्छिन्न चलती रहे। यही कारण है कि वे समय-समय पर विद्वानों को पुरस्कृत कराते रहे। जिससे विद्वान् स्वयं के परिश्रम को सार्थक समझता है। यद्यपि **'अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् मावमंस्थास्तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि'** के अनुसार धन आदि का अभाव विद्वानों की प्रतिभा को रोक नहीं पाता। उत्कृष्ट सृजन के फलस्वरूप पुरस्कार के रूप में विद्वान् को धन प्राप्त हो भी जाये, उसे वह सम्मान के रूप में ही ग्रहण करता है, सृजनात्मक परिश्रम के रूप में नहीं। आचार्यश्री कहा करते थे जिनवाणी और जैन ग्रन्थों की सेवा साधना में जुटे व्यक्तियों का ही जीवन सार्थक है। विद्वानों का सम्मान ही जिनवाणी का सम्मान है। इसलिए समाज को प्रत्येक स्थिति में उन्हें सम्मानित कराना चाहिए। यही कारण है कि उनकी प्रेरणा से वृषभदेव पुरस्कार, आचार्य उमास्वामी पुरस्कार, ब्राह्मी पुरस्कार, चारित्रचक्रवर्ती पुरस्कार, संगीत समयसार पुरस्कार, आचार्य विद्यानन्द पुरस्कार, साहू अशोक जैन पुरस्कार, अहिंसा पुरस्कार, आचार्य अमृतचन्द्र पुरस्कार, आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार, सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र पुरस्कार आदि पुरस्कार प्रवर्तित किये गये।

आचार्य विद्यानन्द जी ने राष्ट्रहित को सदैव वरीयता दी। उनका मानना था कि राष्ट्र की समृद्धि में ही समाज की समृद्धि निहित है। धार्मिक मान्यताएं, उपासनाएं नितान्त वैयक्तिक हैं। वे कहा करते थे कि संत किसी एक सम्प्रदाय का नहीं होता है, संत सम्प्रदायातीत सभी का होता है, उसके हृदय में प्राणीमात्र के प्रति करुणा और दया का अजस्र स्रोत निरन्तर प्रवाहमान रहता है। सन्तत्व की इन्हीं विशेषताओं के कारण ही

उन्हें राष्ट्रसंत की पदवी से विभूषित किया गया। वे वीतरागी थे, उन्हें किसी भी प्रकार की पदवी से कोई प्रयोजन नहीं था। परन्तु उनके न चाहते हुए भी भक्तों के अनुराग ने उपाधि के रूप में उन्हें श्रद्धा का अर्घ्य समर्पित किया। जैनधर्म और दर्शन की सार्वभौमिक व्याख्या कर उन्होंने यह सिद्ध किया कि जैनधर्म प्राणीमात्र का धर्म है। जैनधर्म के इस सर्वतोभावी और सर्वोदयी सिद्धान्त की प्रभावना हेतु वे निरन्तर प्रयत्नशील बने रहे। यही कारण है कि उन्होंने न केवल दिगम्बर और श्वेताम्बर अन्तरसम्प्रदायीय भेद को समाप्त कर जैनसिद्धान्तों के स्मारक, प्रेरक और सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरक्षक जैन पर्वों को एकसाथ राष्ट्रीय स्तर पर धूमधाम से मनाये जाने का सन्देश दिया, अपितु उन्होंने विभिन्न धाराओं के साधु-सन्तों, विद्वानों को अनेक बार एक मंच पर लाकर यह सन्देश दिया कि सभी धर्मों का लक्ष्य दु:खों से मुक्ति है, जीवों पर दयाभाव है, अहिंसा है अस्तु परस्पर सभी धार्मिक सम्प्रदाओं को आपसी वैमत्य को समाप्त कर राष्ट्रहित के साथ प्राणीमात्र के कल्याण के विषय में कार्य करना चाहिए।

आचार्य श्री अद्‌भुत कल्पना और वैज्ञानिक सोच के धनी थे। उन्होंने जैनधर्म, दर्शन के सिद्धान्तों की वैज्ञानिक व्याख्या कर और उन्हें जनोपयोगी सिद्ध कर जैन जैनेतर समाज के अनेक युवाओं को सन्मार्ग दिखाने का कार्य किया। विपरीत विचारधाराओं के व्यक्तियों का अपने वाक्चातुर्य और युक्तियों से एक साथ मैत्रीभाव से मेल करा देना उनका वैशिष्ट्‌य था। वे अनेकान्त और स्याद्वाद की साक्षात्‌ प्रतिमूर्ति के सामान जान पड़ते थे। वे आध्यात्मिक जीवन मूल्यों के अधिष्ठाता होने के साथ श्रमण संकृति के संरक्षण और समाजोत्थान के लिए समर्पित थे। ऐसे महामनीषी, अभीक्ष्ण

ज्ञानोपायोगी, दिगम्बर जैन परम्परा के मुकुटमणि, सिद्धान्त चक्रवर्ती, राष्ट्रसन्त महान् तपस्वी श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज की समाधि 22 सितम्बर 2019 को प्रातः 2 बजकर 40 मिनट पर अमृतबेला में हो गई। आज यदि कुछ शेष है तो उनका सार्वभौमिक व्यक्तित्व और कृतित्व, जिसका प्रकाश इस अवनि पर अनन्तकाल तक विद्यमान रहे, एतदर्थ आचार्यश्री वसुनन्दी जी महाराज ने अपनी सशक्त लेखनी से उसे लोकविश्रुत और रुचिकर बनाने हेतु काव्यरूप में गुंफन किया है।

इस प्रकार विविध गुणों का स्पर्श करने वाले अपने गुरु आचार्य विद्यानन्द जी के उपकार के प्रति उनके महनीय व्यक्तित्व और कृतित्व को काव्यविधा में आयाम देकर आचार्यश्री वसुनन्दी जी महाराज ने 'खवगराय-सिरोमणी' नामक महान् काव्यग्रन्थ लिखकर अपनी श्रद्धा और विनम्रता का उन्हें महनीय अर्घ समर्पण किया है। काव्य में अध्यात्म, शान्त और करुण रस की प्रधानता है। काव्य में सर्वत्र रुचिर भावाभिव्यक्ति, सुन्दर पद संघटना, अलंकार, रस आदि का संयोजन कवि की परिपक्व काव्यदृष्टि का परिचायक है। त्याग और तपस्या से सम्पोषित आत्माराधना को पाथेय बनाकर मुक्तिमार्ग पर विहार करने वाले एक साधक के द्वारा अध्यात्म जगत् के प्रतिनिधि सन्त के निवृत्ति परक जीवन की आत्मरमणता भी काव्यजगत् में प्रविष्ट होकर पाठकों के सहृदयों में कैसे आनन्द का कारण बन जाती है, यह प्रस्तुत काव्य का वैशिष्ट्य है। निश्चित रूप से यह काव्य ग्रन्थ काव्यरसिकों, मुमुक्षुओं, इतिहासकारों और सुधी भक्तों के लिए अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगा।

स्थान : टीकमगढ़ **–डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन**

दिनांक : 26 फरवरी, 2025 मो. 9810792587

शिष्य की गुरु को रचनात्मक कृतज्ञता है ‘खवगराय-सिरोमणी’

जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति, इतिहास एवं पुरातत्त्व के क्षेत्र में सिद्धांतचक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यानंदजी मुनिराज का योगदान अप्रतिम है। उनके ही शिष्य आचार्य वसुनंदी जी महाराज ने उनकी स्मृति में प्राकृत भाषा की गाथाओं में ‘खवगराय-सिरोमणि’ काव्यग्रन्थ रचकर गुरु के प्रति अपनी अद्‌भुत कृतज्ञता प्रगट की है।

यह रचना महज़ आचार्यश्री की जीवनी ही नहीं है बल्कि स्थान स्थान पर उनकी विशेषताओं और योगदानों को तिथिवार उल्लिखित भी किया गया है , जो इस रचना को ऐतिहासिक ग्रन्थ का दर्जा भी प्रदान करता है।

इसके साथ ही 1317 गाथाओं में रचित इस काव्य में जैनधर्म, दर्शन के विभिन्न सिद्धांतों और उपदेशों का भी वर्णन हुआ है जो इस ग्रन्थ को दार्शनिक ग्रन्थ का दर्जा प्रदान करता है।

आचार्य वसुनंदी जी महाराज ने आचार्यश्री से प्राकृत भाषा सीखी थी और उसका यह सुपरिणाम है कि आज उन्होंने प्राकृत भाषा की सैकड़ों रचनाओं से समकालीन प्राकृत साहित्य को समृद्ध कर दिया है, संभवतः अभी तक किन्हीं भी समकालीन आचार्य पर उनके शिष्य ने इतना बड़ा काव्य नहीं लिखा है, अतः परिमाण एवं परिणाम की दृष्टि इस ग्रन्थ को आधुनिक समकालीन साहित्य का दर्जा प्रदान करती है।

पूरे ग्रन्थ से अनेक गाथाएं उल्लेखनीय हैं किन्तु मुझे गुरु भक्ति की मिसाल स्वरूप सबसे अंत की गाथा मन को छू गई है, उसी गाथा को यहाँ उद्धृत कर मैं इस भावना से विराम लेता हूँ कि आचार्य जी की लेखनी सतत चलती रहे और वे इसी प्रकार साहित्य सम्वर्धन करते रहें–

जावदु चंदो अक्को, चरंते गगणम्मि वहंति सरिदा।
धम्मो देदि सुहं मे, मणे तावगुरुभत्ति सया।।

अर्थात् जब तक सूर्य और चन्द्रमा आकाश में गमन कर रहे हैं, नदियाँ प्रवाहमान हैं और धर्म सुख देता है तब तक मेरे मन में सदैव गुरुभक्ति विद्यमान रहे।

28/2/2025

–प्रो. डॉ. अनेकांत कुमार जैन
(Awarded by President of Bharat & Governor of UP, Best teacher award by Govt. of Delhi)
Proff. Deptt. of Jain Philosophy]
Shri Lal Bahadur Shastri
National Sanskrit University
New Delhi

महावीर की कीर्ति व देश के भूषण : शान्तिसाधक आ. श्री विद्यानंद जी महाराज

(आ. श्री वसुनंदि जी कृत 'खवगराय-सिरोमणी' के संदर्भ में)

–डॉ. शैलेश कुमार जैन
प्राध्यापक–जैनदर्शन
राज. वरि.उपा.सं.वि. गनोडा
Jain.shailesh1983@gmail.com
7014029330

परिवर्तिनि संसारे, मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन, याति वंशः समुन्नितम्॥

शाश्वत सत्य यही है कि जन्म के साथ ही मरण की यात्रा प्रारम्भ हो जाती है। जिसे सैद्धान्तिक दृष्टि से प्राप्त पर्यायगत आयु कर्म की स्थिति भी कहा जाता है। जन्म और मरण के बीच अवस्थित जीवन में किए जाने वाले महान कार्य व्यक्ति को महापुरुषों की श्रेणी में स्थापित कर देते हैं। श्वेतपिच्छाचार्य **श्री विद्यानंद जी महाराज** भी ऐसे ही विरले महापुरुष हुए हैं, जिनका व्यक्तित्व व कर्तृत्व दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति के इतिहास में चिरकाल के लिए टंकोत्कीर्ण हो चुका है।

जैनाचार्यों की अपने विषय में न लिखने रूप वीतरागता निश्चित रूप से उनके स्वरूप की शोभावर्धक होती है लेकिन प्रामाणिक इतिहास की दृष्टि से आने वाली पीढ़ियों के लिए कठिनाईयाँ उपस्थित हो जाती हैं। पचासों कृतियों का सृजन करने वाले और कुन्दकुन्द ज्ञान भारती जैसी

संस्था देने वाले आचार्य विद्यानंद जी महाराज ने भी अपने पूर्वाचार्यों की परम्परानुरूप स्वयं के बारे में न तो ज्यादा कुछ लिखा और न ही स्वयं के नाम से संस्थाओं आदि का निर्माण कराया। उनका सम्पूर्ण जीवन आत्मकल्याण के साथ श्रमण संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में व्यतीत हुआ। उनके द्वारा जो धर्म और धर्मात्माओं पर आगत संकटों का निवारण, तीर्थ संरक्षण, नव तीर्थ निर्माण, प्राकृत भाषा के अध्ययन केन्द्र, शोध-पत्रिकाओं का प्रकाशन आदि अनेक ऐसे ऐतिहासिक कार्य हुए हैं, जो दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति के एक कालजयी अध्याय के रूप में स्वर्णांकित रहेगा।

प्राकृत भाषा में 1317 गाथाओं में निबद्ध 'खवगराय सिरोमणी' श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज का एक चरित्र मात्र नहीं है, वरन् यह ग्रन्थ बीसवीं शताब्दी के जैन इतिहास की अनेक घटनाओं का प्रामाणिक दस्तावेज भी है। यह ग्रन्थ आने वाले साधुओं में श्रमण संस्कृति रक्षण और वर्धन को प्रोत्साहित करता रहेगा। दक्षिण भारत में जन्म लेकर 'उत्तरा दक्षिण तुल्या:' को साकार करते हुए उन्होंने श्रमण संस्कृति की पताका सर्वत्र लहराई है। यहाँ मैं भी जो लिख रहा हूँ, उस सबका आधार भी यही ग्रन्थ है।

दीक्षा-विरोध के अल्पायु आदि अनेक कारण सुनने में आते हैं लेकिन इन महापुरुष के दीक्षा के विरोध में लोगों ने दीक्षा गुरु आचार्य श्री महावीरकीर्ति से कहा कि ये राजनीतिक हैं इसलिए इनको दीक्षा नहीं देनी चाहिए। गुरु तो दूरदर्शी होते हैं, वे जानते हैं कि 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा' आज धर्म को भी राजनीतिक संरक्षण की आवश्यकता है। अत: उन्होंने शायद इसे भी गुण के रूप में ग्राह्य करते हुए बेझिझक दीक्षा दी और सब जानते हैं कि आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज के राजनीतिक दृष्टिकोण से देश को भी दिशा मिली और धर्म को संरक्षण मिला।

आकाशवाणी पर प्रवचन, आकाशवाणी पर जैन भजन, भारत सरकार के स्तर से भगवान महावीर का 2500वां जन्म कल्याणक महोत्सव, 16 वर्ष की आयु में स्वतंत्रता आन्दोलन में प्रवृत्त होना, भारत छोडो आन्दोलन के निमित्त एक समूह बनाकर नेतृत्व करना, पेड पर तिरंगा फहराना, राष्ट्रहित में अज्ञातवास काटना, कारागार में प्रवचन का सूत्रपात करना, शाश्वत तीर्थाधिराज सम्मेद शिखर पर्वत पर सीढियों के निर्माण की प्रेरणा, हजारों श्लोक कण्ठस्थ होना, कुन्दकुन्द भारती में प्राकृत भवन की स्थापना, खारवेल भवन, कुन्दकुन्द द्वि-सहस्राब्दी, खारवेल वर्ष, प्राकृत भाषा दिवस, लाल बहादुर शास्त्री विश्वविद्यालय में जैन तत्त्वज्ञान और प्राकृत भाषा के अध्यापन की सत्प्रेरणा, कुम्भोज बाहुबलि की सुरक्षा हेतु अनशन, अहिंसा स्थल दिल्ली में तीर्थंकर महावीर स्वामी की भव्य प्रतिमा की स्थापना और आगत अनेक संकटों का निवारण जैसे सैकडों महत्वपूर्ण अवदान इस ग्रन्थ से पीढ़ी-दर-पीढी लोगों को ज्ञात होते रहेंगे।

'मत ठुकराओ गले लगाओ' का संदेश देने वाले वे अप्रतिम आचार्य हुए हैं। पूर्वाचार्यों के प्रति श्रद्धा का आकलन इतने से ही किया जा सकता है कि उन्होंने जो भी किया पूर्वाचार्यों के नाम से किया। जैन तत्त्वज्ञान को सात समंदर पार पहुँचाने के लिए उन्होंने आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का रूसी अनुवाद करवाया। उनकी प्रेरणा से जो पुरस्कार स्थापित हुए वे भी पूर्वाचार्यों के नाम पर प्रारम्भ हुए। उनमें उमास्वामी पुरस्कार, कुन्दकुन्द पुरस्कार, अमृतचन्द्र पुरस्कार, चारित्र चक्रवर्ती पुरस्कार, नेमिचन्द्र पुरस्कार आदि हैं।

दिगम्बर जैन साधु के अनिवार्य उपकरण पिच्छी पर जब एक सरकारी आदेश से संकट गहराया तब आपने ही मोर पंख पर लगे प्रतिबंध को हटवाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

जिनशासन की गौरव गाथा गाने वाला दिल्ली स्थित अहिंसा स्थल जब कुछ अराजक तत्त्वों की कुदृष्टि का शिकार बनने लगा तब आपने तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी जी को पत्र लिखा। उस समय प्रधानमंत्री जी को जब पत्र मिला तो उन्होंने हाथ धोकर उस पत्र को पढ़ा। ये इस बात का साक्ष्य है कि देश के राजा भी उनके प्रति ही नहीं, उनके द्वारा लिखित अक्षरों के प्रति भी पूज्यता का भाव रखते थे। श्रेष्ठ साधकों को आज भले ही अवधिज्ञान न हो किन्तु उनका निमित्तज्ञान, उनके मुख से निःसृत बात चरितार्थ होती देखी जाती है। जब श्रवणबेलगोला महोत्सव में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को महोत्सव में उपस्थित होने की बात पूज्य श्री ने कही, तब श्रीमती गाँधी ने कहा कि उस समय तो मैं जेल में रहूँगी लेकिन आचार्यश्री ने कहा कि नहीं, तुम जेल में नहीं रहोगी–और ऐसा ही हुआ।

अपने गुरु का गुणगान करते-करते लेखक आचार्यश्री ने मूलगुण, तत्त्व विवेचन, वैराग्य, धर्म, तप, साधना, ध्यान, परीषह आदि विषयों पर आगमानुसार वर्णन कर एक आगम ग्रन्थ का भी रूप दे दिया है। चूंकि, आचार्य श्री वसुनंदि जी महाराज आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज के प्रियाग्र शिष्य रहे हैं, अतः उनके द्वारा शिष्यों को दी गई शिक्षाओं का भी इस ग्रन्थ में गुंथन हुआ है, जो शिष्य और गुरु सभी के लिए आचरणीय है।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज के सल्लेखना के अंतिम दिनों के चित्र और श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज की सल्लेखना के चित्र साम्यता लिए हुए देखे जा सकते हैं। बाल्यावस्था में वे शिक्षा के लिए शेडवाल के शान्तिसागर आश्रम में गए थे और वहाँ

से उनमें चा.च. आ.श्री शान्तिसागर महाराज के संस्कार गर्भित हो गए। तभी तो वे अपना उपसंहार आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज की तरह सल्लेखना पूर्वक कर सके। उन्होंने महावीर की कीर्ति भी फहराई और वे देश के भूषण भी बने। इस प्रकार उन्होंने भगवान महावीर के शासन की प्रभावना करते हुए अपने गुरु और गुरु परम्परा का निर्वहन किया।

'जग सुहितकर सब अहितहर श्रुति सुखद सब संशय हरें। भ्रम रोग हर जिनके वचन, मुख चंद्रतें अमृत झरैं' पंक्तियाँ जिनके उवाच से सार्थक होती हैं, प्राकृत भाषा में पचास हजार से अधिक गाथाओं में ग्रन्थों का प्रणयन कर चुके हैं, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी हैं, वात्सल्य के असीम आकाश हैं, गुरु के प्रति सदैव विनयावनत हैं, संघ-संचालन में कुशल हैं, जो इस ऐतिहासिक काव्य 'खवगराय सिरोमणी' के सृजेता हैं, जिन्होंने अपने गुरु के गुणों को लिखकर न मात्र शिष्य धर्म का कार्य किया है बल्कि दि. जैन श्रमण संस्कृति के एक महान आचार्य का जीवन चरित गूँथकर एक प्रामाणिक ऐतिहासिक दस्तावेज प्रस्तुत कर दिया है, ऐसे आचार्य श्री वसुनंदी जी जो कि स्वनाम धन्य हैं क्योंकि वे वसु यानि आठों याम/आठों पहर आनंद में रहने वाले हैं और भक्तों को भी आनंदित करने वाले हैं, ऐसे उन लेखक आचार्य अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी वसुनंदि जी महाराज के पूज्य पाद पद्मों में सादर, सविनय नमोस्तु पूर्वक विराम।

महावीर सी वीरता देश के भूषण संत।
शांति सुधाकर परम गुरु वंदूं विद्यानंद॥
जब तक नभ में विचरते रहेंगे रवि औ चंद।
शैलेश तब तक विनत है चरण में विद्यानंद॥

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	अध्याय	गाथा सं	पृ.सं.
1.	मंगलायरणं (मंगलाचरण)	1-19	1
2.	सेसवयालो (शैशवकाल)	20-83	6
3.	वेरग्ग-फलस्सुदी (वैराग्य फलश्रुति)	84-115	21
4.	जहाजादो-दियंबरो (यथाजात दिगंबर)	116-367	29
5.	आयंस-पाढगो (आदर्श पाठक)	368-474	87
6.	वीसमसदीए पढम-एलाइरियो (20वीं शताब्दी के प्रथम एलाचार्य	475-601	110
7.	पंचायार-परायणो (पंचाचार परायण)	602-736	147
8.	जिणसासण-पहावणा (जिनशासन प्रभावना)	737-882	174
9.	चेयणाचेयण-किदी (चेतन व अचेतन कृतियाँ)	883-992	213
10.	अप्पसुहयर-सिक्खा (आत्मसुखकारी शिक्षाएँ)	993-1120	236
11.	सल्लेहणा (सल्लेखना)	1121-1266	262
12.	गंथपसत्थी (ग्रंथ प्रशस्ति)	1267-1317	291
13.	श्लोकानुक्रमणिका		301

खवगराय-सिरोमणी

(क्षपकराज शिरोमणि)

मंगलायरणं

(मंगलाचरण)

अरिहादी परमेट्ठी, अणाइणिहणा सया सव्वसेट्ठा।
पणमामि पंचगुरुणो, भावविसुद्धीइ तिजोगेहि।।1।।

अनादिनिधन, सर्वश्रेष्ठ अरिहंतादि परमेष्ठी वा पंच गुरुओं को भावों की विशुद्धिपूर्वक मैं त्रययोग से नमस्कार करता हूँ।

दुहतिसाविणडियाणं, सुदजलपयाणस्स सद्धम्मपवं।
विज्जाणिलयं सूरिं, विज्जाणंदगुरुं पणमामि।।2।।

जो दु:ख रूपी तृषा से व्याकुल हुए भव्य जीवों को श्रुत रूपी जल प्रदान करने के लिए सद्धर्म रूपी प्याऊ हैं उन विद्या के निलय आचार्यश्री विद्यानंद गुरुदेव को नमस्कार करता हूँ।

तविदाण भवकाणणे, मिच्छत्तण्णाण-असंजमवसेण।
दुक्खतावं खयेदुं, सक्कं संतिसायरं थुवमि।।3।।

मिथ्यात्व, अज्ञान व असंयम के वश से संसार रूपी वन में दु:ख से संतप्त प्राणियों के दु:ख रूपी ताप के क्षय करने में समर्थ चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी मुनिराज की मैं सदा स्तुति करता हूँ।

सिरिगुरुजीवण-चरियं, महण्णवोव्व णहोव्व अइविसालं।
णेव को वि संसारे, गुरुगुणं कहेदुं समत्थो।।4।।

परम पूज्य आचार्यश्री विद्यानंदजी गुरुदेव का जीवन चरित्र महासागर वा आकाश के समान अत्यंत विशाल है। गुरु के गुणों को कहने में संसार में कोई भी समर्थ नहीं है।

जो गहदि सुगुरु-सरणं, पुण्ण-सद्धाए विमलचित्तेणं।
पावदि णंदमकत्थं अगाह-णीरे सो मीणोव्व॥5॥

जो पूर्ण श्रद्धा व निर्मल चित्त से सुगुरु की शरण प्राप्त करता है वह अगाध जल में मीन के समान अकथनीय आनंद को प्राप्त करता है। अर्थात् जिस प्रकार अगाध जल में मछली आनंद को प्राप्त करती है उसी प्रकार गुरु-चरण-शरण में भव्य जीव आनंद को प्राप्त करता है।

गुरुवंदण-णिमित्तेण, णंदंते समप्पिदा लहु-सिस्सा।
आयासे उड्डंता, सुहसंपत्ता लहुपक्खीव॥6॥

जिस प्रकार आकाश में उड़ते हुए लघु पक्षी भी सुख प्राप्त करते हैं उसी प्रकार गुरुवंदना के निमित्त से समर्पित लघु शिष्य भी आनंदित होते हैं व सुख प्राप्त करते हैं।

जो सिस्सो पुत्तो वा, विणीदो सुगुरु-पिदर-जुगचरणेसु।
णियमेण लहदि सोक्खं, गुरुकिवा खयदि दुह-पावाणि॥7॥

जो शिष्य वा पुत्र अपने गुरु वा माता-पिता के चरणों में विनम्र होता है वह नियम से सुख प्राप्त करता है। अहो! गुरुकृपा सभी दुःख व पापों का क्षय करती है।

अणुओ वर-सिस्सो अवि, गुरुस्स अच्चंत-पियो दु किं णेव।
अपुट्ठवयणेहिं सग-पिदर-रंजायग-सुबालोव्व॥8॥

जब अस्पष्ट वचनों (तोतली भाषा) के माध्यम से छोटा बालक अपने माता-पिता को रंजायमान करता है तब छोटा श्रेष्ठ शिष्य भी गुरु को अत्यंत प्रिय क्यों नहीं होगा? अर्थात् अवश्य होगा।

जे सिस्सा णियचित्ते, सगगुरुं भयवदोव्व संठवंते।।

णियमादु रक्खिदा ते, गुरुणा लहंति सुहं संतिं।।9।।

जो शिष्य भगवान् के समान अपने गुरु को निज चित्त में स्थापित करते हैं वे सब गुरु के द्वारा रक्षित होते हैं एवं सुख व शांति को नियम से प्राप्त करते हैं।

कट्टु गुरुपदवंदणं, सुद्धहिअयेण सुभावेण सुमरिय।

खवगरायसिरोमणिं, गंथं वोच्छामि णमिय गुरुं।।10।।

आचार्यश्री विद्यानंद गुरुदेव की पगवंदना कर, शुद्ध हृदय व शुभ भाव से गुरु का स्मरण कर, गुरु को नमस्कार कर मैं ''क्षपकराज शिरोमणि'' नामक ग्रंथ को कहता हूँ।

विणा गुरुकिवाए णो, विणेयो समत्थो कज्जसिद्धीइ।

जह अक्कपयासादिं, विणा णेव वड्ढंति रुक्खा।।11।।

गुरु-कृपा के बिना कोई भी शिष्य कार्य पूर्ण करने में उसी प्रकार समर्थ नहीं होता जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश आदि के बिना वृक्ष वृद्धिंगत नहीं होते।

तरु-ठिदीइ संवड्ढण-हेदू अक्को वाऊ जलमादी।

जह तह गुरु-किवा सया, गुण-संवड्ढणस्स सिस्सस्स।।12।।

जैसे वृक्षों की स्थिति व उनके संवर्धन का कारण सूर्यप्रकाश, वायु, जल आदि हैं उसी प्रकार शिष्य के गुणों के संवर्धन का कारण सदैव गुरु-कृपा है।

सिस्सस्स गुरुकिवा चिय, पाणवाउव्व सुह-हेदू णिच्चं।

ताइ विणा अहंकार-संजुदो सिस्सो दुह-पत्तो।।13।।

गुरु कृपा शिष्य के लिए प्राणवायु के समान है एवं नित्य सुख का कारण है। उसके बिना शिष्य अहंकार से युक्त व दुःख-पात्र होता है।

लोगे मण्णदे गुरू, णाणदायगो अवि एगक्खरस्स।
जो दायदि सद्धम्मं, सो गुरू णेव कहं पुज्जो।।14।।

एक अक्षर का ज्ञान देने वाला भी लोक में गुरु माना जाता है। जो जीवन में सद्धर्म देता है वह गुरु पूज्य क्यों नहीं होता अर्थात् अवश्य ही पूज्य होता है।

रयणत्तयं हु धम्मो, उत्तमखमादी दहविहो धम्मो।
अहिंसा महाधम्मो, वत्थुसहाव-सासयधम्मो।।15।।

निश्चय से रत्नत्रय धर्म है। उत्तम क्षमादि दस प्रकार के धर्म हैं। अहिंसा महाधर्म है और वस्तु का स्वभाव शाश्वत धर्म है।

सूरी विज्जाणंदो, रट्ठसंतो सिद्धंतचक्की तह।
सिदपिच्छिधारगो सय, सद्दिट्ठीहिं वंदणीयो।।16।।

राष्ट्रसंत, सिद्धांतचक्रवर्ती, श्वेतपिच्छिधारक आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज सम्यग्दृष्टियों के द्वारा सदैव वंदनीय हैं।

पुप्फाणं सामिप्पं, देदि सुगंध-मग्गिस्स उण्हत्तं।
सरिदाइ-सीयलत्तं, इट्ठजणाणं च आणंदं।।17।।
सज्जणस्स सामिप्पं, सज्जणत्तं च सट्ठं दुट्ठाणं।
णिग्गंथ-सुसामिप्पं, भयवत्त-पगासणा-सत्तिं।।18।। (जुम्मं)

जैसे पुष्पों की निकटता सुगंध, अग्नि की निकटता ऊष्णता, सरिता की निकटता शीतलता, इष्टजनों की निकटता आनंद, सज्जनों की निकटता सज्जनता और दुष्टों की निकटता दुष्टता देती है उसी प्रकार निर्ग्रन्थ गुरुओं की श्रेष्ठ संगति निजात्मा में भगवान् के प्रकटीकरण की शक्ति देती है।

किदण्हुत्तं दंसिदुं, सगगुरुं पडि वोच्छामि गंथमिदं।
गुरुगुणं पाविदु-मण्ण-भावेहिं णो विसुद्धीए।।19।।

अपने गुरु के प्रति कृतज्ञ भाव प्रदर्शित करने के लिए मैं इस ''क्षपकराज शिरोमणि'' ग्रंथ को कहता हूँ। किन्हीं अन्य भावों से नहीं अपितु विशुद्धिपूर्वक गुरु के गुणों को प्राप्त करने के लिए कहता हूँ।

सेसवयालो

(शैशवकाल)

भारदं अणादीदो, अज्झप्प-विज्जुप्पायगा उस-भू।
मुणि-गेहि-अवेक्खाए, रिसि-किसी पहाण-कज्जाइं॥20॥

भारतदेश अनादिकाल से ही अध्यात्मविद्या की उत्पादिका धर्मभूमि है। योगी व गृहस्थ की अपेक्षा से क्रमशः ऋषि व कृषि प्रधान कार्य हैं अर्थात् देश में ऋषि व कृषि की प्रधानता है।

किसि-कारग-किसीवलो, धम्म-देस-संरक्खगो णियमेण।
किसिं विणा ण संभवो, मुणि-सावग-धम्मपालणं च॥21॥

कृषि को करने वाले कृषक नियम से धर्म व देश के संरक्षक हैं। श्रमणधर्म व श्रावकधर्म का पालन कृषि के बिना संभव नहीं है।

अणेय-पंता सुणाम-धारगा सुहदा धम्मजुदा अत्थ।
राया दु णायजुत्ता, सव्व-पया कत्तव्वसीला॥22॥

यहाँ अच्छे नाम वाले सुखद व धर्म से युक्त अनेक प्रांत हैं। जहाँ राजा न्याय से युक्त व सर्व प्रजा कर्त्तव्यनिष्ठ है।

कण्णाडग-सुहपंते, बहुजणपदजुद-भारद-दक्खिणम्मि।
बेलगाम-जणपदम्मि, सेडवाल-गामो पसिद्धो॥23॥

उन्हीं में दक्षिण भारत में बहुत जनपदों से युक्त कर्नाटक नामक शुभ प्रांत है। उसके बेलगाम नामक जनपद में शेडवाल नामक प्रसिद्ध गाँव है।

गगणचुंबी सिहरेण, सह तित्थ-पडिमा-जुद-जिणालयो दु।
भत्तेहि समाकिण्णो, पूरिदो पूयाइ-रवेहिं॥24॥

वहाँ गगनचुंबी शिखर से सहित, तीर्थंकर भगवान् की प्रतिमा से युक्त सुंदर जिनालय है जो सदैव भक्तों से समाकीर्ण और भक्ति-पूजादि के शब्दों से परिपूरित रहता है।

सरस्सदी देवी कल्लप्पा उवज्झे य वरदंपत्ती।

तत्थ धम्मज्झाण-जुद-पसंतो भद्द-सयायारी।।25।।

वहाँ धर्मध्यान से युक्त, प्रशांत, भद्र परिणामी, सदाचारी श्री कल्लप्पा उपाध्ये और श्रीमती सरस्वती देवी श्रेष्ठ दंपत्ति थे।

जिणपूया-गुरुसेवा-णिरदा य सव्व-अभक्ख-चागी ते।

पव्वेसुं उववासो, गिहे जवहवणं सज्झाओ॥26॥

वे जिनपूजा, गुरुसेवा में निरत, सर्व अभक्ष्य के त्यागी थे। वे पर्वों पर उपवास करते, घर पर जप, हवन व स्वाध्याय किया करते थे।

ताइ उप्पण्णो सिसू, ऊणवीस-सय-पणवीस-वस्सम्मि।

बावीस-अप्पेलम्मि, सुरिंदो णामो हरिसेणं॥27॥

उन माँ सरस्वती ने 22 अप्रैल, 1925 को एक शिशु को जन्म दिया। जैन ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न उस बालक का नाम हर्षपूर्वक सुरेंद्र रखा गया।

तदा जम्मसमयम्मि हि, ठवंत-दुद्धपत्तं अंगणम्मि हु।

पक्खालीअ सहसा दु, दुद्धवरिसा णंद-पदीगा॥28॥

जब बालक का जन्म हुआ तब जन्म के समय ही घर के आंगन में दूधपात्र को रखते हुए वह पात्र अचानक फिसल गया। ऐसा लगा मानो दूध की वर्षा हुई हो। दूध की वर्षा आनन्द या शुभ शगुन का प्रतीक है।

विक्कमी मेसरासी, तुला लग्गजम्मपत्तीए तस्स।

उच्चादो मंदस्स य, ससपंचमहापुरिस-जोगो॥29॥

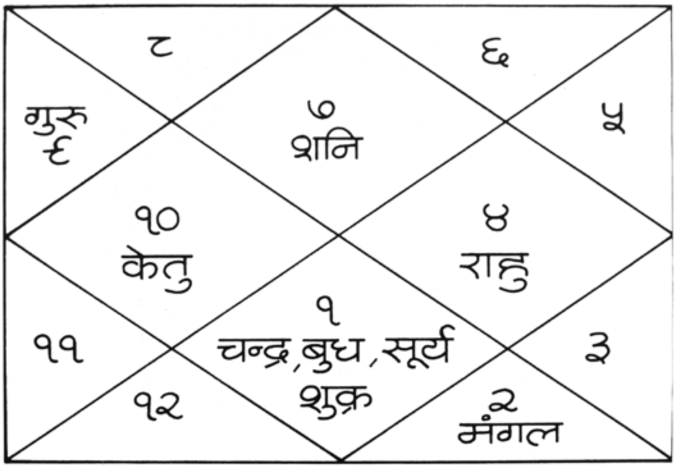

सूरुच्चो मेसत्थो, बुहसहिदो सुह-बुहादिच्च जोगो।
कुलदीवगो सुजोगो, रविगद-रायजोगो वि तहा।।30।।
सुक्किंदूहि सह तस्स, जुदी सुहफलदायगा अइसेट्ठा।
बालबंभयारी सो, अट्ठमभावे मंगलादो।।31।।
तिदियभावे गुरुदो, लेहगो संपादगो सुहकत्ता।
पारासरी य सुणफा, वेसी इच्चादी सुजोगा।।32।।

उनकी जन्मपत्रिका में विक्रमी मेष राशि थी एवं तुला लग्न थी। लग्न में उच्च का शनि होने से शश पंचमहापुरुष योग था। मेष में स्थित सूर्य उच्च का था। उसके साथ बुध था तब शुभ बुधादित्य योग बना। वहाँ कुलदीपक नामक सुयोग तथा रविगत राजयोग भी था। शुक्र व चंद्र के साथ उनकी युति शुभ फलदायक व अति श्रेष्ठ थी। अष्टम भाव में मंगल होने से वे बाल ब्रह्मचारी थे। तृतीय भाव में गुरु होने से वे लेखक, संपादक, शुभकार्यों के कर्ता थे। उनकी कुंडली में पाराशरी, सुनफा, वेशी आदि शुभ योग भी थे।

णिमित्तणाणिणा तदा, कहिदं सुपुत्तो देसरायो वा।
वा रायोव्व उक्किट्ठ-देसुद्धारग-मुक्खसाहू।।33।।

तब निमित्तज्ञानी ने कहा कि यह सुपुत्र देश का राजा होगा या राजा के समान उत्कृष्ट देश का उद्धार करने वाला मुख्य साधु होगा।

मादु-पबलभावणाइ, जंते सिसुजीवणम्मि सक्कारा।
सिसु-सेट्ठ-जीवणस्स दु, बीयं व जणणी-सक्कारा॥34॥

माता की प्रबल भावना से शिशु के जीवन में संस्कार उत्पन्न होते हैं। शिशु के श्रेष्ठ जीवन के लिए माँ के संस्कार बीज के समान हैं।

बहुदोहग्गवंता दु, गहंति जे ण सक्कारा मादूइ।
अप्पवये सक्कारा, गहीअ सो पुव्वपुण्णेणं॥35॥

वे बहुत दुर्भाग्यशाली हैं जो माँ के संस्कारों को ग्रहण नहीं करते। उन सुरेन्द्र ने पूर्व पुण्य से अल्पवय में ही माँ के संस्कारों को ग्रहण किया।

सुरिंदस्सेग-भादू, तियभगिणी सुगुणजुत्ता सुसीला।
सुसक्कारी य सव्वा, अग्गज-सुरिंदो वि तहेव॥36॥

सुरेन्द्र के एक भाई व तीन बहनें थीं। ये तीनों ही बहनें सुगुणों से युक्त व सुशीला थीं। सभी सुसंस्कारी थे। इनमें सबसे बड़े सुरेन्द्र थे वे भी उसी प्रकार संस्कारी व गुणवान् थे।

ववहारकुसलो महा-णिउणो अज्झयणे सेवाभावी।
दयावंतोवयारी, पया-णायगोव्व महसूरो॥37॥

सुरेंद्र व्यवहारकुशल, अध्ययन में महानिपुण, सेवाभावी, दयावान्, उपकारी एवं प्रजानायक के समान महाशूर थे।

महासत्तिसंपण्णो, सक्को वहिदुं लक्खधण्णभारं।
विणा सहकारेण सो, सिरोवरि धारेदुं पि तहा॥38॥

वे महाशक्ति से संपन्न थे। वे एक कुंटल भार वाले गेहूँ, ज्वार आदि के बोरा उठाने में समर्थ थे एवं बिना सहयोग के स्वयं सिर पर रखने में भी समर्थ थे।

संगीदे रुइवंतो, संगीद-सिक्खा वि लहिदा तेणं।
इगतंतीए कुसलो, पिया कण्णाड-परमेट्ठि-थुदी।।39।।

वे संगीत में रुचिवान् थे। उन्होंने संगीत की शिक्षा भी ग्रहण की थी। वे एकतारा (वाद्य यंत्र) में कुशल थे और कर्नाटक की परमेष्ठी स्तुति उन्हें प्रिय थी।

सुरिंदस्स वरमित्तं, सादगउडा पाडिलो धीमंतो।
सुसक्कार-जुदो मंद-कसायी हिदयरो सुगुणी य।।40।।

सुरेंद्र का एक बुद्धिमान् सातगौड़ा पाटिल नामक श्रेष्ठ मित्र था। वह सुसंस्कार से युक्त, मंद कषायी, हितकारी एवं गुणवान् था।

परोप्परम्मि किड्डीअ, वेयगंगा-दुद्धगंगा-णदीसु।
तरंता ते सोहेज्ज, उहयगंगासु अक्किंदू व।।41।।

वे दोनों आपस में वेदगंगा और दूधगंगा नदियों में क्रीड़ा करते थे। गंगाओं में तैरते हुए वे मित्र सूर्य व चंद्रमा के समान प्रतिभासित होते थे।

ते वर-तारगा अथक्कंता पउमासणेण संतरीअ।
मीलंतं सरिदाए, उहय-बालसहा किड्डित्ता।।42।।

वे दोनों बालसखा नदी में क्रीड़ा करते हुए श्रेष्ठ तैराक होकर बिना थके पद्मासन लगाकर नदी में मीलों तक तैरा करते थे।

तरंगिणीइ तरंतो, किड्डीअ बहु-मुहुत्त-पमाणंतं।
भावीअ भावण-महो, सक्केमु तरिदुं भवसिंधुं।।43।।

वे बहुत मुहूर्त प्रमाण तक नदी में तैरते हुए क्रीड़ा किया करते थे, तब वे भावना भाते थे अहो! मैं संसार सागर को भी पार करने में समर्थ होऊँ।

पवीण-किड्डालू सो, सुरिंदो णेउत्त-गुण-संजुत्तो।
लोयप्पियो बालेसु, साहिमाणी संकप्प-जुदो।।44।।

वह बालक सुरेंद्र कुशल खिलाड़ी था एवं नेतृत्व गुण से संयुक्त था। वह बालकों के मध्य अत्यंत लोकप्रिय था। वह स्वाभिमानी व संकल्पशक्ति से युक्त था।

भासा-अज्झयणे रुइ-वंतो इच्छणुसारेण पिदरस्स।
ताण पसंतपुत्तेण, पारंभिदा सिक्खा सुहदा।।45।।

भाषा के अध्ययन में वह रुचिवान् था। पिता की इच्छानुसार पुनः उनके प्रशांत पुत्र ने सुखद शिक्षा प्रारंभ की।

मादामही-गिहे सो, चउवासंतं ठाएज्ज णंदेण।
सत्ततीस-अहिय-ऊणवीस-सद-वस्सम्मि गच्छीअ।।46।।

सन् 1937 में वह ननिहाल-ग्रिजोणे चला गया। वह बालक चार वर्ष तक अपनी नानी के घर आनंद से रहा।

दाणवाडम्मि गहिदा, सेट्ठ-महरट्ठी-भासाए वरं।
पच्छा सेडवालम्मि, कण्णड-भासाए पुण तेण।।47।।

सुरेंद्र ने दानवाड़ (महाराष्ट्र) में श्रेष्ठ मराठी भाषा में शिक्षा ग्रहण की। पुनः शेडवाल में कन्नड़ भाषा में शिक्षा ग्रहण की।

तत्थ अइरुइत्तादो, पविसिदो संतिसायर-अस्समम्मि।
पुणो सुरुइ-उप्पण्णो, महरट्ठी-मज्झमत्तादो।।48।।

किन्तु कन्नड़ भाषा में शिक्षा ग्रहण में रुचि नहीं हुई तब पिताजी के कहने पर अति रुचि से शेडवाल के ही शांतिसागर आश्रम में प्रवेश लिया। पुनः मराठी माध्यम से शिक्षा होने के कारण सुरेंद्र की पढ़ाई में रुचि उत्पन्न हो गई।

संतिसायर-अस्समे, पढिदं वर-जइण-दंसणं तेणं।
अज्झयणे अइ-कुसलो, पवीणो वि अण्णकज्जेसुं।।49।।

उन्होंने ‘शांतिसागर आश्रम’ में श्रेष्ठ जैनदर्शन को पढ़ा। वे अध्ययन में अतिकुशल और अन्य कार्यों में भी प्रवीण थे।

तत्थ एयदा गुरुणा, तज्जिदो सो चिरेण जग्गणादो।
पहादे तद्दिणादु, णो कयावि जग्गीअ चिरेण।।50।।

वहाँ आश्रम में एक बार देर से जागने से उनके गुरु ने बालक को डाँट लगायी। गुरु की डाँट का उन पर यह प्रभाव हुआ कि वे उस दिन से सुबह कभी देर से नहीं उठे।

तद्दिणादो पहादे, सिग्घं जग्गित्तु घंटं वादेज्ज।
सुहणिद्दं उज्झित्ता, सव्वपढमं वंदेज्ज जिणं।।51।।

उसी दिन से सुबह जल्दी उठकर घंटा सुरेंद्र ही बजाने लगा। सुख-निद्रा को त्यागकर वह सर्वप्रथम जिनेन्द्रप्रभु की वंदना करता था।

गुरु-तवण्णा पसण्णो, तस्स अणुसासणेण गंभीरेण।
पदायिदासीवायो, आसूणीजुत्तवयणेहिं।।52।।

उसके अनुशासन व गांभीर्य से उसे डाँटने वाले गुरु तवण्णा भी प्रसन्न हो गए और उन्होंने प्रशंसा युक्त वचनों से उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया।

सातंत-पेम्मी राय-णीदीइ पवीणो सेवगो सुट्ठु।
करुणा-वच्छल्ल-खमा-विणयजुद-महाउज्जमी सो।।53।।

वह सुरेंद्र बचपन से ही स्वतंत्रता प्रेमी, राजनीति में कुशल, श्रेष्ठ सेवक, करुणा, वात्सल्य, क्षमा व विनयादि से युक्त महा- उद्यमी था।

दूरदिट्ठा अप्पाणुसासण-णेही उच्छाही धीरो।
सहज-सरलो किदण्हू, परोवयारी सहावेणं।।54।।

वह दूरदृष्टा, आत्मानुशासन का स्नेही, उत्साही, धैर्यवान्, सरल, सहज, कृतज्ञता के भाव से पूरित एवं स्वभाव से ही दूसरों का उपकार करने में संलग्न था।

उज्जमसीलो सेवा-भावरदो उच्छाही सुकज्जेसु।

ण कज्जं गुरु-लहू वा, भावणा हि तस्स दिट्ठीए।।55।।

वह बालक उद्यमशील, सेवाभाव में रत एवं सत्कार्यों में उत्साही था। उसकी दृष्टि में कार्य छोटे-बड़े नहीं थे मात्र भावनाएँ ही छोटी-बड़ी महत्त्वपूर्ण थीं।

सहायी दीण-दुहीण, रोयीण अणुवत्तगो धीमंतो।

किसि-कम्मे रुइवंतो, वावारे सेवाकज्जासु।।56।।

वह दीन-दुखियों का सहायक, रोगियों की सेवा करने वाला, बुद्धिमान्, कृषिकर्म, व्यापार व सेवादि कार्यों में रुचिवान् था।

वा पण-छ-वासाउम्मि, तस्स चउमासा-मुणिवरेगस्स।

गामे धम्मज्झाणं, करिदं मुणिसंगं बालेण।।57।।

उस बालक सुरेंद्र की पाँच वा छह वर्ष की आयु में उस नगर में एक मुनिराज का चातुर्मास हुआ।

दिस्संति पूद-पावा, दोलाए पिच्छि पडि राय-जुदो।

रुई धम्मुवएसम्मि, जिण-सत्थ-गुरु-भत्तीए सो।।58।।

''पूत के पाँव पालने में ही नजर आ जाते हैं'' वह बालक सुरेंद्र मुनिराज की पिच्छी के प्रति राग से युक्त था। वह जिनदेव, शास्त्र, निर्ग्रन्थ गुरुभक्ति व धर्मोपदेश में रुचिवान् था।

सिग्घं यालो जवीअ, लोगिगं विज्ज-मज्झंतो पच्छा।

जीविगज्जणस्स साहिमाणी पहुच्चीअ पुणे सो।।59।।

लौकिक विद्या का अध्ययन करते हुए काल शीघ्र ही व्यतीत हो गया। पश्चात् जीविकोपार्जन के लिए वह स्वाभिमानी सुरेंद्र पुणे पहुँचे।

सत्थ-जंतागारम्मि, भावि-अहिंसा-धम्म-पेरगेणं।
कुव्विदं कज्जं पुणो, पूअल-जंतागारे पुणे॥60॥

भावी अहिंसाधर्म के प्रेरक सुरेंद्र ने हथियारों के कारखाने में काम किया पुनः वह नौकरी छोड़ पुणे में बिस्कुट फैक्ट्री में काम करने लगा।

सोलसवस्साउम्मि दु, देससतंताहियाणे पवत्तो।
महप्पा-गंधिस्स सुह-वियारेहिं पहाविदो सो॥61॥

सोलह वर्ष की आयु में ही वे देश के स्वतंत्रता अभियान में प्रवृत्त हो गए। महात्मा गांधी के शुभ विचारों से वे बहुत प्रभावित थे।

''मुंच भारदं'' दु देस-वावि-अंदोलणम्मि सुपमुहो सो।
णेउत्तं करिदं सगजूहेण सह भत्तेण तेण॥62॥

1942 में 'भारत छोड़ो' का देश व्यापी आन्दोलन हुआ। उस आन्दोलन में वे प्रमुख थे। उस देशभक्त ने अपने समूह के साथ उस आन्दोलन का नेतृत्व किया।

रत्तीए चउप्पहे रुक्खम्मि चिय तिवण्णि-धया फुरिदा।
कहंतो जयदु भारद-मायासपूरिदं एयदा॥63॥

उस समय एक बार रात्रि में जोर-जोर से आकाश को गुंजायमान करने वाली 'भारत माता की जय' कहते हुए उन्होंने चौराहे पर स्थित पेड़ पर तिरंगा फहरा दिया।

पहादे णादे गाम-पाडिलेण गवेसिदा अवराही।
पुण कहीअ तज्जंतो, सयं हि अवरोहेज्जा धयं॥64॥
अहवा तप्परो तुमं, रायदंडस्स मिच्चुदंडस्स वा।
किण्णु देसस्स भत्तो, मरिसेज्ज देसवमाणं णो॥65॥ (जुम्मं)

सुबह ज्ञात होने पर गाँव के पाटिल ने अपराधियों की खोज करना प्रारंभ की। पुनः जब ज्ञात हुआ तो उन्होंने धमकी देते हुए कहा कि या तो तुम स्वयं झंडा उतार दो अथवा राजदंड या मृत्युदंड के लिए तैयार हो जाओ, किन्तु उस देशभक्त को देश का अपमान सहन नहीं था।

देस-गउरव-सुरक्खग-सुरिंदेण अवरोहिदा धया णो।
सगजणाण रक्खाए, अण्णादवासो कदो किण्णु॥66॥

देश के गौरव की सुरक्षा करने वाले उन सुरेंद्र ने झंडा उतारने से मना कर दिया, उन्होंने झंडा नहीं उतारा किन्तु अपने परिवारजनों की रक्षा के लिए उन्होंने अज्ञातवास किया।

जणपदस्स सुणेदुस्स, सव्वपेम्मभायगस्स तह हिअयं।
पुव्वसक्कारेहि उक्किट्ठ-देसभत्ति-पूरिदं हु॥67॥

देश स्वतंत्रता संग्राम में सुरेन्द्र अपने जनपद का नेतृत्व करने वाले थे और सभी के प्रेम के पात्र थे। उनका हृदय पूर्वसंस्कारों से ही उत्कृष्ट देशभक्ति से युक्त था।

बालवत्थाए हि सो, देसुण्णदीए-माणवसेवाण।
भाव-जुद-लोयप्पियो, उज्जमी अहिंसापेम्मी य।।68।।

वे सुरेन्द्र बचपन से ही देशोन्नति और मानवसेवा की भावना से युक्त थे। वे लोकप्रिय, उद्यमी और अहिंसा प्रेमी थे।

सणिअं सणिअं दु कुंथु-सायरसूरिस्स जम्मभूमीए।
पहुच्चीअ एणापुर-णयरं च पढीअ बहुगंथं।।69।।

अज्ञातवास के दौरान वे धीरे-धीरे आचार्यश्री कुंथुसागर जी की जन्मभूमि ऐनापुर पहुँच गए। वहाँ उन्होंने बहुत से ग्रंथों का अध्ययन किया।

पढिय अणेग-सत्थाणि, वक्कमीअ वेरग्गं संवेगो।
सकल्लाणस्स रूई, पुण्णुदयेण फुडीअ चित्ते।।70।।

अनेक शास्त्रों को पढ़कर उनमें वैराग्य व संवेग भाव उत्पन्न होने लगा। अत्यंत पुण्य के उदय से उनके चित्त में निजात्मकल्याण की रुचि प्रकट होने लगी।

गंभीररूवेण सो, अइपीडिदो असज्झ-विसमजरेण।
विहाय जीवण-आसं, जवीअ दु णमोयार-मंतं।।71।।

किन्तु तभी उन्हें असाध्य मोतीझरा निकला जिससे वे गंभीर रूप से पीड़ित हो गए। रोग इतना असाध्य हो गया कि उन्होंने अपने जीवन की आशा छोड़ दी और णमोकार मंत्र का जाप करने लगे।

मित्तेण सेडवालं, पहुच्चाविदो य पिदर-समीवम्मि।
सव्वा चिंतिदा तत्थ, पस्सित्तु रुग्गवत्थं तस्स।।72।।

उनकी यह दशा देखकर उनके मित्र ने उन्हें उनके माता-पिता के पास शेडवाल पहुँचा दिया। उनकी इस रुग्ण अवस्था को देखकर वहाँ सभी बहुत चिंतित हुए रोने लगे।

किण्णु सुह-सज्झायस्स, पहावेण पसंतो धम्मलीणो।
जवीअ णमोयारं दु, अहण्णिसं णिम्मल-चित्तेण॥73॥

किन्तु ऐसी दशा में भी शुभ स्वाध्याय के प्रभाव से वे प्रशांत और धर्मध्यान में लीन थे। निर्मल चित्त से वे निरंतर णमोकार मंत्र का ही जप कर रहे थे।

ओग्गहीअ संकप्पं, सिरीसंतिणाह-पडिमा-सम्मुहे।
गहमि बंभचरियवदं, जदि हं जीवस्सामि चिय तो॥74॥

उस बीमारी के समय उन्होंने श्री शांतिनाथ भगवान् की प्रतिमा के सम्मुख यह संकल्प लिया कि यदि मैं इस बीमारी से बचकर जीवित रहूँगा तो मैं आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करूँगा।

पावकम्म-मुवसमिदं, समयेण सह होही वत्तलाहो।
पुण्णेण लहिदं तेण, महावीरकित्ति-साणिज्झं॥75॥

समय के साथ पाप कर्म का उपशम हुआ और उन्होंने आरोग्य लाभ प्राप्त किया। कुछ समय पश्चात् पुण्य से उन्होंने आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज का सान्निध्य प्राप्त किया।

पस्सिय सूरिं चरियं, वेरग्गुप्पायग-देसणं सुणिय।
सत्तरस-वस्साउम्मि, विरत्तो भव-देह-भोयादु॥76॥

आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी व उनके चरित्र को देखकर एवं उनकी वैराग्य को उत्पन्न करने वाली देशना को सुनकर वे 17 वर्ष की आयु में ही संसार-शरीर-भोगों से विरक्त हो गए।

तिण्णि-वस्स-पच्छा पुण, आगदो महावीरकित्ति-संघो।
एणापुरं सुरिंदो, पहुच्चीअ गुरु-दंसणत्थं।।77।।

तीन वर्ष पश्चात् अर्थात् जब सुरेन्द्र 20 वर्ष के हो गए थे तब आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी का संघ एनापुर आया। गुरु के दर्शन करने के लिए वे सुरेंद्र ऐनापुर पहुँचे।

तदा बेपडिमावदं, गहिदं तेणं सूरि-पसादेणं।
णिवेदीअ अणंतरं, संजमं धारिदु-मप्पहिदाय।।78।।

तब उन्होंने आचार्यश्री की कृपा से दो प्रतिमा व्रत ग्रहण किए। अनंतर आत्म-हित के लिए संयम धारण करने का निवेदन भी उन्होंने आचार्यश्री से किया।

सो दु रायणीदिण्हू, णेव दिक्खाजोग्गो अहो सामी!।
कहिदं गामजणेहिं, आयण्णिय णिवेदणं ताण।।79।।
पत्ताहार-दाणं दु, तव कज्जं णेव बुद्धि-दाणं भो!।
हिदयर-दिक्खा-विसये, विअक्कणं कज्जं अम्हाण।।80।। (जुम्मं)

तब गाँव के श्रेष्ठीजन आदि लोग आचार्यश्री के पास आकर कहने लगे कि हे स्वामी! इसे दीक्षा न दें। यह सुरेंद्र बड़ा राजनीतिज्ञ है, यह दीक्षा के योग्य नहीं है। उन सबका निवेदन सुनकर आचार्यश्री ने कहा अहो! आपका काम पात्रों को आहार देना है, बुद्धि देना नहीं। हितकारी दीक्षा के विषय में विचार करना, दीक्षा देना न देना हमारा काम है।

आवीअ संजोगेण, उणवीस-सय-छायालीस-वस्से।
दक्खिणे सेडवाले, सूरि-महावीरकित्तिस्स दु।।81।।

संयोगवशात् आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज 1946 में दक्षिण भारत में शेडवाल ग्राम में पधारे।

मुणिवयणेहि सुरिंदो, होच्चा पहाविदो दु परिवट्टीअ।
स-जीवणक्कमं तदा, आयरीअ सेट्ठसंजदोव्व॥82॥

तब सुरेन्द्र रोज मुनिराज के प्रवचन सुनते। मुनिराज के वचनों से प्रभावित होकर उनका जीवनक्रम परिवर्तित हो गया, तब वे श्रेष्ठ संयमी के समान आचरण करने लगे।

गंभीरं धीर-णाण-पिवासाजुत्तं तक्कसत्तीए।
अच्छरिज्ज-जुदो तस्स, वत्तित्तं वि पस्सिय सूरी॥83॥

उनके गंभीर, धीरता, ज्ञान की तीव्र पिपासा एवं तर्क शक्ति से युक्त व्यक्तित्व को देखकर तब आचार्यश्री भी आश्चर्य में पड़ गए।

वेरग्गफलस्सुदी

(वैराग्य की फलश्रुति)

इगवीसवस्सवत्था-जुद-सुरिंदेण पत्थिदं दिक्खाइ।
इगदिणं मुणि-सम्मुहे, विरायभाव-परिपूरिदेण॥84॥

जब सुरेन्द्र लगभग 21 वर्ष के थे तब एक दिन वैराग्य भाव से परिपूरित हो उन्होंने आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज के सम्मुख दीक्षा की प्रार्थना की।

सुणित्तु तस्स पत्थणं, तरुणस्स हस्सिद-सूरिणा कहिदं।
णिय-पिदरस्स अणुमदिं, गहसु कुणेसु दिढ-परिणामं॥85॥

उस युवा की प्रार्थना को सुनकर आचार्यश्री बड़े हर्षित हुए और कहा–अपने परिणामों को दृढ़ कर लो और अपने माता-पिता की अनुमति ग्रहण कर लो।

विहारदिणे सुरिंदो, हवेज्ज अणुगामी सूरीवरस्स।
पहुच्चिय तमदङ्गि-मणुरुंधीअ मुणि-दिक्खाए पुण॥86॥

चातुर्मास समाप्त हुआ। जिस दिन आचार्यश्री का विहार हुआ उस दिन सुरेन्द्र भी उनके अनुगामी हो गए। (रोकने के बहुत प्रयासों के बाद भी वे नहीं रुके)। आचार्यश्री के साथ वे तमदड्डी पहुँचे और वहाँ पुनः मुनि दीक्षा की प्रार्थना की।

गुरु-अण्णाए गहिदा, खुल्लय-दिक्खा तत्थ सुरिंदेणं।
फग्गुण-सुदि-तेरसम्मि, उणवीससय-छादालाए॥87॥

(आचार्यश्री ने सीधे मुनि दीक्षा न देकर उन्हें क्षुल्लक दीक्षा ही देने को कहा।) इस प्रकार वहाँ तमदड्डी में फाल्गुन सुदी तेरस (15 अप्रैल) सन् 1946 में सुरेंद्र ने गुरु के आदेश से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की।

उच्छाहेण दायिदो, सिरिपासकित्ती सुहणामो तस्स।
बहुगुणा पस्सिदूणं, लहिदुं कित्तिं पासजिणोव्व।।88।।

गुरु महाराज (आ. श्री देशभूषण जी मुनिराज) ने उनके बहुत से गुणों को देखकर श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र की कीर्ति प्राप्ति के लिए उन्हें क्षु. श्री पार्श्वकीर्ति यह शुभ नाम दिया।

खुल्लयपस्सकित्तिस्स, एगसिलोग-सुमरण-णियमं तस्स।
दायिदं पडिदिवसम्मि, सूरिणा जीवणपज्जंतं।।89।।

क्षुल्लक दीक्षा के अनंतर आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज ने श्री पार्श्वकीर्ति जी को प्रतिदिन एक श्लोक याद करने का नियम जीवनपर्यन्त के लिए दिया।

विणयभत्ति-भावजुदो, गुरुं पडि पालीअ जावज्जीवं।
दससहस्साहिया चिय, सिलोगा तस्स मत्थगम्मि दु।।90।।

वे क्षुल्लकजी अपने गुरु के प्रति विनयभक्ति भाव से युक्त थे। उन्होंने गुरु द्वारा प्रदत्त नियम का यावज्जीवन पालन किया। दस हजार से अधिक श्लोक उनके मस्तिष्क में थे अर्थात् उन्हें याद थे।

णाण-साहणा-रदस्स, खुल्लय-पस्सकित्ति-वस्साजोगो।
गुरुणा सह संपण्णो, णंदेणं तदा कोण्णूरे।।91।।

दीक्षोपरांत ज्ञान व साधना में रत क्षुल्लक पार्श्वकीर्तिजी का चातुर्मास गुरु के साथ आनंदपूर्वक कोन्नूर में संपन्न हुआ।

गुरु-अण्णाए हि गदो, विविह-अदिसयाइ-तित्थजत्ताए।
वण्णि-णेमिसायर-अइ-बुड्ढेण संमिलीअ मग्गे।।92।।

पुनः वे गुरु की आज्ञा लेकर विविध अतिशयादि तीर्थक्षेत्रों की यात्रा के लिए निकले। यात्रा मार्ग में वे अतिवृद्ध श्री नेमिसागर वर्णीजी से मिले।

ठाइत्तु किंचि यालं, कुव्वीअ अज्झयणाइं तेण सह।
अणुभवे पुच्छणे सो, कहीअ सव्वदा सुमरेज्जा।।93।।

कुछ समय उनके साथ ठहरकर बहुत अध्ययनादि भी किया। उनकी वयोवृद्ध अवस्था को देखकर क्षुल्लकजी ने उनसे उनके अनुभव की कुछ बातें पूछी तो उन्होंने कहा हमेशा एक बात याद रखना।

जदि गहसि बे रोट्टगं, तो समायस्स वि गहसु दोसद्दं।
कक्कलं च पहुच्चीअ, धम्मत्थल-जत्तं करंतो।।94।।

यदि समाज की दो रोटी ग्रहण करते हो, पचाते हो तो समाज के दो शब्दों को भी ग्रहण करो अर्थात् दो बातें भी पचाना। पुनः क्षुल्लकजी धर्मस्थल की यात्रा करते हुए कारकल पहुँचे।

तत्थ दु बंभप्पा अणुरोहं करीअ खुल्लय-पवयणस्स।
खुल्लयेण पज्जरिदं, णो जाणामि पवयण-करणं।।95।।

वहाँ विद्वान् प्रोफेसर जी. ब्रह्मप्पा ने क्षुल्लकजी के प्रवचन के लिए क्षुल्लकजी से अनुरोध किया। यह सुन क्षुल्लकजी ने कहा–मुझे प्रवचन करना नहीं आता।

बंभप्पेणं कहिदं, किं रोट्टगस्स ओग्गहिदा दिक्खा।
णेमिसायरं सुमरिय, ण उत्तरीअ सज्झाय-रदो।।96।।

तब प्रो. ब्रह्मप्पा बोले कि क्या रोटी खाने के लिए दीक्षा ली है। स्वाध्याय में रत क्षुल्लकजी ने श्री नेमिसागर वर्णीजी की बात का स्मरण कर उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया।

सज्झाओ साहणा य, तस्स खुल्लयस्स मुक्ख-कज्जाइं।
अणासत्त-णिप्पक्खो, अज्झप्पियो धम्म-णिट्ठो य।।97।।

स्वाध्याय और साधना ही उन क्षुल्लकजी के प्रमुख कार्य थे। वे स्वयं अनासक्त, निष्पक्ष, अध्यात्मप्रिय और धर्मनिष्ठ थे।

कण्णड-सक्किद-पागद-अपब्भंस-महरट्ठी-हिंदीणं च।
आइ-भासाण णादू, सेट्ठ-वत्ता महाणाणी य।।98।।

वे कन्नड़, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी व हिंदी आदि भाषाओं के ज्ञाता, श्रेष्ठ वक्ता व महाज्ञानी थे।

तदा संपुण्णदेसो, पसिद्धो सो सुट्ठु वत्तारूवे।
तस्स पवयण-सहाए, अद्धलक्खजणा हवेज्जा दु।।99।।

उस समय वे श्रेष्ठ वक्ता के रूप में संपूर्ण देश में प्रसिद्ध हुए। उनकी प्रवचन सभा में पचास-पचास हजार लोग हुआ करते थे।

सूरिसंतिसायरस्स, उणवीससयपंचावण्ण-वस्से।
सल्लेहणाइ कुंथलगिरिं पहुच्चीअ सुभत्तीइ।।100।।

सन् 1955 में चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी मुनिराज की सल्लेखना चल रही थी। उस समय भक्तिपूर्वक क्षुल्लकजी कुंथलगिरी पहुँचे।

कहीअ भो सूरिवरो! खमदु मे मज्झं सव्व-दोसाणं।
गहिस्सेसि मुणिदिक्खं, जदा तदा खमामि हं तुज्झ।।101।।

क्षुल्लकजी ने कहा अहो आचार्य देव! मेरे सभी कृत दोषों के लिए मुझे क्षमा करें। आचार्यश्री ने कहा-जब आप मुनि दीक्षा ग्रहण करोगे तभी क्षमा करूँगा।

वस्साजोग्गं किच्चा, रायट्ठाणे बेलगामं गदं।
आइरिय-संतिसायर-अस्समे सेट्ठ-अहिट्ठादा।।102।।

अथानंतर राजस्थान में चातुर्मास करके आगामी चातुर्मास हेतु वे बेलगाम (कर्नाटक) पहुँचे। वहाँ शेडवाल स्थित 'आचार्यश्री शांतिसागर आश्रम' के श्रेष्ठ अधिष्ठाता बने।

तत्थ सत्तवस्साणं, सव्व-ववत्था ववत्थिदा समेण।
आवसियं णो बोहिय, सगउवट्ठिदिं अहुणा अत्थ॥103॥
देविंदकित्ति-भट्टारग-अग्गहेण पहुच्चीअ हुमचं।
असामण्ण-धम्म-पहावणाइ गुंजिदो कण्णाडो॥104॥ (जुम्मं)

वहाँ सात वर्षों के अत्यंत श्रम से सभी व्यवस्थाएँ व्यवस्थित हो गईं। अब यहाँ अपनी उपस्थिति को आवश्यक न समझ, भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति जी के आग्रह से वे हुमचा पद्मावती पहुँचे। उनके माध्यम से असामान्य धर्म-प्रभावना से संपूर्ण कर्नाटक गुंजायमान हो गया।

रक्खिदुं संभालिदुं, हुमचं पत्थिदो भट्टारगेणं।
किण्णु ण अंगीकरीअ, सो गच्छीअ रायट्ठाणं॥105॥

वहाँ भट्टारकजी ने कर्नाटक में हुमचा क्षेत्र की रक्षा के लिए, उसे संभालने के लिए क्षुल्लकजी से प्रार्थना की किन्तु क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति जी ने वह स्वीकार नहीं किया और वे राजस्थान चले गए।

कोण्णूर-हुमच-कुंभोजेसु अट्ठा सेडवाले हुमचे।
बे सुजाणगढे बेल-गामे कुंदकुंद-अद्दिम्मि॥106॥

क्षुल्लक अवस्था में उन्होंने 1946 से क्रमशः कोण्णूर (कर्नाटक), हुमच (कर्नाटक), कुंभोज (महाराष्ट्र) में चातुर्मास किए पुनः आठ चातुर्मास शेडवाल में किए। 1957 का चातुर्मास हुमच (कर्नाटक) में पुनः दो चातुर्मास सुजानगढ़ (राजस्थान) में किए। पुनः बेलगाम (कर्नाटक) में एवं कुंदकुंदाद्रि (कर्नाटक) में हुए।

सिमोगा-कण्णाडम्मि, इत्थं हंदि सत्तरस-चउमासा।
खुल्लयावत्थाए दु, संपण्णा बहु-पहावणाइ॥107॥

1962 में क्षुल्लक अवस्था का अंतिम चातुर्मास शिमोगा (कर्नाटक) में संपन्न हुआ। इस प्रकार क्षुल्लक अवस्था में अत्यंत धर्म प्रभावना के साथ सतरह चातुर्मास संपन्न हुए।

चउमास-पच्छा पहुच्चीअ दंसणत्थं चिय ढिल्लिं सो।
उणवीससयतिसट्ठी-वस्से देसभूसण-पदेसु॥108॥

चातुर्मास के पश्चात् 10 जुलाई 1963 में क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति जी आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज के दर्शन के लिए दिल्ली उनके चरणों में पहुँचे।

होही सुणाण-वत्ता, पहाविदो देसभूसणो सूरी।
तस्स गहण-णाणेणं, पुच्छीअ कहं होज्जा मुणी॥109॥
पत्थीअ तक्कालम्मि, मुणि-दिक्खाइ देसभूसण-हुत्ते।
सूरी ण पडिमंतीअ, हसंतो चिय मंदं-मंदं॥110॥ (जुम्मं)

वहाँ उनके व आचार्यश्री के मध्य में गूढ ज्ञान वार्ता हुई। आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज उनके गहन, गंभीर ज्ञान से अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने क्षुल्लकजी से पूछा–17 वर्ष हो गए क्षुल्लक दीक्षा लिए हुए, अब मुनि कब होओगे? क्षुल्लकजी के मन में मुनि दीक्षा की तीव्र भावना तो

थी ही अतः उन्होंने तत्काल ही आचार्यश्री के सम्मुख मुनि दीक्षा की प्रार्थना की। क्षुल्लकजी की प्रार्थना सुनकर आचार्यश्री मंद-मंद मुस्कुराने लगे किन्तु उत्तर कुछ नहीं दिया।

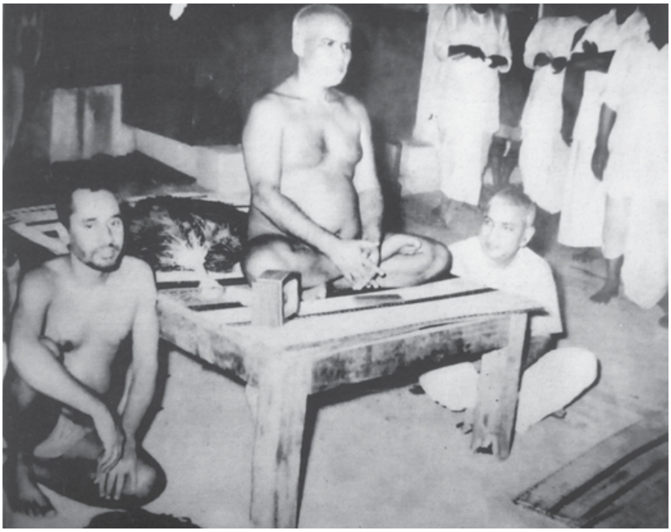

किंचिवि दिण-पच्छा पुण, अणुरुंधीअ सूरिवर-सम्मुहम्मि।
साहूसंतिपसादो, तस्स अद्धंगिणी अवि तत्थ।।111।।

कुछ दिन पश्चात् 22 जुलाई, 1963 को क्षुल्लकजी ने आचार्यश्री देशभूषण ाजी मुनिराज के सम्मुख पुनः मुनि दीक्षा के लिए अनुरोध किया। तब वहाँ साहू शांतिप्रसाद जैन जी एवं उनकी अर्द्धांगिनी श्रीमती रमारानी जी भी उपस्थित थीं।

साहू कहीअ सामी, संसारो दु अइ-विचित्तो तम्हा।
खुल्लयवत्था सेट्ठा, तुमं तरुणो अइ-धीमंतो।।112।।

साहू शांतिप्रसाद जी ने क्षुल्लकजी की प्रार्थना सुनी तो चुपके से कहने लगे अहो स्वामी! ये संसार बड़ा विचित्र है। आप युवा हैं, अति बुद्धिमान हैं, आपकी क्षुल्लक अवस्था ही श्रेष्ठ है, आप इसी अवस्था में रहें।

किं बंधसि कम्मं दिच्चा परामस्समिदं अहो भद्दो!।
णिच्छलो मम णिण्णयो, सिलालेहोव्व अपरिअट्टो।।113।।

उनकी बातें सुन क्षुल्लकजी कुछ विचारकर बोले हे भद्र पुरुष! आप इस प्रकार का परामर्श देकर कर्मों का बंध क्यों करते हैं, मैं निश्चल हूँ और मेरा मुनि दीक्षा ग्रहण करने का यह निर्णय भी शिलालेख के समान बदलने वाला नहीं है।

संसारेण सह चरदि, कायरो किण्णु अप्पुल्लेणं सह।
चलावदि णरो जो सो, संसारं परिवट्टिस्सामि।।114।।

जो संसार के साथ चलता है वह कायर है, कमजोर है किन्तु जो पुरुष अपने साथ संसार को चलाता है वह पुरुषार्थी पुरुष है। मैं इस संसार को बदल दूँगा, मानव जीवन को नई समीचीन दिशा दूँगा।

तस्स णिच्छल-णिण्णयं, सुणित्तु वेरग्गपुण्ण-वत्तव्वं।
संपडिवज्जीअ तस्स, पत्थणं दियंबर-दिक्खाइ।।115।।

उनके इस वैराग्यपूर्ण वक्तव्य और निश्चल निर्णय को सुनकर आचार्यश्री ने उनकी दिगंबर-दीक्षा की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

जहाजादो दियंबरो

(यथाजात दिगंबर)

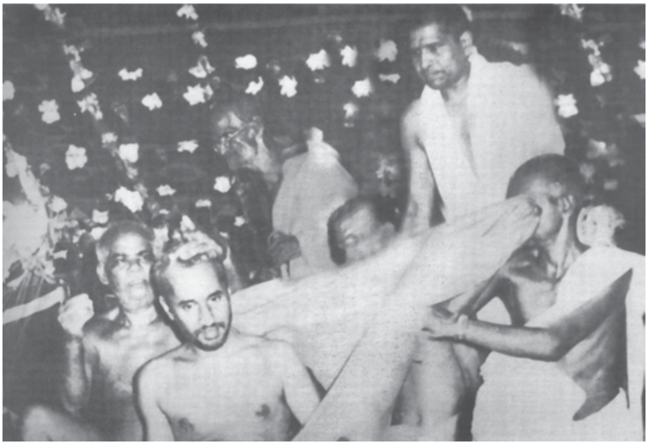

सावण-सुक्क-पणमीइ, सुहे उणवीस-सय-तिसट्ठि-वस्से।
भारद-रायहाणीइ, पदायिदा मुणिदिक्खा तस्स॥116॥
परेड-मइदाणे-भव्वत्तेण लक्खजणणिअरमज्झम्मि।
गुंजिदो दु आयासो, गुरु-सिस्स-जयजयकारेहिं॥117॥ (जुम्मं)

शुभ श्रावण शुक्ल पंचमी (25 जुलाई) 1963 को भारत की राजधानी में परेड मैदान में अति भव्यता से लाखों लोगों के समूह के मध्य उन क्षुल्लक श्री पार्श्वकीर्ति जी को मुनि दीक्षा प्रदान की गई। उस दीक्षा के समय गुरु व शिष्य की जय-जयकारों से संपूर्ण आकाश गुंजायमान हो गया।

पसण्णभावं अगाहणाणं पस्सिय पदायिदो णामो।
मुणिवर-विज्जाणंदो, गुरु-सूरि-देसभूसणेणं॥118॥

उनके चेहरे पर प्रसन्नभाव व उनका अगाध ज्ञान देखकर उनके गुरु आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज ने उनका नाम मुनि विद्यानंद रखा।

भारद-गोरवाइरिय-देसभूसणो अदिसय-विण्णाणी।
जिणसासणपहावगो, णदो पहाणमंति-आदीहि॥119॥

भारतगौरव आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज अतिशय विज्ञानी, जिनशासन प्रभावक थे। प्रधानमंत्री आदि भी उनके समक्ष नतमस्तक हुआ करते थे।

तस्स सिस्सो अवि होज्ज, अक्कोव्व जिणसासणे जगपुज्जो।
जुगसिट्ठा अच्चंतो, बंभणाणि-अज्झप्पजोगी॥120॥

उनके शिष्य मुनि विद्यानंद भी जिनशासन रूपी आकाश में सूर्य के समान दैदीप्यमान हुए। वे जगपूज्य, युगसृष्टा, अत्यंत ब्रह्मज्ञानी व अध्यात्म-योगी थे।

एयदा अणुरुंधिदो, इंदपत्थे पच्छा मुणिदिक्खाइ।
पवयणस्स महासहा-मंतीइ दियंबर-जइणस्स॥121॥

मुनि दीक्षा के पश्चात् एक बार दिल्ली में दिगंबर जैन महासभा के महामंत्री श्री परसादी लाल पाटनी ने मुनिराज से प्रवचन के लिए अनुरोध किया।

किंचिवि कारणेहिं दु, पगडीअ णिय-असक्कत्तं तदा हु।
कहीअ किं रोट्टगस्स, धारीअ दु मुणि-दिक्खं किण्णु॥122॥
सत्थ-मज्जादाइं दु, वियारिअ उविक्खीअ तस्स वयणं।
विसुद्धीइ संपण्णो, चउमासो गुरुणा सह तत्थ॥123॥ (जुम्मं)

तब किन्हीं कारणों से उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की। यह सुन वे बोले क्या रोटी के लिए मुनि-दीक्षा ली है? किन्तु तब भी शास्त्र की मर्यादादि विचारकर मुनिराज ने उनके वचनों की उपेक्षा कर दी। वहाँ गुरु महाराज के साथ चातुर्मास विशुद्धिपूर्वक संपन्न हुआ।

महव्वदं णिद्दोसं, पंचसमिदिं तिगुत्तिं पालंतो।

अणुभवीअ सुद्धप्पं, जम्हा भावी जिणवरो सो।।124।।

वे पाँच महाव्रत, पाँच समिति व तीन गुप्ति का निर्दोष पालन करते हुए निज शुद्धात्मा का अनुभव किया करते थे। वे आत्मानुभव क्यों नहीं करते आखिर भावी जिनवर जो थे।

मण्णित्ता जगजणणी, पालीअ अहिंसाइ-महव्वदाणि।

अइउच्छाहेणं सिव-सदणस्स जाणिय पयदंडिं।।125।।

वे मुनि अहिंसा आदि महाव्रतों को जगत् जननी मानकर एवं मोक्षमहल की पगदंडी जानकर अतिउत्साहपूर्वक उनका पालन करते थे।

सच्चं विस्साहारं, पालीअ सुद्धप्पाणुभूदी जं।

तेण विणा ण संभवो, सासय-सहाव-संपत्ती वि।।126।।

सत्य विश्व का आधार है। वे मुनिराज सत्य महाव्रत का पालन किया करते थे क्योंकि उसके बिना शुद्धात्मानुभूति व शाश्वत स्वभाव की संप्राप्ति भी संभव नहीं है।

किंचिवि वत्थुं ण मज्झ, सव्व-गुणा चिट्ठंति अप्पे तं वि।
परवत्थु-गहणभावं, उज्झिय अचोरियं पालीअ॥127॥

संसार में किंचित् भी कोई भी वस्तु मेरी नहीं है। आत्मा के सभी गुण आत्मा में ही रहते हैं। अतः पर-वस्तु के ग्रहण के भाव को भी त्यागकर वे अचौर्य महाव्रत का पालन करते थे।

सगअप्पे हि णिवसेज्ज, उज्झित्ता चिय चउविह-इत्थीओ।
परे णेव रज्जेज्जा, उत्तम-बंभचरिय-वद-जुदो॥128॥

उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत से युक्त जीव चार प्रकार की स्त्रियों (देवी, मुनिष्यिनी, तिर्यंचिनी, पुत्तलिका) का त्यागकर अपनी आत्मा में ही निवास करता है, वह पर में रंजायमान नहीं होता।

णिस्संगो णिम्मोहो, णिग्गंथो णो गहेज्ज परवत्थुं।
सगहिदाय सुपालीअ, असंग-वदं सुविसुद्धीए॥129॥

वे निःसंग, निर्मोह व निर्ग्रन्थ मुनिराज स्वात्म द्रव्य को छोड़कर परवस्तुओं को ग्रहण नहीं करते थे। वे स्वहित के लिए विशुद्धिपूर्वक अपरिग्रह व्रत का पालन किया करते थे।

चउकरभूमिं सोहिय, रविपयासे चलीअ पयोजणेण।
पालीअ इरिय-समिदिं, इरिया-पथ-आसव-भावेण॥130॥

वे मुनिराज सूर्य के प्रकाश में किसी प्रयोजन से ही चार हाथ भूमि को शोधकर चला करते थे। ईर्यापथ आस्रव के भाव से वे ईर्या समिति का पालन करते थे।

णियभाव-पगासणाइ, भासा-अवलंबो सया सव्वत्थ।
हिद-मिद-पिय-वयणं खलु, अमियं व वदीअ मुणिवरो दु॥131॥

अपने भावों के प्रकटीकरण के लिए सर्वत्र सदा ही भाषा एक अवलंबन है। वे मुनिराज अमृत के समान हित-मित-प्रिय वचन बोलते थे।

गवेसेदुं सगसुद्ध-सहावं पालिदुं जमं धम्मं च।
गहीअ सुद्धाहारं, झाणज्झयण-णिमित्तेणं च॥132॥

वे मुनिराज अपने शुद्ध स्वभाव की गवेषणा के लिए और संयम व धर्म के पालन के लिए एवं ध्यान व अध्ययन के निमित्त शुद्ध आहार ग्रहण करते थे।

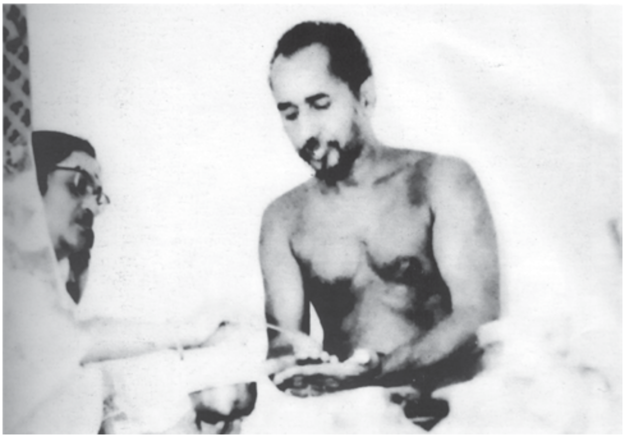

णवहाभत्तीइ दत्त-सुद्धाहारं गहेज्ज सावगेहि।
सद्धाइगुणजुत्तेहि, सोहिय एसणा-पालगो दु॥133॥

एषणा समिति के पालक वे श्री विद्यानंद मुनिराज श्रद्धादि गुणों से युक्त श्रावकों के द्वारा नवधाभक्तिपूर्वक दिए गए शुद्ध आहार को शोधकर ग्रहण करते थे।

गहीअ धरीअ वत्थुं, जदणेणं सिरि-विज्जाणंदमुणी।
आदाण-णिक्खेवणं, सुपालीअ सव्वत्थ सया हि॥134॥

श्री विद्यानंद मुनिराज यत्नपूर्वक वस्तुओं को ग्रहण करते थे और रखते थे। वे सर्वत्र सदा ही आदान-निक्षेपण समिति का पालन किया करते थे।

पस्सिय फासुग-ठाणं, जीवाइ-रहिदं सय उच्चारीअ।
जदणेणं उस्सग्गं कम्म-उस्सग्गस्स पालीअ॥135॥

वे सदा जीवादि से रहित प्रासुक स्थान देखकर ही यत्नपूर्वक मल-मूत्र का त्याग करते थे। कर्मों के उत्सर्ग के लिए उत्सर्ग समिति का पालन किया करते थे।

रायदोस-णिवत्तीइ, सव्वदा अट्ठविहफास-वत्थूसु।
जयित्ता फासिंदियं, लहीअ अप्पफासं सुहदं॥136॥

आठ प्रकार की स्पर्श वाली वस्तुओं में रागद्वेष की निवृत्ति के लिए स्पर्शनेन्द्रिय को जीतकर वे आत्मा का सुखद स्पर्श प्राप्त करते थे।

तित्त-कसायंब-कडुअ-महुर-पंचविसया रसणिंदियस्स।
गहीअ रसणक्ख-जयी, आहारं जयिय समत्तेण॥137॥

रसना इन्द्रिय के पाँच विषय हैं—चरपरा, कसायला, खट्टा, कड़वा व मधुर। वे रसना इन्द्रियजयी मुनिराज समत्व भाव से इन्द्रिय विषयों को जीतकर आहार ग्रहण करते थे।

सुगंध-दुग्गंधा बे-विसया पसिद्धा घाणस्स लोए।
धरेज्ज समत्तं तेसु, रायदोसणिवत्तीए चिय॥138॥

लोक में घ्राणेन्द्रिय के दो विषय प्रसिद्ध हैं—सुगंध और दुर्गंध। राग-द्वेष की निवृत्ति के लिए यति उनमें समत्व भाव धारण किया करते थे।

चक्खुस्स पंचविसया, पुणो उत्तरोत्तर-असंखभेया।
रायदोसणिवत्तीइ, धारीअ समभावं तेसुं॥139॥

चक्षु इंद्रिय के पाँच विषय हैं। पुनः उसके उत्तरोत्तर असंख्यात भेद होते हैं। रागद्वेष की निवृत्ति के लिए मुनिराज ने उनमें समता भाव धारण किया।

कण्णिंदिय-विसयेसुं, णेव कया वि रज्जीअ सत्तेसुं।
तं पंचिंदिय-जेदुं, णमामि विज्जाणंदजोगिं॥140॥

सात प्रकार के कर्ण इन्द्रिय के विषयों में जो कभी रंजायमान नहीं हुए उन पंचेन्द्रिय-जयी श्री विद्यानंदजी योगीराज को नमस्कार करता हूँ।

महुरकंठेण पढीअ, तिसंझासु चउवीसतित्थयराण।
णासस्स चउगदीणं, थुदिं अइ-विसुद्ध-चित्तेणं॥141॥

वे अति विशुद्ध चित्त से, मधुर कंठ से चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति तीनों संध्याकालों में चारों गतियों के नाश के लिए किया करते थे।

करीअ पडिक्कमणं दु, तिजोगेहि सगज्जिद-अहं खयिदुं।
अण्णाण-पमादेहिं, कसायेण वा विसुद्धीए॥142॥

अज्ञान, प्रमाद वा कषाय से अपने द्वारा अर्जित पापों के क्षय के लिए वे तीनों योगों से विशुद्धिपूर्वक प्रतिक्रमण करते थे।

देहादु ममत्तभाव-मुज्झिय सुमरीअ पंचगुरुगुणा दु।
तच्चचिंतणं जावं, कुव्वीअ तिजोग-सुद्धीए॥143॥

देह से ममत्वभाव का त्यागकर वे पंच परमेष्ठी के गुणों का स्मरण किया करते थे। वे तीनों योगों की शुद्धिपूर्वक तत्त्वचिंतन व जप किया करते थे।

पावकम्मक्खयेदुं, काउस्सग्गो दु पावगोव्व सया।
आसण्णभव्वजीवा, तं करिदुं सक्का भावेहि॥144॥

पाप कर्म के क्षय के लिए कायोत्सर्ग सदैव अग्नि के समान है। आसन्न भव्यजीव ही भावपूर्वक उस कायोत्सर्ग को करने में समर्थ होते हैं।

मज्झ वदं णिद्दोसं, होदु अणागदयाले अवि तम्हा।
सावज्जकज्ज-चागं, पुव्वे करीअ पच्चक्खाणं।।145।।

भविष्यकाल में भी मेरे व्रत निर्दोष ही होवें ऐसा विचारकर वे पूर्व में ही सावद्य कार्य का त्याग करते थे। यही प्रत्याख्यान है।

देहो ण मे सहावो, असरीरी-सहावं चिय सिद्धोव्व।
लहिदुं काउस्सग्गं, कुव्वीअ जिणमुद्दाधारी।।146।।

ये शरीर मेरा स्वभाव नहीं है। सिद्धों के समान अशरीरी स्वभाव को प्राप्त करने के लिए वे जिनमुद्राधारी कायोत्सर्ग किया करते थे।

तिलतुसमेत्तं संगं, णो चित्तेण गहीअ मुणी कया वि।
जहाजाद-दियंबरो, पिच्छि-कमंडलु-धारगो तह।।147।।

वे यथाजात दिगंबर, पिच्छी-कमंडलु धारक मुनि मन से तिलतुष मात्र भी परिग्रह ग्रहण नहीं करते थे।

अचेलक्को य वत्थाभूसण-चागी सुंदरो मज्जीअ।
चित्तसुद्धीए णाण-णीरेण णेव बहि-सलिलेण।।148।।

अचेलक्य गुण के धारी, वस्त्राभूषण के त्यागी, आत्म-सौन्दर्य के धारक मुनिराज चित्त की शुद्धिपूर्वक ज्ञान रूपी जल से स्नान किया करते थे किन्तु बाह्य नीर के द्वारा कभी नहीं करते थे।

रयणत्तय-सरिदाए, अवगाहिदु-मण्हाण-गुणं धरीअ।
भयवद-सरूवो सो दु, सुरासुराइ-पुज्जो णिच्चं।।149।।

उन्होंने रत्नत्रय रूपी नदी में अवगाहन के लिए अस्नान गुण धारण किया। वे मुनि विद्यानंद भगवान का रूप थे और सुर-असुरादि से पूजित हुए थे।

देहादीदु णिरीहो, धुवीअ सग-सुंदर-दंतावलिं ण।
अहिंसावद-रक्खाइ, धुवंति मुणी णेव रायेण।।150।।

देह आदि से अत्यंत निरीह मुनिराज अपनी सुंदर दंतावली को नहीं धोते थे। अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए कदाचित् मुनिराज दाँत धोते हैं किन्तु राग से कभी नहीं।

करेदुं संजमतवज्झाण-विड्ढीइ पणविह-सज्झायं।
गहीअ इगभुत्ति-मट्ठपहरे वदपालगो सया हि।।151।।

वे व्रत पालक मुनिराज संयम, तप व ध्यान की वृद्धि के लिए पाँच प्रकार के स्वाध्याय के लिए आठ पहर में सदैव एक भुक्ति ही ग्रहण किया करते थे।

जावदु तावदु जंघाबलं गहिस्सामि सुद्धाहारं दु।
सेट्ठदियंबरमुणीव, करीअ चिय ठिदिभोयणं सो।।152।।

जब तक जंघाबल है तब तक मैं श्रेष्ठ दिगंबर मुनि के समान शुद्धाहार को ग्रहण करूँगा। इस प्रकार चिंतन कर वे मुनिराज खड़े होकर ही आहार ग्रहण किया करते थे। अर्थात् स्थिति भोजन किया करते थे।

देहसम-परिहरणत्थ-मुज्जा-संगहणत्थं सुधम्मस्स।
सुवंति अप्पयालस्स, खिदिआदीसु च जदणेणं।।153।।
रयणत्तयविड्ढीए, विवित्तो य पमादरहिदो सुवीअ।
अप्पयालस्स चिय जदि, आवसियं मुणिवरिंदो तो।।154।। (जुम्मं)

देह के श्रम के परिहार के लिए, ऊर्जा के संग्रह के लिए व धर्म के लिए वे मुनिराज अल्पकाल के लिए यत्नपूर्वक पृथ्वी आदि पर शयन किया करते हैं, उसी प्रकार रत्नत्रय की वृद्धि के लिए वे विवेकयुक्त, प्रमाद रहित मुनींद्र यदि आवश्यक होता तो अल्पकाल के लिए विश्राम किया करते थे।

सव्वदियंबरमुणीण, होज्ज अजायगवित्ती णियमादो।
तदो जीव-रक्खाए, बे-ति-चउमासे कुव्वंते॥155॥
उववासेणं सहिदं, सकरेहि वा पराण केसलोअं।
करीअ वि मुणिंदो सो, देहादो रायं खयेदुं॥156॥ (जुम्मं)

सर्व दिगंबर मुनियों की नियम से अयाचकवृत्ति होती है अत: जीवों की रक्षा के लिए वे दो, तीन या चार माह में उपवास से सहित अपने वा दूसरों के हाथों से केशलोंच करते हैं। वे मुनिराज देह से राग के क्षय के लिए केशलोंच किया करते थे।

मूलगुणट्ठवीसा दु, सगप्पस्स पावेदुं अट्ठगुणा।
सगसत्तीइ पालीअ, णिच्चं सवर-हिद-भावणाइ॥157॥

निजात्मा के आठ गुणों को प्राप्त करने के लिए एवं स्वपर-हित की भावना से वे मुनिराज शक्तिपूर्वक अट्ठाईस मूलगुणों का पालन किया करते थे।

अणंतरं चउतीसा, उत्तरगुणा पालीअ विसुद्धीइ।
बावीस-परिसहजयं, बारसतवं कम्मक्खयिदुं।।158।।

अनंतर कर्म क्षय के लिए बाईस परीषहजय एवं बारह तप, इस प्रकार चौंतीस उत्तरगुण का पालन मुनिवर विशुद्धिपूर्वक किया करते थे।

संकिलिट्ठ-परिणामा, जीवस्स छुहावेयणीयुदयेण।
णवरि छुहं जयीअ चिय, समत्तेण कम्मक्खयेदुं।।159।।

जीव के क्षुधा वेदनीय के उदय से कभी संक्लेश परिणाम होते हैं किन्तु विशेषता यह है कि वे मुनिराज कर्म-क्षय के लिए समत्व भाव से क्षुधा परीषह जीतते थे।

देहस्स उण्हयाले, जलं सुस्सेदि तिव्वक्ककरेहिं।
णाणामियं पिबंतो, सो जयीअ तिसं विसुद्धीइ।।160।।

ग्रीष्मकाल में सूर्य की तीव्र किरणों से देह का जल भी सूख जाता है। किन्तु ज्ञानामृत का सेवन करते हुए वे मुनिराज विशुद्धिपूर्वक तृषा परीषह को जीतते थे।

सीदयालम्मि सीददि, सीदेणं तहवि झाण-पावगेण।
जयीअ सीदपरिसहं, कम्म-णिज्जराइ संवरस्स।।161।।

शीतकाल में सर्दी से जीव दु:खी होते हैं तथापि ध्यान रूप अग्नि से वे शीत परीषह को कर्मनिर्जरा व संवर के लिए जीतते थे।

काणणे उण्हयाले, वणप्फदी वि दहदि उण्हत्तेणं।
तदा वि जयीअ उण्हं, जिणभत्ति-सीयल-सलिलेणं।।162।।

ग्रीष्मकाल में वन में ऊष्णता से वनस्पति भी जलती है तब भी वे मुनिराज जिनभक्ति के शीतल नीर से गर्मी को जीतते थे।

दंसमसगाइ-कीडा, दुक्खंति णवरि कंखदि मुणिंदो ण।
तण-रक्खं जयीअ तं, झाण-तच्चचिंतण-बलेणं॥163॥

दंशमशक आदि कीट जीव को दु:ख देते हैं किन्तु वे मुनीन्द्र तन की रक्षा नहीं चाहते थे, वे ध्यान व तत्त्वचिंतन के बल से उस दंशमशक परीषह को जीतते थे।

भव-तण-भोय-विरत्तो, बालोव्व सहजो कंखा-रहिदो य।
जयीअ णग्गिण-परिसहं, सव्वदुरिदं कम्मक्खयिदुं॥164॥

संसार-शरीर व भोगों से विरक्त, बालक के समान सहज और आकांक्षा से रहित वे मुनिराज सर्व पापों के क्षय के लिए नग्न परीषह जीतते थे।

भववड्ढगकारणादु, विरत्तो दु पंचिंदिय-विसयादो।
सगप्पसरूवे रदो, अरदि-रदि-परीसहं जयीअ॥165॥

संसारवर्द्धक कारणों व पंचेन्द्रिय विषय से विरक्त और निजात्म स्वरूप में रत वे मुनिराज अरति-रति-परीषह को जीतते थे।

रागेणं त्थी-रूवं, पस्सिय रायजुद-चित्तं रागीण।
वीदराय-अणगारो, विरदचित्तादु णेव रायी॥166॥

रागपूर्वक स्त्री के रूप को देखकर रागियों का चित्त राग से युक्त हो जाता है। किन्तु वीतरागी अनगार विरक्त चित्त होने से कभी रागी नहीं हुए।

णो चिंतदि पज्जायं, सव्वे जाणित्तु परमप्प-सत्तिं।
जयदि इत्थी-परिसहं, मुणिवरो तिलोयपुज्जो अवि॥167॥

श्रेष्ठ आत्मा सभी में परमात्म शक्ति को जानकर पर्याय का चिंतन नहीं करता। अत: द्रव्यदृष्टि धारक त्रिलोकपूज्य मुनिवर सदैव स्त्री-परीषह को जीतते हैं।

पदत्ताण-हीण-मुणी, चलीअ सम-विसम-पहे समत्तेण।
कंडगादिं सहंतो, णेव करीअ अट्टं चित्तं।।168।।

पदत्राण से रहित मुनि सम व विषम अथवा अनुकूल व प्रतिकूल मार्ग पर कंटक आदि को सहन करते हुए समत्वभाव से चला करते थे, वे कभी आर्त्त चित्त नहीं किया करते थे अर्थात् वे चर्या परीषह विजेता थे।

णिप्पयोजण-गमणं ण, मेत्तं वंदण-जत्तादीणं चिय।
समत्त-दिव्वत्थेणं, पह-पडिऊलदं जयीअ सो।।169।।

वे मुनिराज मात्र वंदना, यात्रा आदि के लिए गमन किया करते थे, वे निष्प्रयोजन गमन कभी नहीं किया करते थे। वे समत्व रूपी दिव्यास्त्र के द्वारा पथ की प्रतिकूलताओं को जीतते थे।

चिट्ठीअ दु पउमासण-पज्जंकासणादीहि झायेदुं।
देहकट्ठं कया अवि, णेव मण्णदि अप्पकट्ठं च।।170।।

वे पद्मासन, पर्यंकासन आदि के द्वारा ध्यान के लिए बैठा करते थे। वे शरीर के कष्ट को कदापि आत्मा का कष्ट नहीं मानते थे।

रिणमोयणं व णियमा, सोक्ख-कारणं मण्णीअ कट्ठं वि।
णिसज्जा-परीसहं दु, जयीअ चिय धम्मज्झाणस्स।।171।।

वे मुनिराज कष्ट को सुख का कारण मानते थे क्योंकि कष्ट आने पर वे विचारते थे कि ''मैं ऋण से मुक्त हो रहा हूँ'' इस प्रकार धर्मध्यान के लिए वे निषद्या परीषह को जीतते थे।

संसारी सुवदि देह-सुहस्स अणुऊल-सेज्जादीसुं च।
कट्ठं सहंतो सेज्ज-णिमित्तेण परिसहं जयीअ।।172।।

संसारी जीव अनुकूल शय्या आदि पर देह-सुख के लिए शयन करते हैं। वे मुनिराज कष्ट को सहन करते हुए शैय्या के निमित्त से हुए परीषह को जीतते थे।

जदि दुट्ठ-जणो वदेज्ज, कडुगं परुसं अलीगं णिंदं च।
पोग्गलं दु चिंतंतो, तेसुं धरीअ समत्तं तं।।173।।

यदि कोई दुष्टजन, कटुक, परुश, अलीक व निंद्य वचन बोलता तो वे मुनिराज उन शब्दों को पौद्गलिक चिंतन करते हुए उनमें समत्व-भाव धारण किया करते थे।

सगप्प-सुद्धगुणा चिय, वड्ढंति अप्पे सव्वत्थ सया हि।
वयणं विसुद्धि-हेदू, गहिय कोह-परिसहं जयीअ।।174।।

आत्मा में सर्वत्र सदा ही स्वात्मा के शुद्ध-गुण वृद्धिगत होते हैं। वे मुनिराज विशुद्धि हेतु वचनों को ग्रहण कर क्रोध परीषह को जीतते थे।

ओसहि- दायग-णेहल-मादू व सक्कराइ सह पुत्तस्स।
सहीअ कडुगवयणाणि, कम्मणिज्जराइ सुणाणेण।।175।।

जैसे माँ अपने बालक के रोग को दूर करने के लिए उसे शक्कर के साथ मिलाकर स्नेहपूर्वक कड़वी औषधि देती है उसी प्रकार वे मुनिराज कर्मों की निर्जरा के लिए कड़वे वचनों को सहा करते थे।

को वि पुव्वभववइरी, जदि हरदि पाणं चिंतदि मुणी तो।
मम कम्मक्खयेदुं च, गहिदं सगमूलियं तेणं।।176।।

कोई भी पूर्वभव का बैरी यदि मुनिराज के प्राणों का हरण करता है तो मुनिराज चिंतन करते हैं कि मेरे कर्मक्षय के लिए ही उसने अपने मूलधन को ग्रहण किया है।

उवसग्गेण खयंते, कम्मं ण किंचिवि अप्प-हाणी मम।
चिंतंतो जिणवयणं, वहं परीसहं जयीअ सो।।177।।

उपसर्ग से कर्मों का क्षय होता है, इससे मेरे आत्मा की हानि किंचित् भी नहीं है। इस प्रकार जिनवचनों का चिंतन करते हुए वे वध परीषह को जीतते थे।

छुआ-रोय-दुक्खेहिं, पाणे कंठगदे णेव जायेज्ज।
बहु-पडिऊलदासु पि, जायणा-परिसह-जयी मुणी॥178॥

क्षुधा, रोग वा दुःखों से प्राणों के कंठगत हो जाने पर भी अथवा बहुत प्रतिकूलताएँ होने पर भी जो कभी याचना नहीं करते, वे याचना-परीषहजयी मुनिराज हैं।

मरणादु अहियकट्ठं, जायणं मण्णेदि सया साहू।
तं णिरीहवित्तीए, जीवदि णेव जायदि कया वि॥179॥

साधु मरण से अधिक कष्ट याचना को मानता है। अतः मुनिराज सदैव निरीहवृत्ति से जीते हैं, कभी भी याचना नहीं करते।

बहुतवं वि किच्चा जदि, ण लहदि सुद्धाहार-मिड्ढि-मादिं।
पस्सिय संपत्तिड्ढी, थोवतवेण सीददि ण जयी॥180॥
सेट्ठ-साहुस्स इड्ढिं, णो कंखेदि अण्णुवलद्धि-मादिं।
किंचिवि लाहं साहू, समत्तेणं च अलाह-जयी॥181॥ (जुम्मं)

यदि बहुत तप करके भी मुनिराज शुद्धाहार व ऋद्धि आदि को प्राप्त नहीं करते अथवा दूसरों के द्वारा अल्प तप से प्राप्त ऋद्धियों को देखकर जो दुखी नहीं होते वे अलाभ-परीषहजयी मुनिराज हैं। अलाभ-परीषहजयी मुनिराज समत्व भाव से श्रेष्ठ साधु को प्राप्त ऋद्धि की, अन्य की उपलब्धि आदि अथवा किंचित् भी लाभ की आकांक्षा नहीं करते।

असादवेयणिज्जत्त-रोयो दुहमूलं जदि सरीरम्मि।
समत्तं धारदि वाहि-परिसह-जयी जिणवयणेहिं॥182॥

असातावेदनीय कर्म से उत्पन्न दुःख का मूल रोग यदि शरीर में होता है तो व्याधि परीषहजयी मुनिराज जिनवचनों से समत्व-भाव धारण करते हैं।

तिण-कंडग-फासेणं, पत्त-कट्ठेहि संकिलिट्ठ-भावा।
णेव कुव्वदि तिणफास-परीसह-जयी मुणी कया वि।।183।।

तृण-कंटकादि के स्पर्श से वा उनसे प्राप्त कष्टों से तृणस्पर्श- परीषह-जयी मुनिराज कदापि संक्लेश भाव नहीं करते।

सेदेण गहिद-रजेण, कंडु-आदिस्स-वेयणं मलेणं।
असुइ-देहे मुणिंदो, तहा मलपरीसहं जयीअ।।184।।

इस अशुचि देह में पसीना से ग्रहण की गई रज से या मल से उत्पन्न हुई खुजली आदि की वेदना मल परीषह है, उसको वे श्री विद्यानंद मुनिराज जीतते थे।

किदायरं बहुजणेहि, सक्कारं पूयणं पुरक्कारं।
ण लहदि जोग्गे वि तहवि, परीसह-जयी सीददि णेव।।185।।

कदाचित् मुनिराज योग्य होने पर भी बहुजनों के द्वारा किए गए आदर, सत्कार, पूजा या पुरस्कार को प्राप्त नहीं करते तथापि वे किंचित् भी दु:खी नहीं होते, ऐसे वे सत्कार-पुरस्कार-परीषहजयी मुनिराज होते हैं।

विसिट्ठ-णाण-संजुदे, णाणा-विज्जा-कला-संजुत्ते वि।
णाहं णदो य धीरो, पण्णा-परीसह-जयी सो दु।।186।।

विशिष्ट ज्ञान से संयुक्त होने पर भी, नाना विद्या व कलाओं से युक्त होने पर भी जो अहंकार नहीं करते वे विनम्र, धीर मुनि प्रज्ञा-परीषहजयी कहलाते हैं।

कडुअ आगमज्झयणं, जदि विसिट्ठ-खओवसम-अभावे ण।
लहदि णाणं ण दूभदि, पुव्वकम्मुदयं चिंतंतो।।187।।

आगम का अध्ययन करके भी यदि विशिष्ट ज्ञान के क्षयोपशम का अभाव होने पर मुनिराज ज्ञान प्राप्त नहीं करते तो पूर्वकृत कर्मोदय का चिंतन करते हुए वे कभी दु:खी नहीं होते।

अज्झयणे चिंतणे वि, णो लद्धे णाणे किंचिवि दु णेव।
किलिसेदि मुणिवरिंदो, खलु अण्णाण-परीसह-जयी॥188॥

आगम का अध्ययन व चिंतन करने पर भी ज्ञान प्राप्त नहीं होने पर अज्ञान-परीषहजयी मुनिराज कभी संक्लेश परिणामों से युक्त नहीं होते।

पक्खमासुववास-मुग्गतवं कुणंतो लहदि इड्ढिं णो।
तवदि समत्तेणं सय, मुणी अदंसण-परिसह-जयी॥189॥

पक्ष, मास इत्यादि का उपवास या उग्र तप करते हुए भी यदि मुनिराज ऋद्धि प्राप्त नहीं करते, सदैव समत्व-भाव से तप करते हैं तब वे अदर्शन-परीषहजयी मुनिराज कहलाते हैं।

बावीस-परीसहा दु, धीर-वीर-मुणि-विज्जाणंदेणं।
समत्तेणं दु सहिदा, संवर-णिज्जरा मुत्तीए॥190॥

श्री विद्यानंद मुनिराज ने कर्मों के संवर, निर्जरा व मोक्ष के लिए बाईस परीषहों को समत्व भाव से सहन किया।

तवो इच्छाणिरोहो, इंदिय-दमणं वि आगमे भणिदो।
मण-अक्ख-जयेण विणा, कहं तवो होज्ज अव्वदीण॥191॥

इच्छाओं का निरोध करना तप है। इंद्रियों का दमन भी तप है। ऐसा जिनागम में कहा गया है। मन व इंद्रियों के जीते बिना अव्रतियों के तप कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। अव्रती तप की भावना भा सकते हैं, चिंतन कर सकते हैं, उपवासादि कर अभ्यास कर सकते हैं किन्तु तप तो महाव्रतियों के ही होता है।

बहिरंतर-भेयादो, तवो बेविहो जिणसमये भणिदो।
बहिरंग-तवं कुणिदुं, समत्थो अवि मिच्छाइट्ठी॥192॥

बाह्य व अंतरंग के भेद से जिनागम में तप दो प्रकार का कहा गया है। बाह्य तप करने में मिथ्यादृष्टि भी समर्थ होता है।

अंतर-तव-भावणाइ, कुव्वदि बहिर-तवं सम्माइट्ठी।
अंतरंगतवं विणा, बहिरंग-तवो ण सिव-हेदू॥193॥

सम्यग्दृष्टि जीव अंतरंग तप की भावना से बाह्य तप करता है। अंतरंग तप के बिना बहिरंग तप मोक्ष का हेतु नहीं होता है।

धम्मज्झाणेण विणा, तवो णिरत्थगो सय मुणेदव्वो।
अणेगवारं वि बीअ-विहीण-खेत्त-आअंछणं व॥194॥

धर्मध्यान के बिना तप सदा वैसे ही निरर्थक जानना चाहिए जैसे बीज से रहित खेत को अनेक बार भी जोतने पर फसल प्राप्त नहीं होती, वह निरर्थक ही है।

उववास-अवमोदरिय-वित्तिपरिसंखाण-रसचागतवा।
विवित्त-सेज्जासणं च, कायकिलेसो बहिर-तवा॥195॥

उपवास, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त-शैय्यासन और कायक्लेश ये छह बाह्य तप हैं।

खज्ज-सज्ज-लेह-पेय-चउविह-असण-उज्झणं उववासो।
वियडि-अबंभ-णासगो, समत्तेण विसुद्धभावेहि॥196॥

खाद्य, स्वाद्य, लेह्य व पेय इन चार प्रकार के आहार का त्याग करना उपवास है। समत्वभाव व विशुद्धभावपूर्वक किया गया उपवास विकृति व अब्रह्म का नाशक होता है।

सुतव-विड्ढीए णूण-सुद्धाहार-गहणं सगछुहादो।
ऊणोदर-तव-खादो, पमादं खयिदुं विसुद्धीइ॥197॥

प्रमाद के क्षय के लिए, सम्यक् तप की वृद्धि के लिए विशुद्धि से अपनी भूख से कम शुद्ध आहार ग्रहण करना ऊनोदर नामक विख्यात तप है।

महुर-तित्त-कडु-कसाय-अंब-रस-आमिल्लणं सत्तीए।
अप्पविसुद्धीए सया, रसपरिचागतवो सेट्ठो हु॥198॥

मधुर, तिक्त, कटुक, कसायला व खट्टे रस का आत्मविशुद्धि से शक्तिपूर्वक त्याग करना श्रेष्ठ रसपरित्याग तप है।

गुड-तिल्ल-घिद-दहि-दुद्ध-पणरसाण वा लवणजुद-छ-रसाण।
ससत्ति-मणुगूहंतो, णिल्लुंछणं रसचाग-तवो॥199॥

गुड़, तेल, घृत, दही व दूध इन पाँच रसों का अथवा ये पाँच व नमक सहित इन छह रसों का अपनी शक्ति को न छिपाते हुए त्याग करना रसपरित्याग तप है।

वित्तिं कुणदि जो कट्टु, दव्व-खेत्त-यालाइ-मज्जादं च।
आहारं गहिदुं सो, वित्तिपरिसंखाण-जुत्तो य॥200॥

जो आहार ग्रहण करने के लिए द्रव्य, क्षेत्र, कालादि की मर्यादा करके वृत्ति करता है वह वृत्तिपरिसंख्यान तप से युक्त है।

वित्तिपरिसंखाणं, सग-सत्ति-विड्ढीइ कम्मक्खयेदुं।
णो सम्माणस्स कुणदि, पर-पराभव-भाव-रहिदो य॥201॥

पर के पराभव के भाव से रहित मुनिराज सम्मान के लिए नहीं अपितु अपनी आत्मशक्ति की वृद्धि एवं कर्मक्षय के लिए वृत्ति- परिसंख्यान तप करते हैं।

पउम-वीर-वज्ज-बंभ-गोड-पल्लंकादि-आसणेहिं च।
तच्चचिंतणं कुणदि, पसत्थ-झाणं सया जोगी।।202।।

पद्मासन, वीरासन, वज्रासन, ब्रह्मासन, गोड़ासन, पर्यंकासनादि आसनों से योगीराज सदा तत्त्वचिंतन व प्रशस्तध्यान करते हैं।

होदि कट्ठं जदि तो वि, णेव विसट्टेदि झाणजोगादो।
कुणदि तिव्व-तवं देह-कट्ठं णो अप्पुल्लो मणदि।।203।।

यदि मुनिराज को कष्ट भी होता है तो भी वे ध्यान-योग से स्खलित नहीं होते। वे मुनिराज शरीर के कष्ट को अपना नहीं मानते एवं तीव्र तप करते हैं।

उण्हसीदबाहाए, जलविट्ठीइ चवलाजुद-पवणेहि।
रोय-पहुदि-जणिद-कट्ठ-सहणं दु कायकिलेसतवो।।204।।

ऊष्ण वा शीत की बाधा होने पर, चमकती बिजली के साथ वायु से जलवृष्टि होने पर अथवा रोगादि जनित कष्टों का सहन करना कायक्लेश तप है।

सव्वतवा पकुव्विदा, मुणि-विज्जाणंदेण विसुद्धीए।
अणुगूहंतो सत्तिं, झाणज्झयण-रद-संजमिणा।।205।।

ध्यान व अध्ययन में रत संयमी मुनिश्री विद्यानंदजी के द्वारा अपनी शक्ति को न छिपाते हुए विशुद्धिपूर्वक सभी तप किए गए।

पायच्छित्तं विणओ, वेज्जावच्चं सज्झाओ कमसो।
काउस्सग्गो झाणं, छव्विहंततवो सिवहेदू।।206।।

प्रायश्चित, विनय, वैय्यावृत्ति, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग और ध्यान ये क्रमशः छह प्रकार के अंतरंग तप हैं जो मोक्ष का हेतु हैं।

अंतरतवेणं विणा, बहितवो मुत्तिअं विणा सिप्पीव।
अहवा विज्जुदं विणा, विज्जुद-उवयरणं व णेया॥207॥

अंतरंग तप के बिना बाह्य तप वैसा ही जानना चाहिए जैसे मोती के बिना सीप अथवा विद्युत् के बिना विद्युत् उपकरण।

अंतरवीयेण विणा, णारिएल-बादाम-पहुदीणं च।
आवरणं व केवलं, बहिरो विणा अंतरतवेण॥208॥

अंतरंग तप के बिना बाह्य तप वैसा ही है जैसे अंदर बीज (गिरि) के बिना नारियल या बादाम आदि का केवल छिलका।

सम्मत्त-जम-वदेसुं, अण्णाण-पमाद-कसायेहिं वा।
खयिदु-मुप्पण्ण-दोसा, करेज्ज जदी पायच्छित्तं॥209॥

सम्यक्त्व, नियम और व्रतों में अज्ञान, प्रमाद या कषाय से उत्पन्न दोषों के क्षय करने के लिए यतिजन प्रायश्चित्त करते हैं।

धम्मफल-धम्मेसु सम्मत्ताइगुणेसु ताण धारगेसु।
धरेज्जा विणयभावं, सुद्धप्पगुणं विआसेदुं॥210॥

धर्म, धर्म के फल में, सम्यक्त्वादि गुणों में एवं उनके धारकों में मुनि शुद्धात्म गुणों के विकास के लिए विनयभाव धारण करते हैं।

दंसण-णाण-चरिय-तव-उवयार-भेयादु पणहा विणयो।
तवसीहि पालिदव्वो, विणयधम्मो सगसत्तीए॥211॥

दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तप व उपचार के भेद से विनय पाँच प्रकार की कही गई है। अपनी शक्ति के अनुसार तपस्वियों के द्वारा विनयधर्म सदैव पालन किया जाना चाहिए।

उवयार-विणयं विणा, ण ववहारधम्म-संभवो कया वि।
धम्मायदण-पुज्जेसु, विणयं करेज्ज सिवसिद्धीइ॥212॥

उपचार-विनय के बिना व्यवहारधर्म कदापि संभव नहीं है। मोक्ष की सिद्धि के लिए धर्मायतनों में व पूज्यजनों में विनय करनी चाहिए।

सण्णाण-पगासणाइ, विणओ परमतवो मोक्खद्दारं।
मण्णेज्ज रहचक्कं व, वट्टेदुं ववहारधम्मं॥213॥

सम्यग्ज्ञान के प्रकाश के लिए विनय परमतप है। विनय ही मोक्ष का द्वार है। व्यवहार-धर्म के प्रवर्तन के लिए विनय ही रथ के पहिये के समान मानना चाहिए।

संजमविड्ढीइ खेद-सम-किलंताणं सय परिहारस्स।
महापीदीइ मुणीण, अणुवज्जणं वेज्जावच्चं॥214॥

संयम की वृद्धि के लिए, खेद, श्रम व क्लांति के परिहार के लिए महाप्रीतिपूर्वक मुनियों की सेवा-शुश्रूषा करना वैय्यावृत्ति है।

धम्मं वड्ढेदुं कट्ठं णासिदुं संजमीणं णिच्चं।
सगभावविसुद्धीए, वेज्जावच्चं पकुव्वेज्जा॥215॥

संयमियों के धर्म की वृद्धि के लिए और कष्टों के नाश के लिए अपने भावों की विशुद्धिपूर्वक वैय्यावृत्ति करनी चाहिए।

विड्ढीए झाण-णाण-तव-संजम-वेरग्ग-जिणभत्तीण।
मण-वयणकायेहिं च, आहि-वाहि-आइं हरेदुं॥216॥
अमूढदिट्ठी उवसम-भाव-जुत्तो संवेगी किवालू।
आसण्णभवी सक्को, कुणिदुं सया वेज्जावच्चं॥217॥ (जुम्मं)

संयमीजनों के ज्ञान, ध्यान, तप, संयम, वैराग्य व जिनभक्ति की वृद्धि के लिए, आधि-व्याधि आदि के नाश के लिए मन, वचन, काय से अमूढ़दृष्टि, उपशम भाव से युक्त, संवेगी, कृपालु व आसन्नभव्य जीव ही सदा वैयावृत्ति करने के लिए समर्थ है।

सव्वं रोयं सोगं, खयिदुं सक्को वेज्जावच्च-तवो।
देदि अच्चंत-सुंदर-देहं उत्तम-संघडणं च॥218॥

वैय्यावृत्ति तप सभी रोग व शोक का नाश करने में समर्थ है। यह तप उत्तम संहनन व अत्यंत सुंदर देह को देता है।

सुहणाम-मुच्चगोदं, देज्ज सुहाउं सादावेयणीयं।
णासिदुं पावपइडिं, सव्वुक्किट्ठ-तवो धम्मो दु॥219॥

वैय्यावृत्ति नामक यह सर्वोत्कृष्ट-तप व धर्म नित्य ही शुभ नाम, उच्चगोत्र, सादा वेदनीय व शुभायु प्रदान करता है। पाप प्रकृतियों के नाश के लिए यह तप सर्वोत्कृष्ट है।

जिणसुत्ताणं पढणं, चिंतणं सुणणं जाणणं हिदाय।
परकल्लाणत्थं वा, धम्मदेसणं पि सज्झाओ॥220॥

हित के लिए जिनसूत्रों का पढ़ना, चिंतन करना, सुनना, जानना व पर कल्याण के लिए धर्म उपदेश देना भी स्वाध्याय है।

सगहिद-भावणं विणा, पढणं गंथस्स कहं सज्झाओ।
मेत्तं परुवएसस्स, अज्झयणं णेव सज्झाओ॥221॥

स्वहित की भावना के बिना ग्रंथ पढ़ना स्वाध्याय कैसे कहा जा सकता है? मात्र परोपदेश के लिए अध्ययन करना स्वाध्याय नहीं है।

परमतवो सज्झाओ, णियमा धम्म-सुक्कज्झाण-हेदू।
माणत्थपदाकंखी, अज्झयणसीलो णो णाणी।।222।।

स्वाध्याय परम तप है। वह नियम से धर्म व शुक्लध्यान का हेतु है। सम्मान, धन, पद, प्रतिष्ठा का आकांक्षी अध्ययनशील व्यक्ति ज्ञानी नहीं कहलाता।

णेव असंजदाणं दु, सज्झाय-तवो सया संजदाणं।
बीयेण विणा तरू व, संजमेण विणा सज्झाओ।।223।।

यह स्वाध्याय तप असंयतों के नहीं होता। यह तप संयमियों के लिए ही कहा गया है। संयम के बिना स्वाध्याय वैसे ही है जैसे बीज के बिना वृक्ष।

सव्वसंग-मुज्झित्ता, देहादो ममत्तं तिजोगेहिं।
काउस्सग्गो णेयो, परिलीणं तच्चचिंतणम्मि।।224।।

तीनों योगों से सर्व परिग्रह का त्यागकर, शरीर से ममत्व का त्यागकर तत्त्वचिंतन में लीन रहना कायोत्सर्ग जानना चाहिए।

विरत्तमणेण करिदुं, काउसग्गं सक्को भावि-सिद्धो।
रयणत्तयसंजुत्तो, विसय-कसाय-पावहीणो दु।।225।

विषय-कषाय व पाप से हीन, रत्नत्रय से युक्त भावी सिद्ध ही विरक्त-मन से कायोत्सर्ग करने में समर्थ होता है।

जिणाणं स-चित्ते जो, धारदे संजमं ओग्गहिदूणं।
पुणो सुद्धोवजोगी, तस्स सज्झाणं सिव-हेदू।।226।।

जो संयम को ग्रहण करके जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा को अपने चित्त में धारण करता है पुनः शुद्धोपयोगी होता है उसका सद्ध्यान ही मोक्ष का हेतु है।

आणा-अपाय-विवाग-संठाण-विचय-धम्मज्झाणाइं।
विचयोत्थि चिंतणं तं, अण्णावेक्खाइ दसविहाणि।।227।।

धर्मध्यान के चार भेद हैं—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय। यहाँ विचय का अर्थ है—चिंतन करना। अन्य अपेक्षा से यह धर्मध्यान दस प्रकार का भी होता है।

जिणाणा-पालणं संजम-पालणं सण्णाणे पवित्तिं।
पकुव्वेदि णिद्दोसं, आणाविचय-धम्मज्झाणी।।228।।

जिनाज्ञा का पालन करना आज्ञाविचय धर्मध्यान है, उस आज्ञाविचय ध र्मध्यान को करने वाला सम्यग्ज्ञान में निर्दोष प्रवृत्ति और संयम का पालन करता है।

सव्व-भवदुहकारणं, खयिदुं चिंतेदि दुक्खं अपायं।
तेण णासेणं विणा, दुह-णासणं संभवो णेव।।229।।

सर्व भवदु:ख-कारणों के क्षय के लिए संयमी उन दु:खों का चिंतन करते हैं वही अपायविचय धर्मध्यान है। उन भव-कारण के नाश के बिना दु:ख का नाश करना संभव नहीं है।

कम्मोदयेण जीवा, भमंति चुलसीदिलक्खजोणीसुं।
लहंति णाणादुहाणि, चिंतणं चिय विवाग-विचयं।।230।।

कर्म के उदय से जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हैं एवं नाना दु:खों को प्राप्त करते हैं। यह चिंतन करना विपाकविचय धर्मध्यान है।

जीवादी-छद्दव्वा, जत्थ विज्जंति लोगो सो तिविहो।
तस्स सरूव-चिंतणं, संठाण-विचयं णादव्वं।।231।।

जीव आदि छह द्रव्य जहाँ विद्यमान होते हैं वह लोक कहलाता है। वह लोक ऊर्ध्व, मध्य व अधोलोक के भेद से तीन प्रकार का है। उस लोक के स्वरूप का चिंतन करना संस्थानविचय धर्मध्यान जानना चाहिए।

उड्ढे विमाणिग-सुरा, मज्झम्मि णिरयहीण-तिगदि-जीवा।
अहे सुरा णेरइया, थावर-काया सव्वलोए।।232।।

ऊर्ध्व लोक में वैमानिक देव, मध्यलोक में नरकगति को छोड़कर अन्य तीन गति के जीव, अधोलोक में नारकी व देव निवास करते हैं और स्थावर जीव सर्व लोक में रहते हैं।

आणावायोवाया, विवागं संठाणं लोग-हेदू।
जीवाजीव-विराया, दसविहं अवि धम्मज्झाणं।।233।।

धर्मध्यान दस प्रकार का भी है–आज्ञाविचय, अपायविचय, उपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय, लोकविचय, हेतुविचय, जीवविचय, अजीवविचय और विरागविचय।

मोहोवसमे खीणे, सेढीए आरूढ-सुजोगीणं।
जं झाणं तं सुक्कं, सिवकारणं होदि णियमेण।।234।।

मोह के उपशम होने पर वा क्षीण होने पर श्रेणी पर आरूढ़ योगियों के जो ध्यान होता है वह शुक्लध्यान कहलाता है, वह नियम से मोक्ष का कारण होता है।

मण्णंति के वि सूरी, पढमं सुक्कं चडंतो सेणीइ।
अट्ठम-गुणट्ठाणादु, एयारस-गुणट्ठाणंतं।।235।।

कई सूरी मानते हैं कि प्रथम शुक्लध्यान श्रेणी पर चढ़ते हुए अष्टम गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है।

पढममुवसंतमोहे, खीणे विदियं सजोगम्मि तिदियं।
सुक्कज्झाण-मजोगे, चदुत्थं जाणेज्ज णियमेण।।236।।

कई आचार्यों के अनुसार उपशांत मोह में प्रथम शुक्लध्यान, क्षीण मोह में द्वितीय शुक्लध्यान, संयोगकेवली गुणस्थान में तृतीय शुक्लध्यान और अयोगकेवली गुणस्थान में नियम से चौथा शुक्लध्यान जानना चाहिए।

पिथगत्तं वितक्कं च, वीयारं एगत्त-अवीयारं।
सुहुम-किरिय-पडिपादी, विओवरद-किरिया-णिवत्ती।।237।

शुक्लध्यान के चार भेद इस प्रकार हैं–प्रथम पृथक्त्व-वितर्क- वीचार, द्वितीय एकत्व-वितर्क-अवीचार, तृतीय सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती और चतुर्थ व्युपरतक्रियानिवृत्ति।

अट्टं रुद्दं असुहं, विहाय करीअ सय धम्मज्झाणं।
मुणिविज्जाणंदं हं, तवपूदं णमामि भत्तीइ।।238।।

आर्त्त व रौद्र इन अशुभ ध्यानों को छोड़कर श्री विद्यानंद मुनिराज सदैव धर्मध्यान किया करते थे। तप से पवित्र उन श्री विद्यानंद मुनिराज को मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ।

मुणिविज्जाणंदेणं, पालिदा मूलुत्तरगुणा इत्थं।
सगप्पस्स गुरुसिस्सो, अपमत्तभावजुदो कयाइ।।239।।

इस प्रकार श्री विद्यानंदजी मुनिराज मूलगुण व उत्तरगुणों का पालन किया करते थे। वे कदाचित् अप्रमत्तभाव से युक्त योगी अपनी आत्मा के गुरु व शिष्य भी थे।

सदाहिय-चरिय-गंथा, तिसट्ठिसलागाण चरिमदेहीण।
भावि-तित्थयराणं च, पढीअ पढावीअ पणिहीइ।।240।।

उन्होंने त्रेसठ शलाका पुरुष, चरम शरीरियों व भावी तीर्थंकरों के सौ से अधिक चरित्र ग्रंथों को एकाग्रतापूर्वक पढ़ा और पढ़ाया।

कम्मसिद्धंतं णाय-मज्झप्पगंथं णयं वागरणं।
चउ-अणुजोगं च कव्व-छंदाइ-गंथं चिय पढीअ।।241।।

उन्होंने कर्म सिद्धांत, न्याय, अध्यात्म ग्रंथ, नय, व्याकरण, चार अनुयोग एवं काव्य छंदादि ग्रंथों का अध्ययन किया।

मूलायारं मूलाराहणं मूलायारपदीवं च।
आयारसारं मरण-कंडिगं च अत्तमीमंसं।।242।।
भगवदि-आराहणं च, भावसंगहं कत्तिगाणुवेक्खं।
सुहासिद-रयणावलिं, सिद्धंतसार-कम्मपइडिं।।243।।
जंबुदीव-पण्णत्तिं, तिलोय-पण्णत्तिं तिलोयसारं।
रायवत्तिगं सिलोग-वत्तिगं तच्चत्थ-वित्तिं च।।244।।
गोम्मड-जीवकंडं च, कम्मकंडं तह सव्वत्थ-सिद्धिं।
लद्धि-सारं च खवणा-सार-मह सिद्धिविणिच्छयं पि।।245।।
तच्चवियारं सार, सावयायारं धम्मरसायणं।
लहुतच्च-फोडं तहा, सुहासिद-रयण-संदोहं च।।246।।
अट्ठसदिं च सहस्सिं, लघीयत्तयं लोय-विभागं तह।
सिआवाय-मंजरिं च, पउमणंदि-पंचविंसदिगं।।247।।
णयचक्कं च परिक्खामुहं तह पमेयकमलमत्तंडं।
सच्च-सासण-परिक्खं णायदीविगं थुदिविज्जं च।।248।।
पमेयरयणमालं च, आलावपद्धतिं तह भूवलयं।
जुत्ताणुसासणं बारसाणुवेक्खं बहुपाहुडं।।249।।
आराहणासारं दु, णाणण्णवं कल्लाणकारगं य।
परमप्प-पगासं तह, कलाव-जिणिंद-वागरणं च।।250।।
अमियासीदिं पमाण-परिक्खं णीदि-वक्कामिय-गंथं।
गणिद-सार-संगहं च, अज्झप्पतरंगिणिं गंथं।।251।।
वेज्जगगंथं आगम-सारं पुरिसट्ठ-सिद्धि-उवायं च।
तच्चणुसासणं कहा-कोसं तह अंगपण्णत्तिं।।252।।
जोगसारं च समाहि-सदगं परमप्पझाण-तरंगिणिं।

अज्झप्पामियकलसं, रहस्स-पायच्छित्त-गंथं।।253।।

णीदि-विण्णाण-गंथं, वत्थु-जोदिस-मंत-तंतादीणं।

लोय-ववहार-पसिद्ध-बहु-पोत्थआइं अवि पढीअ।।254।।

उन्होंने मूलाचार, मूलाराधना, मूलाचारप्रदीप, आचार-सार मरण-कंडिका, आप्तमीमांसा, भगवती आराधना, भाव-संग्रह, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, सुभाषित-रत्नावली, सिद्धांतसार, कर्मप्रकृति, जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, त्रिलोक प्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, तत्त्वार्थवृति, गोम्मटसार जीवकांड, गोम्मटसार कर्मकांड, सर्वार्थसिद्धि, लब्धिसार, क्षपणसार, सिद्धि-विनिश्चय, तत्त्वविचार-सार, श्रावकाचार, धर्म रसायन, लघुतत्त्वस्फोट, सुभाषित रत्न संदोह, अष्टशती, अष्टसहस्री, लघीयस्त्रय, लोकविभाग, स्याद्वाद मंजरी, पद्मनंदि-पंचविंशतिका, नयचक्र, परीक्षामुख, प्रमेय कमलमार्तण्ड, सत्य-शासन-परीक्षा, न्यायदीपिका, स्तुतिविद्या, प्रमेय रत्नमाला, आलापपद्धति, भूवलय, युक्त्यानुशासन, बारसाणुवेक्खा, बहुत से पाहुड़, आराधनासार, ज्ञानार्णव, कल्याण-कारकं, परमात्मप्रकाश, कलाप व्याकरण, जैनेन्द्र व्याकरण, अमृताशीति, प्रमाण-परीक्षा, नीति-वाक्यामृत, गणितसारसंग्रह, अध्यात्म तरंगिणी, वैद्यक ग्रंथ, आगम सार, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, तत्त्वानुशासन, कथाकोष, अंगप्रज्ञप्ति, योगसार, समाधि-शतक, परमाध्यात्म तरंगिणी, अध्यात्म-अमृत कलश, रहस्य ग्रंथ, प्रायश्चित्त ग्रंथ, नीति विज्ञान ग्रंथ, वास्तु, ज्योतिष, मंत्र-तंत्रादि के ग्रंथ एवं लोकव्यवहार में प्रसिद्ध बहुत पुस्तकों का अध्ययन किया।

सडखंडागमगंथं, धवलं जयधवलं महाधवलं च।

इमेहि सह बहुगंथा, कसायपाहुडादिं पढीअ।।255।।

षट्खंडागम ग्रंथ, धवला, जयधवला, महाधवला व कषाय-पाहुड़ आदि को एवं इनके साथ अन्य भी बहुत ग्रंथों को पढ़ा।

अणेगज्झप्प-गंथा, पढिय चिंतिय करीअ अप्प-झाणं।
लहीअ अप्पाणंदं, तं विज्जाणंदं वंदेमि।।256।।

जिन्होंने अनेक अध्यात्म ग्रंथों को पढ़कर, उनका चिंतन कर आत्मध्यान किया एवं आत्मा के आनंद को प्राप्त किया उन श्री विद्यानंदजी मुनिराज की वंदना करता हूँ।

उणवीससयचउसट्ठि-वस्से जयपुरे होज्ज चउमासो।
तस्स पवयण-णाणेहि, अभूदपुव्व-पहावणा चिय।।257।।

वर्ष 1964 में श्री विद्यानंद मुनिराज का चातुर्मास अपने गुरु आचार्यश्री देशभूषणजी के साथ जयपुर में हुआ। उनके प्रवचन व ज्ञान से वहाँ अभूतपूर्व प्रभावना हुई।

पणरस-वीस-सहस्सा, सोदा आगदा तस्स उवएसे।
मंदिरं विहाय बहिर-सहा रामलीला-परिसरे।।258।।

उनके प्रवचन में उस समय 15-20 हजार श्रोता आने लगे थे। अतः मंदिर को छोड़कर सभा बाहर रामलीला मैदान में हुआ करती थी।

मुणिवर-पुरिसट्ठेणं, संगच्छिदो जयपुर-समायेणं।

आयर-सम्माणेहिं मुलताण-जइण-समासो चिय।।259।।

मुनिश्री के पुरुषार्थ से जयपुर जैन समाज ने आदर-सम्मान से मुल्तान जैन समाज को स्वीकार किया।

विशेषार्थ–मुल्तान शहर (पाकिस्तान) से जयपुर आए जैन भाइयों को लेकर जयपुर समाज में विवाद खड़ा हुआ था। जयपुर समाज उन्हें अपने साथ मिलाने को तैयार नहीं था। यह बात मुनिवरश्री तक पहुँची। उन्होंने अगले दिन ही यह घोषणा कर दी कि वे मुलतान से आए भाइयों की कॉलोनी में विहार करेंगे और जब तक जयपुर-समाज उन्हें आदर के साथ अपने साथ मिला न लेगी तब तक वे यहीं रहेंगे। मुनिश्री के इस पुरुषार्थ से जयपुर समाज ने पूरे आदर-सम्मान से मुल्तान जैन समाज को स्वीकार किया।

तस्स पवयणे मंती, उवट्ठिदा विदु-जणा रज्जवालो।

अपार-जण-समूहो दु, इदिवित्तम्मि पढमवारं च।।260।।

उन मुनिश्री के प्रवचन में मंत्री, राज्यपाल व विद्वत्जन भी उपस्थित हुआ करते थे। किन्हीं दिगंबर मुनिराज के प्रवचन में ये अपार जनसमूह इतिहास में पहली बार देखने को मिला था।

वन्य प्राणी सप्ताह (1964): श्रीरामनिवास मिर्धा (मन्त्री राजस्थान सरकार) के साथ

रक्षा बन्धन के पावन अवसर पर राजस्थान के राज्यपाल डॉ. सम्पूर्णानन्द के साथ (1964)

मुनिश्री का मंगल प्रवचन, जयपुर (1964): राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया के साथ

सुप्पसिद्धो मुणिंदो, जंगम-विस्सविज्जालय-णामेण।
समायार-पत्तेसु वि, पयासिदो तस्स सो णामो।।261।।

वे मुनींद्र श्री विद्यानंदजी अपने अथाह ज्ञान व प्रभावी वक्तृत्व शैली से 'चलते-फिरते विश्वविद्यालय' नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। उस समय समाचार-पत्रों में भी उनका यह नाम प्रकाशित किया गया।

पवयणत्थं मुणिवरो, संकमीअ ठाणिय-कारागारे।
पढमावसरो हि जदा, उवदेसिदं मुणिणा हु तत्थ।।262।।

मुनिवरश्री प्रवचन के लिए स्थानीय कारागार में भी गए। यह प्रथम अवसर था जब किन्हीं मुनि ने जेल में जाकर कैदियों को उपदेश दिया।

पस्सिय मुणि-णेउण्णं, विहरिदु-मणुमोएज्ज सातंतेण।
जिणधम्मपहावणाइ, धम्मे थिरिमाइ भव्वाणं।।263।।

मुनिवरश्री की निपुणता को देखकर, जिनधर्म की प्रभावना के लिए और भव्यों को धर्म में स्थिर करने के लिए गुरु ने उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक विहार की अनुमति दी।

बे आरक्खगा तदा, गुत्तरूवेण चलीअ विहारम्मि।
मुणिवर-सुरक्खाए दु, पच्छा णादो णिउत्ता ते।।264।।
तक्कालीण-मंतिवर-णिरंजणणाहेण भत्ति-सड्ढाइ।
रज्ज-सम्माण-जुत्तो, जयपुरणयर-वस्साजोगो।।265।। (जुम्मं)

तब जयपुर से विहार के समय दो सुरक्षाकर्मी गुप्त रूप से मुनिराज की सुरक्षा में विहार में साथ में चले। बाद में मुनिवरश्री को ज्ञात हुआ कि वे गुप्त सुरक्षाकर्मी तत्कालीन मंत्री श्री निरंजननाथ आचार्य ने भक्ति व श्रद्धा से नियुक्त किये थे। इस प्रकार जयपुर नगर का वह चातुर्मास राजकीय सम्मान से युक्त था।

विहरंतो पहुच्चीअ, पण-कल्लाण-पद्दिट्ठा-उच्छवस्स।
संतिवीरणयरस्स दु, सिरि-महावीरदिसय-खेत्तं॥266॥

तत्पश्चात् श्री विद्यानंदजी मुनिराज शांतिवीर नगर के पंच- कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के लिए विहार करते हुए अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी पहुँचे।

आयोजण-थल-णियडं, गच्छंतो चिय चलचित्त-गीदं।
सुणिय पलोट्टीअ तादु, णिय-ठाणं सिरीमुणिरायो॥267॥
पहुच्चीअ मुणि-णियडं, आयोजग-पद्दिट्ठाइरियादी हु।
अविवेगेण तज्जिदा, मुणिवरेण तहा सव्वा ते॥268॥
णिय-दोसं संगच्छिय, खामित्ता सिरिमुणिपदे पत्थीअ।
चलिदु-मायोजणथलं, खम्मित्तु संकप्पेण मुणी॥269॥
थुदि-आइ-मुद्दिगाए, गच्छीअ तत्थ विज्जाणंदमुणी।
सावय-सावियाणं च, देसीअ उक्किट्ठ-भावेहि॥270॥ (चउक्कं)

पंचकल्याणक के कार्यक्रम चल रहे थे। मुनिवरश्री आयोजन स्थल की ओर जा रहे थे। कार्यक्रम स्थल के निकट जाते हुए उन्होंने फिल्मी गाने सुने। फिल्मी गानों की यह आवाज पांडाल से ही आ रही थी। अतः उन्हें सुनकर मुनिश्री अपने स्थान की ओर लौट पड़े। जब आयोजक और प्रतिष्ठाचार्य आदि को यह ज्ञात हुआ तो वे सभी मुनिराज के समीप पहुँचे और अपनी गलती के विषय में पूछा, तब मुनिवरश्री ने उन सभी को उनके अविवेक के लिए डाँटा। (उन्होंने कहा कि पंचकल्याणक में फिल्मी गाने चलाकर आप लोग समाज को क्या संदेश देना चाहते हैं? क्या आपके पास ऐसे विद्वान् नहीं हैं जो माइक पर धर्म के संबंध में कुछ कह सकें, कोई स्तुति, कोई भजन पढ़ सकें? प्रतिष्ठा में इतना खर्च करते हो, क्या यह व्यवस्था नहीं कर सकते?)

यह सुनकर सभी ने अपने दोष को स्वीकार कर मुनिराज से क्षमा माँगी और उन मुनिवर के चरणों में आयोजन स्थल की ओर चलने की प्रार्थना की। उन सभी को क्षमा कर श्री विद्यानंदजी मुनिराज एक संकल्प के साथ आयोजन स्थल गए कि कुछ भी हो मैं जैन भजन, स्तुति आदि का ग्रामोफोन रिकॉर्ड अवश्य बनवाऊँगा एवं उत्कृष्ट भावों के साथ वहाँ श्रावक व श्राविकाओं को धर्मोपदेश दिया।

उणवीससयपणसट्ठि-वस्से चउमासो चंदणयरस्स।
छदामी-लाल-मंदिर-परिसरे ताण-मणुरोहेण।।271।।

ईसवी सन् 1965 में मुनिश्री का चातुर्मास सेठ छदामीलाल और अन्य समाज के अनुरोध से चंद्रनगर-फिरोजाबाद के छदामीलाल जैन मंदिर परिसर में हुआ।

आवीअ पहादे सत्तादु अट्ठंतं सव्वधम्मजणा।
पवयणम्मि तस्स पासणाह-गीदं गायंता चिय।।272।।

सुबह सात से आठ बजे तक मुनिराज के प्रवचन हुआ करते थे। श्री पार्श्वनाथ स्वामी का भजन 'तुमसे लागी लगन...' गाते हुए सभी धर्मात्मा लोग उनके प्रवचन में सुबह-सुबह आते थे। (तब एक अभूतपूर्व दृश्य सड़कों पर देखने को मिलता था)।

घंटघर-चउपहे चिय, आयोजिदं पवयणं सुणिय तस्स।
वंदिदो मउसुलेहिं, सूफी-संत-रूवे जोगी।।273।।

मुनिश्री का प्रवचन जब घंटाघर के चौराहे पर आयोजित किया गया तब 'ईश्वर क्या और कहाँ' इस शीर्षक पर प्रवचन सुनकर मुसलमानों ने अपने सूफी संत के रूप में उन योगी की वंदना की।

विज्जालय-आदीसुं, आयोजिदं पवयणं जदिवरस्स।
सिक्ख-हिंदु-मउसुल-वइदिगादी आवीअ पेम्मेण।।274।।

तब यतिवर के प्रवचन विद्यालय आदि में आयोजित किए गए। सिक्ख, हिंदू, मुस्लिम और वैदिक आदि लोग बहुत प्रेम से मुनि के प्रवचनों में आते थे। मुनिवर का ज्ञान बहुत गहन था। उनकी धर्मसभा में सर्वधर्मावलम्बियों को ऐसा प्रतिभासित होता था कि जैसे उनके ही धर्म का प्रतिपादन हो रहा है।

विशेषार्थ–एक बार नारी शिक्षा पर महात्मागांधी विद्यालय में मुनिश्री के प्रवचन हुए। तब प्रबंधकारिणी समिति ने मुनिश्री से अनुरोध किया कि आप छात्राओं को संदेश दें कि वे चुस्त कपड़े आदि न पहनें। जब मुनिश्री ने इस बात को प्रवचन में कहा तो एक छात्रा ने बीच में खड़े होकर पूछा कि मुनिजी ये आपने कहा है या कहलवाया गया है। तब मुनिश्री ने कमेटी की ओर संकेत कर दिया। इस पर छात्रा ने कहा कि आप इनसे कहें कि ये पगड़ी पहनें, लंबा कोट पहनें। इस पर मुनिश्री ने कहा कि ये झगड़ा आपके और उनके बीच में है, मैं तो कुछ पहनता ही नहीं। आप जानें और ये जानें। इस पर सब जोर-जोर से हँसने लगे।

सुपहावणा गुंजिदा, रायहाणी-पज्जंतं समणस्स।
चंदणयरं पहुच्चिय, पत्थीअ तत्थ चउमासस्स।।275।।
अइभत्तीए ढिल्ली-जइण-पंचायद-पदाहियारी य।
अणुमोएज्ज मुणिरायो छसट्ठी-चउमासस्स तदा।।276।। (जुम्मं)

मुनिश्री की प्रभावना की ये गूंज भारत की राजधानी दिल्ली तक भी पहुँची। दिल्ली जैन पंचायत के पदाधिकारियों ने फिरोजाबाद पहुँचकर मुनिश्री से आगामी चातुर्मास दिल्ली में करने के लिए निवेदन किया। मुनिश्री ने उनका निवेदन स्वीकार कर 1966 के वर्षायोग की अनुमति दिल्ली में करने हेतु प्रदान की।

आगरा-जामाए दु, सम्मुहे होज्जा पवयणं मुणिस्स।
सहस्साहिया सोदा, सुणीअ तदा भत्ति-सड्ढाइ।।277।।

अनंतर आगरा नगर में जामा मस्जिद के सामने वाले मैदान में मुनिराज के प्रवचन हुए। तब भक्ति-श्रद्धा से हजारों से अधिक श्रोताओं ने मुनिराज के प्रवचन सुने। मुनिराज के ये प्रवचन मुस्लिम समाज ने ही आयोजित किए थे।

प्रवचन में उपस्थित मौलवी मुफ्ती साहब

समीवत्थ-णयरेसु, कुणंतो धम्मपहावणं पविसीअ।
भारद-रायहाणीइ, पवयणं हु पयाणखेत्तम्मि।।278।।

चातुर्मास उपरांत मुनिराजश्री ने समीपस्थ नगरों में धर्म प्रभावना करते हुए भारत की राजधानी दिल्ली में प्रवेश किया वहाँ उनके प्रवचन बालाश्रम के प्रांगण में होते थे। किन्तु बढ़ते हुए श्रोताओं की संख्या को देखकर मुनिराज के प्रवचन दिल्ली के परेड ग्राउण्ड में रखे।

महापौर श्री नूरुद्दीन अहमद

उप महापौर लाला देशराज चौधरी

रक्षामंत्री श्री यशवन्तराव चव्हाण

दइणिग-पवयणेहि सह, आयोजिदं पज्जूसण-पव्वं पि।
तत्थ तहा पस्संतो, तेण सह अवार-जण-जूहं।।279।।

तब वहाँ उनके साथ अपार जन समूह को देखते हुए दैनिक प्रवचनों के साथ पर्यूषण पर्व भी वहीं आयोजित किया।

साहु-णिवेदणेण सम्मेद-विआस-जोयण-मारब्भीअ।
मुणिराय-सण्णिहीए, तस्स पवयण-सुप्पहावेण।।280।।

साहूजी के निवेदन पर मुनिराज के सानिध्य में उनके प्रवचन के प्रभाव से सम्मेदशिखर के विकास की योजना प्रारंभ हो गई।

विशेषार्थ–उस समय प्रवचन में साहू शान्ति प्रसाद और श्रीमती रमा रानी भी आते थे। तब उन्होंने मुनिवरश्री से सम्मेदशिखर पहाड़ की वंदना करने वाले यात्रियों की असुविधाओं के विषय में बताया और सीढ़ियों के निर्माण की भावना मुनिश्री के समक्ष व्यक्त कर दी थी।

दाणदायग-पंतिं च, पस्संतो चिय वित्तकोस-साहा।

उग्घाडिदा तत्थेव, तदा हि अट्ठाइ-रूवेणं॥281॥

मुनिश्री के प्रभाव से दान देने वालों की लंबी कतार लग गयी। उन दान दाताओं की पंक्ति इतनी बढ़ गई की वहाँ अगले दिन बैंक (PNB) की एक शाखा अस्थायी रूप से खोलनी पड़ी। और तब शुरू हो गया शाश्वत सिद्धक्षेत्र शिखरजी के विकास का कार्य।

जइण-जुवा-संगमेण, आयोजिदं पवयणं हु तत्थेव।

दो-अस्सिणुत्तरद्धे, उच्छाहेणं उल्लासेण॥282॥

दिल्ली में युवाओं के संगठन 'जैन युवा संगम' ने मुनिवरश्री के प्रवचन 2 अक्टूबर को परेड ग्राउंड में उत्साह व उल्लास से आयोजित किए।

भारद-सक्किदिं णरत्तं गंधी-दंसणं चिय देसीअ।

आगासवाणीइ ढिल्ली-केंदेण पसारिदं तं॥283॥

तब मुनिवरश्री ने भारतीय संस्कृति, मानवता और गांधी दर्शन इनका उपदेश अपार जनसमूह को दिया। यह किन्हीं मुनिराज का पहला प्रवचन था जो 4 अक्टूबर को प्रातः 7:45 पर आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से प्रसारित किया गया।

ठविद-समण-जइण-भयण-पयारग-संघेण मुणिपेरणाइ।

मग्गदंसणेण जइण-गीद-मुद्दणं कराविदं दु॥284॥

पूज्य मुनिराज की प्रेरणा से श्रमण जैन भजन प्रचारक संघ की स्थापना हुई। उन्हीं के मार्गदर्शन से जैन भजनों की रिकॉर्डिंग करायी गई।

जइण-भयण-पसारणं, मुणिवर-पेरणाए णिम्मिदाणं।

आगासवाणीइ वंदण-कज्जकमे गुरुवरम्मि॥285॥

मुनिश्री की प्रेरणा से निर्मित जैन भजनों का प्रसारण वंदना कार्यक्रम के अंतर्गत आकाशवाणी पर हर बृहस्पतिवार को होने लगा।

वस्साजोग-पच्छा हु, विहरीअ विसाल-सोहा-जत्ताइ।
सहस्सहिय-सावगेहि, णह-गुंजिदो जयकारेहिं।।286।।

दूरदंसणेण पढम-सोहाजत्ता पसारिदा मुणिस्स।
अविम्हरणीया तदा, अइधम्मपहावणाजुत्ता।।287।। (जुम्मं)

मुनिश्री का चातुर्मास पूर्ण हुआ। चातुर्मास के पश्चात् मुनिराज ने विहार किया तब हजारों श्रावकों और आकाश को गुंजायमान करने वाले जयकारों के साथ मुनिवरश्री का विहार हुआ। आश्रम से यमुना पुल तक लगभग 2 कि.मी. लंबे मार्ग पर शोभायात्रा का दृश्य अद्‌भुत ही था। सहस्रों लोगों ने मुनिवरश्री को अश्रु भरे नयनों से विदाई दी। किन्हीं दिगंबर की यह प्रथम शोभायात्रा थी जो पहली बार दूरदर्शन से प्रसारित की गई। तब वह शोभायात्रा अत्यंत धर्म-प्रभावना से युक्त और अविस्मरणीय रही।

उणवीस-सयसत्तछट्ठि-ईसवीइ मेरठे चउमासो।
कडुत्तं विणासीअ दु, मेरठ-सहर-सदर-मज्झम्मि।।288।।

मुनिश्री विद्यानंदजी का चातुर्मास 1967 में मेरठ में हुआ। मुनिश्री के प्रभाव से मेरठ शहर व मेरठ सदर के मध्य कटुता भी नष्ट हो गई।

सव्वजणिग-परिसरम्मि, मुणि-पवयणं पढमवारं हि कस्स।
जइणेदरा वि सुणीअ, ठविय तिचक्किगाचालगा वि।।289।।

मेरठ में किसी दिगंबर जैन मुनि के प्रथम बार सार्वजनिक रूप से प्रवचन हुए। जैनेतर लोग भी वहाँ मुनिराज के प्रवचन में आते थे। रिक्शा वाले भी उस समय ठहरकर मुनिश्री का प्रवचन सुना करते थे।

अणेगधम्मसहा वइसाली-महापंगणे मेरठम्मि।

जुगपरिवट्टग-चउमासो करिदो दु मुणिणाहेणं॥290॥

मेरठ के प्रसिद्ध वैशाली (भैंसाली)[1] मैदान में मुनिश्री की अनेक धर्मसभाएँ आयोजित की गईं। श्री मुनिवर ने वह युगपरिवर्तक चातुर्मास मेरठ में किया।

उणवीस-सयट्ठ-सट्ठि-वस्से बडोदे वस्साजोगो हु।

धम्मं पडि सुपेरिदा, सव्वा अहिंसा-विड्ढीए॥291॥

सन् 1968 में मुनिवरश्री का चातुर्मास बड़ौत में हुआ। उन्होंने अहिंसा की वृद्धि के लिए धर्म के प्रति सभी को प्रेरित किया।

सहारणपुरे वस्से, उणवीससयउणहत्तरे होही।

कस्स दियंबर-मुणिस्स, चउमासो पढमवारं तत्थ॥292॥

सन् 1969, सहारनपुर में मुनिराज का चातुर्मास संपन्न हुआ। वहाँ किन्हीं दिगंबर मुनिराज का चातुर्मास पहली बार हुआ था।

सिरी मुणि-सण्णिहीए, संतिपसादेण सह जणण्णाणं।

पणवीससयम-णिव्वाणुच्छवे वत्ता पारब्भो॥293॥

मुनिश्री की सन्निधि में साहू शांतिप्रसाद जी के साथ अन्य सभी लोगों की भी भगवान् महावीर स्वामी के 2500वें निर्वाण महोत्सव पर वार्ता प्रारम्भ हो गई।

सेट्ठि-भागचंद-सोणि-अजमेर-अज्झक्खत्तम्मि होज्जा।

समायसंगठणे सम्मेलणं मुणिवर-सण्णिहीइ॥294॥

---

1. जनश्रुति के अनुसार इस स्थान का नाम भगवान् महावीर स्वामी की जन्मभूमि के नाम पर वैशाली था।

सहारनपुर में मुनिवरश्री की सन्निधि में श्रेष्ठी भागचंद सोनी की अध्यक्षता में सहारनपुर समाज संगठन पर सम्मेलन भी हुआ।

जइण-जणगणणाए दु, कज्जस्स अवि पाविदो णिद्देसो।
आवीअ णूदण-कज्ज-णिद्देसस्स समायसेट्ठी।।295।।

जिसके अंतर्गत जैन जनगणना के कार्य का निर्देश भी प्राप्त हुआ। नए कार्य के निर्देश के लिए समाज श्रेष्ठी मुनिश्री के चरणों में आते थे।

उणवीससयहत्तरे, वस्से देज्ज हेमभडणागरस्स।
उसहदेवसंगीदं-पुरक्कारं मुणि-अण्णाए।।296।।
ताइ सोहपबंधस्स, सिंगारजुगे संगीद-कव्वस्स।
जइण-रायमालाणं, जइण-परंपराण पहाणो।।297।।
विहागो दु भारदीय-संगीद-साहिच्चे लिहिदं तत्थ।
पुरक्कारा हत्तरादु उणवीस-पणहत्तरंतं।।298।।
दायिदा पणवीसाण, विदूण जइण-गीद-सोहत्थीणं।
विसेसंस-दायगाण, जइण-संगीद-खेत्तम्मि चिय।।299।। (चउक्कं)

मुनिवरश्री की आज्ञा से 17 अप्रैल, 1970 में महावीर जयंती की पूर्व संध्या पर डॉ. हेम भटनागर, अध्यक्षा हिन्दी विभाग जानकी देवी महाविद्यालय, दिल्ली को उनके शोध प्रबंध 'श्रृंगार युग में संगीत काव्य' के लिए पुरस्कार दिया गया। उन्होंने अपने शोध-प्रबन्ध में लिखा कि भारतीय संगीत साहित्य में जैन रागमालाओं एवं जैन परंपराओं का प्रधान विभाग है। इस प्रथम पुरस्कार के बाद वृषभदेव संगीत पुरस्कार से सन् 1970 से लेकर 1975 तक जैन संगीत शोधार्थियों को एवं जैन संगीत क्षेत्र में विशेष योगदान देने वाले 25 विद्वानों को सम्मानित किया गया।

सत्त-मई-ऊणवीस-सयहत्तर-ईसवीए विहरिदं।
हिमालयं संघेणं, अदिसय-परिणाम-विसुद्धीइ॥300॥

7 मई 1970 को संघ ने अतिशय परिणाम विशुद्धि से हिमालय की ओर विहार किया।

विशेषार्थ–सन् 1968 में बड़ौत चातुर्मास के समय साहित्यकार श्री विशम्भर सहाय 'प्रेमी' मेरठ और बद्रीनाथ के प्रमुख रावल श्री वी. केशव नम्बूदिरी जी मुनिश्री के चरणों में पहुँचे और वार्ता करते हुए मुनिश्री से बद्रीनाथ पधारने का अनुरोध किया। बस यहीं से बन गई श्री बद्रीनाथ यात्रा की भूमिका।

एक समय साहू शांतिप्रसाद जी मुनिश्री के चरणों में पहुँचे। बातों ही बातों में मुनिश्री ने बद्रीनाथ यात्रा के अपने भाव प्रकट किए। 1969 का चातुर्मास सहारनपुर में संपन्न हुआ। चातुर्मासोपरान्त बद्रीनाथ यात्रा का निश्चय हुआ।

ववत्थाण दायित्तं, संगच्छिदं साहु-दंपत्तीए।
सड्ढा-भत्ति-भावेहि, सहारणपुर-सुसावया अवि॥301॥
सहगारी विहारम्मि लालामंगलसेण-पुण्णसजगो।
आहार-ववत्थाए, ढिल्ली-सुसावया अवि तत्थ॥302॥ (जुम्मं)

मार्ग की व्यवस्थाओं का संपूर्ण दायित्व साहू शांतिप्रसादजी व श्रीमती रमारानी जी ने अपने ऊपर स्वीकार किया। वहाँ सहारनपुर के श्रेष्ठ श्रावक भी श्रद्धा व भक्ति के साथ विहार में सहयोगी बने। लाला मंगलसेन आहार व्यवस्था में पूर्ण सजग थे। दिल्ली के श्रावक भी तब उनके साथ थे।

बद्दि-विसाले विसाल-भव्व-सागदं कुव्विदं संघस्स।
धम्महिकारीहि तत्थ, विदूहि मंदिर-समिदीए य॥303॥

धीमे-धीमे बढ़ते हुए संघ बद्रीनाथ पहुँचा। वहाँ बद्रीविशाल में धर्माधिकारी, विद्वानों और मंदिर समिति द्वारा संघ का विशाल भव्य स्वागत किया गया।

सोहाजत्ताए सह, णयिदो रज्जअदिहिगहे सो।
मई-इगतीसे बद्दिणाह-मंदिरे पविसीअ सो।।304।।

विशाल जुलूस के साथ मुनिवरश्री को राजकीय अतिथिगृह ले जाया गया। 31 मई, 1970 को मुनिश्री ने बद्रीनाथ मंदिर में प्रवेश किया।

विज्जंत-रावलेणं, दीव-पयासे पडि दंसीअ तत्थ।
पत्तेय-मंगुवंगं, विहीए ठाविद-पडिमाए।।305।।

वहाँ रावलजी विद्यमान थे। रावलजी ने वहाँ स्थापित प्रतिमा के प्रत्येक अंगोपांग को दीपक के प्रकाश में विधिपूर्वक दिखाया।

संकराइरियासणे, विराजीअ बद्दिणाह-मंदिरम्मि।
तस्स दिव्व-जत्ताए, गारविदो मुणिवर-मग्गो दु।।306।।

मुनिराज बद्रीनाथ मंदिर में शंकराचार्य के आसन पर विराजमान हुए थे। उनकी इस दिव्य यात्रा से मुनिवर मार्ग गौरवान्वित हुआ।

दियंबरत्तं णिएज्ज, सव्वुच्चासणे विज्जंत-मुणिणा।
बे-दिवसा सुपवयणं, देज्ज मंदिर-मुक्ख-सहाए।।307।।

मंदिर में मुनिश्री को सर्वोच्च आसन पर विराजमान किया गया। मुनिश्री ने मूर्ति में पूर्ण दिगंबरत्व देखा। मुनिश्री ने मंदिर के मुख्य सभागृह में दो दिन प्रवचन किए।

माणागामं पुण बारस-सहस्स-तिसय-फुड-उत्तुंगं दु।
चरणपादगादु णीलगिरिम्मि उच्चं चिय गच्छीअ।।308।।

1 जून 1970 को मुनिश्री भारत के सीमावर्ती मानागाँव गये। पुनः नीलगिरी पर चरणपादुका से भी ऊपर 12000 फुट की ऊँचाई पर गए।

बेजूणम्मि विहरीअ, सिरिणयरं पडि चिय महामुणिंदो।
बीसम-सयद्दे पढम-वारं गच्छिदं मुणिवरेण।।309।।

पुनः 2 जून 1970 को महामुनींद्र का विहार बद्रीनाथ से श्रीनगर की ओर हुआ। 20वीं शताब्दी में पहली बार किन्हीं दिगंबर मुनिराज ने बद्रीनाथ की यात्रा की।

सिरिणयरे चउमासो, ठाविदो मुणिवर-विज्जाणंदेण।
मंदिर-जिण्णुद्धारं, धम्मसाला-णिम्माणं तह।।310।।
आदि-चरण-ठावणं च, सिव-खेत्तअट्ठापदे करावीअ।
अज्जं वि ठाविदं तं, पयासिदं हु खेत्तं इत्थं।।311।। (जुम्मं)

वहाँ से विहार कर श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने श्रीनगर (1971) में चातुर्मास की स्थापना की। कसौटी पाषाण से निर्मित प्राचीन जिनमंदिर का जीर्णोद्धार एवं यात्रियों के लिए धर्मशाला का निर्माण भी कराया एवं सिद्धक्षेत्र अष्टापद में श्री आदिनाथजी के चरणों की स्थापना करायी। आज भी वे चरण बद्रीनाथ में स्थापित हैं। इस प्रकार यह अष्टापद बद्रीनाथ क्षेत्र प्रकाशित हुआ।

चउमासस्स पत्थिदं, उणवीससय बाहत्तर-वस्सस्स।
अइ-भत्तीए आगद-इंदोरणिवासीहिं तत्थ॥312॥
पत्त-मुणिवर-आसीइ, सिरिणयरे हि सव्वजणा पसण्णा।
आगदा जालापुरे, पुण अण्णाणुसारेण तेहि॥313॥
पडिवज्जिदा दु मुणिणा, ताण पत्थणा चउमासस्स।
हीरालालेण तदा, कुव्विदा विहार-सुववत्था॥314॥
ग्वालियरादो दु पुणो, इंदोरं पडि मंगल्ल-विहारो।
चोरपुराइ णिच्छिदो, ठाणं तदा सिवपुरिं पडि हु॥315॥

वहाँ श्रीनगर में इंदौर के लोग पधारे और अति भक्ति से सन् 1972 के चातुर्मास की प्रार्थना की। पुनः श्रीनगर में मुनिश्री से चर्चा कर उनका आशीष प्राप्त कर सभी लोग प्रसन्न हुए। मुनिराज ने उन सभी को श्रीनगर से विहार के बाद ज्वालापुर आने का संकेत किया। पुनः मुनिश्री की आज्ञा के अनुसार वे सभी ज्वालापुर आए। मुनिराज ने उनकी चातुर्मास की प्रार्थना स्वीकार की। तब सेठ हीरालालजी ने विहार की सभी व्यवस्थाएँ कीं। पुनः ग्वालियर से इंदौर की ओर मुनिश्री का मंगल विहार हुआ। तब इसी बीच उनके विहार का स्थान शिवपुरी की ओर चोरपुरा में निश्चित हुआ।

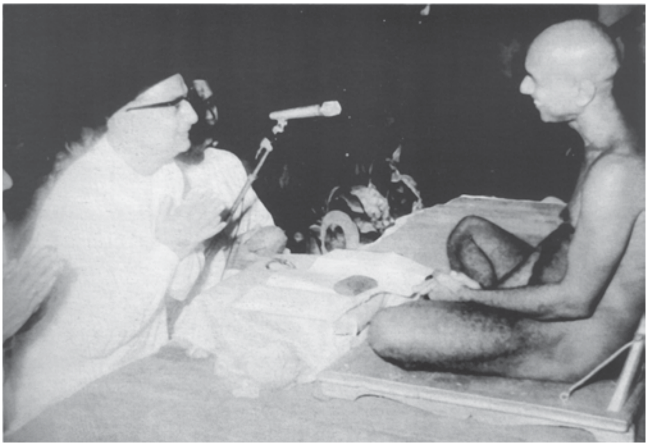

सहसा देवीअ अत्थ, णेव ठाएज्ज काए वि ठिदीए।
सव्वा विम्हदा किण्णु, विहरीअ मुणिणा सह अग्गे।।316।।

अचानक मुनिराज ने आदेश दिया कि हम किसी भी स्थिति में यहाँ नहीं रुकेंगे। मुनिश्री के शब्द सुन सभी लोग आश्चर्यचकित हो गए किंतु पुनः मुनिराज के साथ आगे विहार कर दिया।

चउगीइ ठाएज्ज पुण, सव्व-सावया सुवीअ खेदादो।
परजण-गवेसंतेहि, आगदं रत्तीइ हीरालालं।।317।।

पुनः सभी लोग चौकी पर रुक गए। थके होने के कारण सभी श्रावकों को नींद आ गई। रात्रि में कोई दूसरे लोग सेठ हीरालाल जी को ढूंढते हुए यहाँ आ गए।

किण्णु हि असमत्था ते, पहादे रक्खिदो आरक्खगेहि।
णेदो सो इंदोरं, णादो जणट्ठ-वहो चोरे।।318।।

किन्तु वे लोग उन्हें ढूंढने में असमर्थ रहे। (जब रात में सब लोग सो रहे थे तब कुछ अजनबी आए और उन्होंने पंडितजी को जगाकर उनसे सेठ हीरालाल जी के बारे में पूछा। पंडितजी ने नींद में ही कहा–'आये तो थे लेकिन अब पता नहीं कहाँ हैं?' वे अजनबी चले गए।) सुबह शीघ्रता से पुलिस दल आया और सेठजी को सुरक्षित इंदौर ले गया। बाद में सुनने में आया कि चोरपुरा में आठ आदमियों का कत्ल हुआ।

अपुव्व-भविस्स-दिट्ठा-मुणिणा रुंधिदा अप्पिय-घडणा दु।
होंति णिग्गंथ-तवसी, जम्हा लोयमंगलगारी।।319।।

अपूर्व भविष्यदृष्टा मुनिराज ने इस अप्रिय घटना को रोक दिया। क्योंकि निर्ग्रन्थ तपस्वी मुनिराज लोकमंगलकारी होते हैं।

पहावी-पवयणेहिं, लक्खजइण-जइणेदरागरिसिदा।

णदा मुणिवर-चरणेसु सहस्सा सणादणी-संता।।320।।

इंदौर में मुनिश्री के प्रभावकारी प्रवचनों से लाखों जैन-जैनेतर आकर्षित हुए। हजारों सनातनी संत मुनिश्री के चरणों में नतमस्तक हो गए।

राम-जीवण-चरित्ते, रामरज्जे पवयणं इंदोरे।

एगलक्खाहिय-जणा उवट्ठिदा तदा भत्तीए।।321।।

जब मुनिश्री ने इंदौर में भगवान् राम के जीवन चरित्र व रामराज्य पर प्रवचन दिए तब एक लाख से अधिक लोग वहाँ भक्तिपूर्वक उपस्थित थे।

णायालयुच्च-विज्जालय-महविज्जालय-कारागहेसु।

संगठणेसुं मउसुल-सिक्ख-हरिजणाइ-समाजेसु।।322।।

ववसायाइ-खेत्तेसु, होज्ज पवयणं ताण णिवेदणेण।

चिगिच्छियाहिवत्ताण, विदु-पदिट्ठिद-जणादीणं पि।।323।।

उच्चन्यायालय, महाविद्यालय, विद्यालय, कारागृह, विभिन्न संगठन, मुस्लिम, सिक्ख समाज, हरिजनादि समाजों में एवं व्यवसायादि क्षेत्रों में उन डॉक्टर्स, वकील, विद्वान्, प्रतिष्ठित जन आदि के निवेदन से मुनिश्री के प्रवचन हुए।

वेण्हव-विज्जालयस्स, मंडवे लक्खहिय-जणुवट्ठिदीइ।
समण्णय-वच्छल्लाइ-भाव-ठावग-पवयण-पहावी॥324॥

वैष्णव विद्यालय के प्रांगण में मुनिश्री के प्रवचन में एक लाख से भी अधिक लोग उपस्थित थे। मुनिश्री के समन्वयता व वात्सल्य आदि भावों की स्थापना करने वाले प्रवचन अत्यंत प्रभावी थे। अर्थात् लोगों के हृदय पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा।

पणवीससयम-णिव्वाणुच्छवस्स सुजोयणा पारब्भा।
आवडीअ चारुकित्ति-भट्टारगो अवि वत्ताए॥325॥
गोम्मडेसरम्मि बाहुबली-महामत्थगाहिसेगस्स हु।
होज्जा तदा वस्सम्मि, उणवीससय-उणहत्तरम्मि॥326॥
किण्णु उणवीससयेग-असीदि वस्से चिय सहस्सवस्सा।
पुण्णा पट्ठिाइ तं, सुणिण्णयो तदाहिसेगस्स॥327॥ (तिगं)

भगवान् महावीर स्वामी के 2500वें निर्वाणोत्सव की योजनाएँ बनना प्रारंभ हो गई। उस समय मुनिश्री के चरणों में श्रवणबेलगोला के युवा भट्टारक चारुकीर्तिजी भी गोम्मटेश श्रवणबेलगोला में श्री बाहुबली भगवान् के महामस्तकाभिषेक की वार्ता के लिए आए। 12 वर्ष के अंतराल में होने वाला श्रीबाहुबली भगवान् का महामस्तकाभिषेक नियमानुसार 1979 में होना चाहिए था परन्तु 1981 में प्रतिमा की प्रतिष्ठा व निर्माण के 1000 वर्ष पूर्ण हो रहे थे। सब बातों पर विचार-विमर्श कर मुनिश्री ने 1981 में ही सहस्राब्दी महोत्सव के साथ महामस्तकाभिषेक का निर्णय किया।

हिंदि-भासं सिक्खिदुं, अणुरुंधिदं चिय भट्टारगेणं।

सावगेहिं ववत्था, कुव्विदा मुणि-णिद्देसेणं।।328।।

तब चारुकीर्ति भट्टारक ने हिंदी भाषा सीखने के लिए मुनिश्री से अनुरोध किया। मुनिश्री ने समाज के प्रतिष्ठित लोगों के समक्ष भट्टारकजी की भावना व्यक्त की। तब मुनिश्री के निर्देश से श्रावकों ने भट्टारकजी के हिन्दी सीखने की व्यवस्था की।

चउमासो संपण्णो, अच्चंत-जिणधम्म-पहावणाए।

सुहदाणंदेणं सह, जत्थ समणो तत्थ मंगलं।।329।।

इस प्रकार अत्यंत जिनधर्म की प्रभावना के साथ सुख व आनंदपूर्वक चातुर्मास संपन्न हुआ। जहाँ श्रमण हैं, वहाँ मंगल है।

पच्छा इंदोरादो, आवंतेणं महावीर-खेत्तं।

मुणि-विज्जाणंदेणं, जिणधम्मपहावणाइ।।330।।

समायब्भुदयस्स तह, ठावणा विस्सधम्मण्णासस्स।

किदाणि बहु-कज्जाइं, साहित्तसिजग-पुरक्कारस्स।।331।।

पश्चात् इंदौर से अतिशय क्षेत्र महावीरजी आते हुए श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने जिनधर्म की प्रभावना और समाज के अभ्युदय के लिए विश्वधर्म ट्रस्ट की स्थापना की एवं धर्म प्रभावना व साहित्यकारों के पुरस्कार के बहुत से कार्य किए।

मुत्तिदूदस्स लेहग-वीरेंद-जइणो पहुच्चीअ तत्थ।

सिरिमहावीर-खेत्तं, एगंतम्मि वत्ता होही।।332।।

यहाँ अतिशय क्षेत्र महावीरजी में जब मुनिश्री विराजमान थे तब मुक्तिदूत के लेखक वीरेन्द्र जैन वहाँ पहुँचे। उनकी मुनिश्री से एकांत में वार्ता हुई।

महावीरुवण्णासं लिहिदुं भासिदं चिय मुणिवरेणं।

ठाविद-वीर-णिव्वाण-गंथ-पगासण-समिदीए हु।।333।।

मुनिश्री ने उनके मुक्तिदूत नामक महाकाव्य की प्रशंसा की एवं उनको महावीर उपन्यास उन्हीं के द्वारा स्थापित वीर निर्वाण ग्रंथ प्रकाशन समिति के तत्त्वाधान में लिखने के लिए कहा।

दीह-पवासे मुणिस्स, महावीरखेत्ते दंसणत्थीण।

बहुवेगरेलयाणं, वड्ढिद-संखं च पस्संतो।।334।।

ठविदुं तदा देवीअ, सासणं मुणि-दंसण-सुविहाए दु।

जम्हा मुणि-दंसणेण, खयंति अहकम्माणि णियमा।।335।। (जुम्मं)

महावीरजी अतिशय क्षेत्र पर मुनिश्री के दीर्घ प्रवास के समय दर्शनार्थियों की संख्या बहुत हो गई थी। भक्तों की इस बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए सरकार ने मुनिश्री के दर्शन की सुविधा के लिए एक्सप्रेस रेलों को भी यहाँ ठहरने के लिए आदेश दिया। क्योंकि मुनि दर्शन से पापकर्मों का क्षय नियम से होता है।

उणवीस-सय-बाहत्तर-वस्से मुणि-चउमासो होज्ज तत्थ।

चालीस-दिवसंतं दु, मउण-साहणा कुव्विदा अवि।।336।।

सन् 1972 में मुनिश्री का चातुर्मास वहाँ महावीरजी में हुआ था। तब मुनिश्री ने चालीस दिन तक मौन साधना भी की।

विहरीअ मेरठं पडि, मुणिंदो आगमिस्स-चउमासस्स।

मथुराचउरासीए, विज्जंतमुणिवरस्स णियडे।।337।।

देसभूसण-सूरिस्स, पत्तं आहरीअ सुमेरचंदो।

मेरठ-गमण-पुव्वम्मि, ढिल्लीए चिय मिलेज्जा सो।।338।।

सव्व-संपदायाणं, विसालसहा चिय साहु-सेट्ठीणं।
आवसियो उवट्ठिदी, तुज्झ ढिल्ली-वासो दु तहा।।339।।
महावीर-णिव्वाणुच्छवस्स जोयणा करेज्जा जस्सिं।
गुरु-अण्णाए समणो, परिवट्टीअ णिय-कज्जकमा।।340।। (चउक्कं)

पश्चात् आगामी चातुर्मास के लिए मुनिराज ने मेरठ नगर की ओर विहार किया। मेरठ जाते हुए बीच में मथुरा चौरासी पड़ा। कुछ समय के लिए मुनिश्री यहाँ पर ठहरे। मथुरा चौरासी में विद्यमान श्री विद्यानंद मुनिराज के निकट पं. सुमेरचंद जी उनके गुरु आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज का पत्र लेकर आए। उस पत्र में लिखा था कि मेरठ जाने के पूर्व वे उनसे दिल्ली में मिलें। आगे संदेशा था कि दिल्ली में सभी संप्रदायों के साधुओं और समाज श्रेष्ठियों की विशाल सभा का आयोजन हो रहा है। उस सभा में भगवान् महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव की योजनाएँ तैयार की जाएँगी। उसमें आपकी उपस्थिति और दिल्ली निवास आवश्यक है। गुरु की आज्ञा प्राप्त कर मुनिश्री ने अपने कार्यक्रम परिवर्तित कर दिए।

णव-वास-पच्छा सिस्स-गुरु-मिलणं कम्मो-धम्मसालाइ।
ढिल्लीइ विसाल-सहायोजिदा रत्त-दुग्ग-हुत्ते।।341।।

9 साल बाद 1973 में गुरु-शिष्य का मिलन कम्मोजी की धर्मशाला दिल्ली में हुआ। जिस दिन के लिए गुरुदेव ने मुनिश्री को याद किया था वह दिन भी शीघ्र आ गया। दिल्ली के लाल किले के सामने परेड ग्राउंड में विशाल सभा आयोजित की गई।

उच्छवज्झक्खा तस्स, सुपहाणमंती इंदिरागंधी।
सहाए केंदीय-सिक्खा-मंती पडिणिहि-रूवेण॥342॥

उस विशेष उत्सव की राष्ट्रीय समिति की अध्यक्षा प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी थीं। सभा में उनके प्रतिनिधि के रूप में केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री डी.पी. यादव उपस्थित थे।

सव्व-मंचासीणाहि, सिदंबर-तुलसी-सुसीलादीहिं।
सेट्ठीहि वि णिवेदिदं, विज्जाणंद-मुणि-पवयणस्स॥343॥

उस समय श्वेतांबर मुनि आचार्य तुलसी जी, आचार्य सुशील मुनि आदि भी मंचासीन थे। इन सभी साधुओं ने एवं श्रेष्ठीवर्गों ने श्री विद्यानंदजी मुनिराज के प्रवचन के लिए निवेदन किया। [दरअसल उस दिन सभा का शुभारंभ यादवजी ने किया। सरकारी योजनाओं को बताते हुए उन्होंने जैन समाज के धनाढ्य होने की चर्चा भी एक आलोचक की दृष्टि से की, जिससे उपस्थित समाजश्रेष्ठियों और त्यागीवर्ग के मन पर आघात लगा।

सभा के संचालक के पास त्यागीवर्ग व श्रेष्ठियों की ओर से पर्चियाँ आने लगीं कि इनके बाद श्री विद्यानंदजी मुनिराज का प्रवचन कराएँ।]

सव्व-णिवेदणे समण-विज्जाणंदेणं उवदेसिदा हु।
पाईणत्तं च जइण-धम्मस्स जइण-सक्किदीए॥344॥

सबके निवेदन पर श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने जैन धर्म की प्राचीनता और जैन संस्कृति का उपदेश दिया।

अडदालीस-सहस्सा, पोत्थिया पढिदा विज्जाणंदेण।
इदिवत्त-मुग्घाडिदं, जइणप्पदा सागाहारो॥345॥

श्री विद्यानंद मुनिराज अब तक 48000 पुस्तकें पढ़ चुके थे। मुनिश्री ने जैनों का इतिहास उद्घाटित किया और बताया कि विश्व को यह शाकाहार जैनों की ही देन है।

वयं सिहेज्ज देसस्स, कोडी-पयाए सहजोगं।
सा अम्हेहि सह सया, धम्मिगा कत्तव्वणिट्ठा य॥346॥
वयं संगच्छेज्जा, पया-सहजोगं किण्णु सासणस्स।
सत्थ-भूमिगाइ तस्स, साहुवादं देज्ज भावेहि॥347॥ (जुम्मं)

उन्होंने कहा हम देश की करोड़ों की प्रजा का सहयोग चाहते हैं। वह जनता सदा हमारे साथ है। भारत की जनता धार्मिक और कर्त्तव्यनिष्ठ है। हम प्रजा का सहयोग स्वीकार करेंगे किन्तु शासन की स्वस्थ भूमिका के लिए उसे शुभ भावपूर्वक साधुवाद देंगे।

ण मेत्तं पुण्ण-देसं, णवरि संसारं दु उवदेसंतो।
णव-मग्ग-णिद्देसणं, देज्ज तस्स णव-जागरियाइ॥348॥

श्री मुनिवर ने उपदेश देते हुए इस पूरे देश को ही नहीं अपितु वर्तमान विश्व को ही, उसकी नव जागृति के लिए नवीन मार्ग का निर्देशन दिया।

[कार्यक्रम के पश्चात् मुनिश्री ने चातुर्मास के लिए मेरठ की ओर विहार कर दिया।]

कुव्विदा दु सेदंबर-दियंबर-समाय-विवाद-समत्ती।
हत्थिणायपुर-तित्थे, मेरठ-चउमासम्मि मुणिणा।।349।।

1973 के मेरठ चातुर्मास में मुनिराज ने हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र पर श्वेतांबर व दिगंबर समाज के बीच चल रहे विवाद को समाप्त कर दिया।

णाण-वड्ढणुच्छवस्स, उवलक्खे धम्मसहायोजिदा हु।
रायहाणीए ऊणवीससयचउहत्तर-वस्से।।350।।

चातुर्मासोपरान्त विभिन्न स्थानों पर धर्म प्रभावना करते हुए मुनिश्री अप्रैल 1974 में भारत की राजधानी नई दिल्ली पहुँचे। 22 अप्रैल को वहाँ ज्ञानवर्धनोत्सव के उपलक्ष्य में एक धर्मसभा आयोजित की गई।

णिव्वाणमहुच्छवम्मि, लोयसुकल्लाणकारग-वीरस्स।
एगत्तेणं सव्वा, समप्पिदा होज्ज सुभावेहि।।351।।

मुनिश्री ने कहा कि लोककल्याणकारक महावीर स्वामी के निर्वाण महोत्सव पर सभी लोग एकता व अखंडता से शुभ भावपूर्वक समर्पित रहेंगे।

केंदीय-सत्थ-मंती, रत्तदुग्गे-मुक्ख-अदिहि-रूवम्मि।
भासीअ संतोसो दु, इह देसे एरिसो संतो॥352॥

इस अवसर पर केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री डॉ. कर्णसिंह लालकिला के मैदान में मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। मुनिश्री की ओजस्विता से परिचित मंत्रीजी ने सभा में कहा कि मुनि विद्यानंदजी जैसे संत इस देश में हैं, इसी से संतोष है।

ठाणं सोहकज्जस्स, वियारिदुं पागदाइ-विसयेसुं।
रायहाणीइ कहिदं, विदूहिं चउहत्तर-वस्से॥353॥

सन् 1974 की बात है। यह सर्व विदित है कि मुनिश्री विद्वानों को विशेष वात्सल्य व सम्मान प्रदान करते थे। विद्वानों ने मुनिश्री से भारत की राजधानी दिल्ली में प्राकृत आदि विषयों पर शोधकार्य के लिए स्थान के विचार करने के लिए कहा।

णिव्वाणुच्छववसरे, कुंदकुंदभारदीइ किदो।
भूमि-कयो विसेस-सहगारी णाणग-रामो तदा॥354॥

भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाणोत्सव के शुभ अवसर पर कुंदकुंद भारती के लिए भूमि क्रय की गई। भूमि क्रय करने में तब विशेष सहयोगी श्री नानक राम जौहरी जी रहे।

[जैन बालाश्रम दरियागंज दिल्ली में दिगंबर साधु परम पूज्य आचार्यश्री धर्मसागरजी, भारत गौरव आचार्यश्री देशभूषणजी और पूज्य मुनिश्री विद्यानंदजी तथा श्वेतांबर साधु आचार्य तुलसी जी, मुनि सुशीलजी आदि अनेक साधु, साध्वी व समाज श्रेष्ठियों की उपस्थिति में कई बैठकें निर्वाण महोत्सव के संबंध में हुईं।]

णिव्वाणमहुच्छवस्स, सहासु कहिदं विज्जाणंदेणं।
एग-पणवण्णी धया, पदीगो धम्मचक्कं गंथो।।355।।

निर्वाण महोत्सव की सभाओं में श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने कहा कि जैन धर्म का एक पंचरंगी ध्वज, एक प्रतीक, एक ग्रंथ और धर्म चक्र होना चाहिए।

सव्वेहि-मणुमण्णिदं, संगच्छिदं णिग्गंथ-मुणिवयणं।
सुणिच्छिदो दु सहाए, सव्वकज्जकमो उच्छवस्स।।356।।

सभी ने निर्ग्रंथ मुनिराज के वचनों की अनुमोदना की और उन्हें स्वीकार किया। सभा में निर्वाणोत्सव के सभी कार्यक्रम निश्चित किये गए।

तेरसणवंबरम्मि य, णिग्गंथपरिसदो चउदसम्मि चिय।
गोदम-सुमदि-दिणं पणरसे समणसक्किदि-परिसदो।।357।।
सोलसे भव्वसोहा-जत्ता रामलीला-परिसरम्मि य।
धम्मचक्कवट्टण-मिंदिरा-गंधीए सत्तरसे।।358।।
अट्ठदस-णवंबरादु, बीसंतं पवयणं च साहूणं।
रत्तदुग्गपरिसरम्मि, उब्बोहणं अवि णेदूणं।।359।। (तिगं)

13 नवंबर 1974 को निर्ग्रन्थ परिषद, 14 नवंबर को गौतम गणधर स्मृति दिवस, 15 नवंबर को श्रमण संस्कृति परिषद, 16 नवंबर को भव्य

शोभायात्रा, 17 नवंबर को रामलीला ग्राउण्ड दिल्ली में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी जी के द्वारा धर्मचक्र प्रवर्तन, 18 नवंबर से 20 नवंबर तक लाल किला के मैदान में साधुओं के मंगल प्रवचन और राजनेताओं के उद्बोधन, इस प्रकार ये सभी कार्यक्रम निश्चित हुए।

भव्वजत्ता-उच्छवो, लक्खजणपूरिदा उहय-भागम्मि।
पहस्स तादु तिगुणिदा, जणा सत्तट्ठ-घडिगंतं च।।360।।

16 नवंबर, 1974 को भव्य शोभायात्रा महोत्सव हुआ जिसमें संपूर्ण दिल्ली महावीरमय हो गयी। इस शोभायात्रा में लगभग एक लाख लोग उपस्थित रहे। उससे भी तिगुने लोग सड़क के दोनों ओर सात-आठ घंटे तक जमे रहे।

सययं पुप्फविट्टी दु, णारी पंचवण्णिसाडीजुदा य।
विविह-चित्तावलिजुदा, आविअज्झा व सज्जिदा सा।।361।।

उस जुलूस में लगातार पुष्पवर्षा होती रही, नारियाँ पंचरंगी साड़ियाँ पहनी हुई थीं। यात्रा विविध रंगबिरंगी झाँकियों से युक्त थी। वह पूरी शोभायात्रा दुल्हन के समान सजी हुई थी।

ण मेत्तं जइणा णवरि, जइणेदरा अवि उच्छाहिदा तं।
णियावणं पिहाएत्तु, सम्मिलिदा सोहाजत्ताइ।।362।।

इस जुलूस के लिए न मात्र जैन अपितु जैनेतर भी अति उत्साहित थे इसलिए अपनी-अपनी दुकान बंदकर सभी लोग शोभायात्रा में अत्यंत उत्साह के साथ सम्मिलित हुए।

तियकोस-दीह-जत्ता, पारब्भीअ दसवायण-पहादे।
जत्ताइ अंत-भागो, पहुच्चीअ सत्तवायणे दु।।363।।

यह जुलूस तीन कोस लंबा था। यह जुलूस सुबह 10 बजे प्रारंभ हुआ और इस यात्रा का अंतिम छोर शाम को लगभग 7 बजे लालकिला पहुँचा।

उसचक्कं वट्टंतो, अपरिग्गहं जीवणम्मि धरेज्जा।
गंधी कहीअ जम्हा, गंथो सया किलेस-मूलं।।364।।

17 नवंबर को रामलीला मैदान में धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हुए श्रीमती इन्दिरागांधी जी ने कहा कि भगवान् महावीर स्वामी का अपरिग्रह अपने जीवन में धारण करना चाहिए क्योंकि परिग्रह सदैव क्लेश का मूल है।

विस्ससंतिठावणा दु, सक्को महावीर-मूलमंतेण।
अहिंसा-असंगाणं, थिरा सया अज्झप्प-मग्गे।।365।।

उन्होंने जोर देकर कहा विश्वशांति की स्थापना भगवान् महावीर स्वामी के अहिंसा व अपरिग्रह के मूलमंत्र से ही शक्य है। सुख-शांति के लिए लोग सदैव अध्यात्म मार्ग पर स्थिर रहें।

ढिल्ली-रायगिहादो, इंदोर-सवणबेलगोलादो य।
णिव्वाणुच्छव-पव्वे, पवट्टणं दु धम्मचक्कस्स।।366।।

भगवान् महावीर स्वामी के 2500वें निर्वाणोत्सव के पावन पर्व पर दिल्ली, राजगृह, इंदौर व श्रवणबेलगोला इन चार स्थानों से धर्मचक्र का प्रवर्तन हुआ।

तदा दहेज-कुरीदिं, पणासेदुं सामाइग-दोसं दु।
आहविदं मुणिणा जं, कुरीदी समायस्स कुट्ठं व।।367।।

इस अवसर पर मुनिश्री ने दहेज की कुरीति को खत्म करने का आह्वान किया। क्योंकि कुरीति समाज के लिए कुष्ठ रोग के समान है।

आयंस-पाढगो

(आदर्श पाठक)

मग्गसिर-वदि-दसमीइ, उणवीस-सय-चउहत्तरे वस्से।
वीर-तव-कल्लाणम्मि, गोम्मडेस-पदिट्ठा-दिवसे।।368।।

सूरि-देसभूसणेण, पदायिय उवज्झायपदं मुणिस्स।
पायो लुआ वस्सादु, सुजीविदा पद-परंपरा दु।।369।।

मंगसिर कृष्ण दशमी (8 दिसंबर) के दिन वर्ष 1974 में, उसी दिन श्रवणबेलगोला में गोम्मटेश्वर बाहुबली भगवान् की प्रतिष्ठा हुई थी, भगवान् महावीर स्वामी का दीक्षा कल्याणक भी था, तब भारत गौरव आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज ने मुनि श्रीविद्यानंदजी को उपाध्याय पद प्रदान किया। उपाध्याय पद प्रदान कर वर्षों से लुप्त प्राय: पद परंपरा को पुनर्जीवित कर दिया। मुनिश्री विद्यानंदजी 20वीं शताब्दी के प्रथम उपाध्याय बने।

जत्थ जत्थ गदं मए, तत्थ तत्थ जिणधम्मपहावणा दु।
सुणिदा दु मुणिणा किदा, संपत्तो सुजोग्गसिस्सो दु।।370।।
तस्स दंसणं णाणं, पस्संतो पाढग-पदासीणो दु।
किदो मए हरिसेणं, एवंविह सूरिणा कहिदं।।371।। (जुम्मं)

इस अवसर पर आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज ने इस प्रकार कहा कि मैं जहाँ-जहाँ भी गया, वहाँ-वहाँ मैंने मुनि विद्यानंद के द्वारा की गई जिनधर्म प्रभावना को सुना। मैंने एक सुयोग्य शिष्य प्राप्त किया, उनके निर्मल दर्शन व अपार ज्ञान को देखते हुए मैंने अति हर्षपूर्वक इन्हें उपाध्याय पद पर आसीन किया है।

अइ-सोहग्गवंतो दु, लहिदो गुरु-देसभूसणोव्व मए।
अच्चंताणंदेणं संपण्णो आयोजणं तं।।372।।

पुनः आचार्य गुरुदेव के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए पूज्य श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने कहा कि मैं अति सौभाग्यशाली हूँ जो मैंने आचार्यश्री देशभूषण ाजी के समान गुरु को प्राप्त किया। यह आयोजन महावीर वाटिका, दरियागंज में अति आनंद के साथ संपन्न हुआ।

पाढग-परमेट्ठीणं, पणवीस-मूलगुणा विसेसेणं।
एयारसंग-चउदस-पुव्वज्झेदू वंदणीया।।373।।

उपाध्याय परमेष्ठियों के विशेष रूप से 25 मूलगुण होते हैं। 11 अंग व 14 पूर्व के अध्येता सदा वंदनीय हैं।

बारसंगाणं अंस-रूव-णाणं गहेज्ज जह-सत्तीइ।
जिणसासण-पहावणा, करिदा सण्णाणेण तेणं।।374।।

उन्होंने यथाशक्ति द्वादशांग का अंग रूप ज्ञान ग्रहण किया। उन उपाध्याय ने सम्यक् ज्ञान के द्वारा जिनशासन की प्रभावना की।

आयारं सुत्तकिदं, ठाण-समवाय-वक्खापण्णत्ती।

णादकहा य उवासग-अज्झयणं अंतयडदसं च।।375।।

अणुत्तरदसं च पण्हवागरणं तहा विवागसुत्तं दु।

कहिद-मेयारसंगं, भणिदं सव्वण्हु-जिणवरेहि।।376।। (जुम्मं)

आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृकथा, उपासकाध्ययन, अंतःकृद्दशांग, अनुत्तरोपपादिकदशांग, प्रश्नव्याकरणांग, विपाकसूत्रांग ये ग्यारह अंग सर्वज्ञ जिनवरों के द्वारा कहे गए हैं।

बारसम-दिट्ठिवादं, पंचविहं तहा जिणवरुद्दिट्ठं।

परिकम्मं सुत्तं, पढमणुओग-पुव्वगद-चूलिगा।।377।।

जिनेंद्रप्रभु के द्वारा बारहवाँ अंग दृष्टिवाद निर्दिष्ट किया गया है। यह दृष्टिवाद अंग पाँच प्रकार का है—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका।

परिकम्मं पंचविहं, सूर-चंद-जंबुदीव-पण्णत्ती।

दीवसिंधुपण्णत्ती, वक्खारपण्णत्ती जाणेज्ज।।378।।

परिकर्म पाँच प्रकार का जानना चाहिए—सूर्यप्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति, जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति तथा व्याख्याप्रज्ञप्ति।

पंचविहा चूलिगा दु, जलगदा थलगदा आयासगदा।

माया-रूवगदा जिण-पणीद-गंथेहि विण्णेया।।379।।

आप्त-प्रणीत ग्रंथों से चूलिका पाँच प्रकार की जाननी चाहिए—जलगता, स्थलगता, आकाशगता, मायागता और रूपगता।

उप्पादपुव्व-मग्गायणीय-वीरियत्थि-णत्थि-पवादं।

णाण-सच्चप्पवादं, आदा तह कम्मप्पवादं।।380।।

पच्चक्खाणं विज्जाणुवादं कल्लाण-पाणावायं।

किरियाविसालं लोय-बिंदुसारं चउदसपुव्वं।।381।।

गहिदुं अपुव्वणाणं, अज्झयेज्जा सव्वंगं पुव्वं च।

जहासत्तीए जहा-कमेण मुणी विज्जाणंदो।।382।। (तिगं)

उत्पाद, अग्रायणीय, वीर्यानुप्रवाद, अस्ति-नास्ति-प्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुप्रवाद, कल्याणवाद, प्राणावाद, क्रियाविशाल और लोकबिंदुसार इन चौदह पूर्व रूप अपूर्वज्ञान को ग्रहण करने के लिए श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने यथाशक्ति यथाक्रम से वर्तमान में संप्राप्त सर्व अंगों व पूर्वों का अध्ययन किया।

पाढग-विज्जाणंदो, पढीअ चिंतीअ उवदिसीअ तस्स।

सारं च चेयणाए, पयासेदुं चिय अण्णगुणा।।383।।

उपाध्याय श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने चेतना के अन्य गुणों को प्रकाशित करने के लिए उनके सार को पढ़ा, चिंतन किया और उपदेश दिया।

वेरग्गुप्पत्तीए, जणणीव बारसणुवेक्खा तेणं।

पडिसंचिक्खिदा तदा, णव-वेरग्ग-संविड्ढीए।।384।।

वैराग्य की उत्पत्ति के लिए द्वादश अनुप्रेक्षाएँ जननी के समान हैं। उन मुनिराज ने नव वैराग्य की वृद्धि के लिए उन बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतन किया।

सव्वदव्वा अणिच्चा, सव्वदा पज्जायाणुसारेणं।

दव्वट्ठिग-णयेणं च, सव्वा णिच्चा मुणेदव्वा।।385।।

सभी द्रव्य पर्याय के अनुसार सर्वदा अनित्य हैं, द्रव्यार्थिक नय से वे सभी द्रव्य नित्य जानने चाहिए।

जं किंचिवि पस्सेमि दु, लोए पोग्गल-दव्वा सव्वा ते।

सगकालाणुसारेण, उहट्टंति सव्वपज्जाया।।386।।

इस लोक में जो कुछ भी देखता हूँ वे सभी पुद्गल द्रव्य हैं। द्रव्यों की सभी पर्यायें अपने समय के अनुसार नियम से नष्ट हो जाती हैं।

उस्सिक्कंति सरीरं, भूवदी अहिराया मंडलीगा।

चक्की य अद्धचक्की, लोगदिसायी तित्थयरो वि।।387।।

राजा, अधिराजा, मंडलीक, चक्रवर्ती, अर्द्धचक्रवर्ती व लोकातिशायी तीर्थंकर भी अपने शरीर का परित्याग करते हैं।

चक्किस्स णवणिही चउदसरयणं बलि-आदीणं रयणं।

कामदेवस्स देहो, किंचिवि णो सस्सदो लोए।।388।।

चक्रवर्ती की नौ निधि, चौदह रत्न व बलभद्र आदि के रत्न, कामदेव की देह कुछ भी लोक में शाश्वत नहीं है।

इंदस्स महाविहवो, अलद्धो अण्णजीवेहिं लोए।

पुण्णे खीणे खयदे, सो वि णेव सस्सदो कया वि।।389।।

इंद्र का महावैभव लोक में अन्य जीवों के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता अर्थात् उनके समान वैभव अन्य जीवों के नहीं होता। पुण्य क्षीण होने पर वह वैभव भी नष्ट हो जाता है। वह कदापि शाश्वत नहीं है।

इट्ठाणिट्ठवत्थूणि, लहदे पुण्ण-पाव-कम्मुदयादो।

कम्मे खीणे खयंति, वत्थूणि णियमेणं लोए।।390।।

जीव पुण्य व पाप-कर्म के उदय से इष्ट व अनिष्ट वस्तुओं को प्राप्त करता है। और कर्म के क्षीण होने पर लोक में वस्तुएँ नियम से नष्ट हो जाती हैं।

अहो भव्वुल्लो सगप्पस्स सहावो सासयो हु णेयो।
ण कुणदु हस्स-विसादं, रायदोसं वि णिव्वाणस्स।।391।।

अहो भव्यजीव! अपनी आत्मा का स्वभाव ही शाश्वत जानना चाहिए। मोक्ष के लिए हर्ष-विषाद व राग-द्वेष मत करो।

अणिच्चभावणादिं च, जाणदि जहत्थरूवेण जो मणदि।
सीददि भवे सो ताइ, णाणेण विणा अणंतदुहं।।392।।

जो जीव अनित्य भावना आदि को जानता है, यथार्थरूप से मानता है वह संसार में दुःखी नहीं होता। उस अनुप्रेक्षा के ज्ञान के बिना जीव अनंत दुःख ही प्राप्त करता है।

लोए छद्दव्वा बहु-जदणेहिं णेव णस्सदि एगो वि।
दव्वत्तादी दु अण्ण-सामण्ण-विसेसगुणा ताण।।393।।

लोक में छह द्रव्य हैं। बहुत यत्न करने पर भी एक भी द्रव्य को नष्ट नहीं किया जा सकता। उन द्रव्य के द्रव्यत्व आदि अन्य सामान्य गुण व विशेष गुण भी हैं।

दव्वस्स गुण-णाणेण, विणा ण सक्को सोहिदुं सगप्पं।
बीयेणं विणा कहं, फलाइ-सहिद-रुक्खुप्पत्ती।।394।।

द्रव्य के गुणों के ज्ञान के बिना कोई भी जीव अपनी आत्मा को शुद्ध करने में समर्थ नहीं होता। उचित ही तो है—बीज के बिना फल आदि से सहित वृक्ष की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती। इत्यादि प्रकार से मुनिराज अनित्य भावना का चिंतन किया करते थे।

विणा सगपुण्णेणं दु, को वि णेव कस्स वि सरणं लोए।
चिंतणेणं सह मुणी, उवदिसीअ कल्लाणत्थं दु।।395।।

अपने पुण्य के बिना इस संसार में कोई भी किसी के लिए शरण नहीं है। इस चिंतन के साथ वे मुनिराज कल्याण के लिए अशरण भावना का उपदेश दिया करते थे।

पुण्णं णेव सस्सदं, हवेदि पावेणं पीडिदं तं पि।

जह णो सस्सद-दिवसो, णो रत्ती सस्सदा कया वि॥396॥

पुण्य शाश्वत नहीं है यह भी पाप से पीड़ित होता है। जिस प्रकार दिन शाश्वत नहीं है, रात्रि शाश्वत नहीं है उसी प्रकार पुण्य भी शाश्वत नहीं है।

पणपरमेट्ठी ताणं, बिंबाणि जिणधम्मो जिणवयणाणि।

परमट्ठेणं सरणं, अप्पकल्लाणत्थं सया हि॥397॥

आत्मकल्याण के लिए पंच परमेष्ठी, उन पंचपरमेष्ठी के बिंब, जिनधर्म, जिनवचन सदा ही परमार्थ से शरण हैं।

गहदि जो वि सद्दिट्ठी, जिणगुरुसरणं णेव ववहारम्मि।

सो ण लहदि परमट्ठं, कज्जलावेदि भवे भट्टो॥398॥

जो कोई भी सम्यग्दृष्टि व्यवहार में जिनेन्द्रप्रभु की व निर्ग्रन्थ गुरु की शरण ग्रहण नहीं करता वह परमार्थ को भी प्राप्त नहीं करता। वह भ्रष्ट संसार में डूब जाता है।

णिच्छयसरणं लहिदुं, पढमो गहेज्ज ववहारसरणं दु।

जम्हा कारणं विणा, णेव दु कज्जसिद्धी कया वि॥399॥

निश्चय शरण को प्राप्त करने के लिए पहले व्यवहार शरण को ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि कारण के बिना कार्य की सिद्धि कदापि नहीं होती।

णाम-धारग-पंडिदा, जे के वि सद्द-उम्मादी खलु ते।

बुड्डंति भवसायरे, सयं मज्जावंति अण्णा वि॥400॥

जो कोई भी शब्दोन्मादी, नाम धारक पंडित हैं वे स्वयं भी संसार सागर में डूबते हैं और अन्यों को भी डुबा देते हैं।

उहय-णयाणुसारेण, चलेज्ज सिवमग्गे सगसत्तीए।
सावयेहि सगधम्मो, पालिदव्वो खलु समणेहिं।।401।।

उभय नय अर्थात् व्यवहार व निश्चय नय के अनुसार अपनी शक्ति से मोक्षमार्ग पर चलना चाहिए। श्रावक व श्रमणों को अपने धर्म का पालन करना चाहिए।

सग-भावाणुसारेण, परिणमंते दव्वा संसारम्मि।
जीवपोग्गलदिरित्तो, णो को वि विजहदि सगसीलं।।402।।

संसार में सभी द्रव्य अपने-अपने भावों के अनुसार परिणमन करते हैं। जीव व पुद्गल द्रव्य के अतिरिक्त कोई भी द्रव्य अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता।

मिच्छत्ताइ-वसेणं, जीवो भमदि भवघोरकंतारे।
दव्व-खेत्त-याल-भाव-भव-परिवट्टणं पकुव्वेदि।।403।।

मिथ्यात्व आदि के वशीभूत होकर जीव संसार रूपी घोर वन में भ्रमण करता है, वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव व भव परिवर्तन करता है।

विज्जंता तिलोयम्मि, कम्मणोकम्मवग्गणा विविहा य।
बंधदि मुंचदि अणंतवारं कमेणं संसारी।।404।।
पुण ताउ वग्गणाउ हि, जदा ताणं भावाणुसारेणं।
गहदि तदा णादव्वं, एगं दव्व-परिवट्टणं हु।।405।। (जुम्मं)

लोक में विविध कर्म व नोकर्म वर्गणाएँ विद्यमान हैं। संसारी जीव उन्हें क्रम से अनंत बार बांधता है व छोड़ता है। पुनः जब उन्हीं (प्रारंभ में ग्रहण की गई) वर्गणाओं को उन्हीं भावों के अनुसार ग्रहण करता है तब वह एक द्रव्य परिवर्तन जानना चाहिए।

लोगे ण पदेसेसो, जत्थ जादि ण मरदि अणंतवारं।
जइ-यालम्मि कमेणं, तई इग-खेत्त-परिवट्टणं।।406।।

लोक में एक भी ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ जीव अनंतबार जन्म-मरण न करता हो। जितने काल में जीव लोक के प्रत्येक प्रदेश पर क्रमशः जन्म व मरण करता है उतना काल एक क्षेत्र परावर्तन जानना चाहिए।

अवसप्पिणि-उवसप्पिणि-पत्तेय-समये कमेण जम्मेदि।
मरदि जदा तदा एग-यालपरिवट्टणं जाणेज्ज।।407।।

जब जीव अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी के प्रत्येक समय में क्रम से जन्म व मरण कर लेता है तब वह एक कालपरिवर्तन जानना चाहिए।

जावइआ चदुगदीण, जहण्णे आउम्मि होंति समया दु।
तावइअ-वारं मरदि, जम्मदि जीवो लहदि दुक्खं।।408।।
लहदि जहण्णाऊदो, अणंतभवा वरट्ठिदि-पज्जंतो।
चदुगदीणं कमेणं, समयं समयं वड्ढमाणं।।409।।
देवगदीए जीवो, भुंजदि इगतीस-सागरस्साउं।
उप्पज्जंते मिच्छादिट्ठी गेवेज्ज-पज्जंतं।।410।। (तिअं)

चारों गतियों की जघन्य आयु में जितने समय होते हैं जीव उतनी ही बार जन्म-मरण करता है व दुःख प्राप्त करता है। चारों गतियों की जघन्य आयु से लेकर उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत एक-एक समय बढ़ता हुआ क्रम से अनंत भवों को प्राप्त करता है। विशेषता यह है कि देवगति में जीव 31 सागर की आयु भोगता है क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव ग्रैवेयक पर्यंत ही उत्पन्न हो सकता है। यही एक भव परावर्तन कहलाता है।

जोगठाणेहि जीवो, कसायज्झयवसाय-ठाणेहिं च।
अणुभाग-ठिदिठाणेहि, परिणमदे भाव-संसारे।।411।।

जीव योगस्थान, कषायाध्यवसाय स्थान, अनुभाग बन्धाध्यवसाय व स्थिति स्थान के द्वारा भाव संसार में परिणमन करता है।

चउगदीसुं हु जीवा, लहंति बहुकट्ठं दुक्खं णियमा।
सुहाभासो हि मेत्तं, हिमकणोव्व सुहं संसारे।।412।।

चारों ही गतियों में जीव नियम से बहुत कष्ट व दुःख प्राप्त करते हैं। इस संसार में वह सुखाभास भी मात्र ओस बूंद के समान है।

अण्णाणी मण्णंते, तं हि सुहं दुहपूरिद-भवम्मि जह।
महुमच्छिग-पीडिदो य, मणदि सुह-हेदू महु-बिंदुं।।413।।

इस दुःख से भरे हुए संसार में अज्ञानी जीव उस सुखाभास को ही सुख मानते हैं। जैसे मधुमक्खियों से पीड़ित व्यक्ति शहद की बूंद को ही सुख का हेतु मानता है।

संसार-दुहं पस्सिय, स-परिणदिं जाणिय होज्ज विरत्तो।
मोहमुज्झिदु-मसक्को, जो सो दु अणंतसंसारी।।414।।

संसार के दुःख को देखकर व निज परिणति को जानकर जीव विरक्त होता है। जो मोह को छोड़ने में असमर्थ हैं वे अनंत संसारी हैं।

भोत्ता हं णियमेणं, मज्झ अप्पेण सय किद-कम्माणं।
एगत्तभावणा सय, चिंतेज्जा सव्वसंसारी।।415।।

मेरी आत्मा के द्वारा किए गए कर्मों का मैं ही नियम से भोक्ता हूँ। सभी संसारी प्राणियों को सदा एकत्व भावना का चिंतन करना चाहिए।

मइ अज्जिद-कम्मफलं, णेव भुंजेदि अण्णप्पा कया वि।
अण्णप्पेहि अज्जिदं, णो भुंजेमि कत्थ वि कया वि।।416।।

मेरे द्वारा अर्जित किए गए कर्मों के फल को अन्य आत्मा कदापि नहीं भोगती। एवं अन्य आत्माओं के द्वारा अर्जित कर्म के फल को मैं कभी भी कदापि नहीं भोग सकता।

एक्को बंधदि कम्मं, पुण्णं पावं मोहपवित्तीए।
एक्को भुंजदि णियमा, सुहासुहफलं हंदि ताणं।।417।।

जीव अकेला ही मोह की प्रवृत्ति से पुण्य व पाप कर्म बांधता है और अकेला ही उनके शुभ व अशुभ फलों को नियम से भोगता है।

एक्को जम्मदि मरदे, एक्को जणदि णिरये सग्गे।
मणुजे तिरिये एक्को, मए सह अण्णा ण गच्छेज्ज।।418।।

जीव नरक-स्वर्ग-मनुष्य व तिर्यंच में अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मृत्यु को प्राप्त करता है। मृत्यु उपरांत मेरे साथ अन्य कोई भी नहीं जाएगा।

एक्को कुव्वदि कम्मं, एक्को भुंजेदि ताण कम्मफलं।
सव्वकम्मं खयित्ता, एक्को लहदे परम-मोक्खं।।419।।

जीव अकेला ही कर्म करता है और अकेला ही उन कर्मों के फल को भोगता है। सर्व कर्मों को क्षय कर जीव अकेला ही परम निर्वाण को प्राप्त करता है।

एयत्त-चिंतगो खलु, समत्थो सगसिद्धत्तं लहेदुं।
जस्स चित्त-मेयत्तं, ण सो भमदि भवे दीहंतं।।420।।

एकत्व भावना का चिंतन करने वाला ही स्वसिद्धत्व को प्राप्त करने में समर्थ है। जिसका चित्त एकत्व भाव से युक्त नहीं है वह संसार में दीर्घकाल तक परिभ्रमण करता है।

ण मे असणं वसणं ण, ण धणधण्णं ण पुत्तं कलत्तं ण।
णो पिदरं णो भादू, णो भगिणी ण मित्तादी वा।।421।।

ये भोजन, वस्त्र, धन-धान्य मेरे नहीं हैं, ये पुत्र, ये स्त्री मेरे नहीं हैं। ये माता-पिता, भाई-बहन अथवा मित्र आदि मेरे नहीं हैं।

णो मे बालावत्था, ण मे जोव्वणं बुड्ढावत्था णो।
णाहं इत्थी पुंसो, ण संढो सुर-णर-तिरियादी।।422।।

यह बाल अवस्था मेरी नहीं है, यह यौवन और वृद्धावस्था भी मेरी नहीं है। मैं न तो स्त्री हूँ, न पुरुष, न नपुंसक हूँ और न ही देव, मनुष्य या तिर्यंचादि हूँ।

मज्झ दव्वकम्मं णो, णो भावकम्मं च णोकम्मं णो।
णाहं धम्माधम्मो, णाहं पोग्गलो णो यालो।।423।।

ये द्रव्यकर्म मेरे नहीं हैं, ये भावकर्म व नोकर्म भी मेरे नहीं हैं। मैं न धर्म द्रव्य हूँ, न अधर्म द्रव्य हूँ, न पुद्गल द्रव्य हूँ और न काल द्रव्य हूँ।

मे अप्पे णण्णप्पा, अण्णप्पे णेव मज्झ अत्थित्तं।
ण मे अण्णदव्वगुणा, णो मज्झ विहावपज्जाया।।424।।

मेरी आत्मा में कोई अन्य आत्मा नहीं है। अन्य आत्मा में मेरा कोई अस्तित्व नहीं है। न मुझमें अन्य द्रव्य या गुण है। कोई भी विभाव पर्याय मेरी नहीं है।

तिरियो वा णेरइयो, जीवो सुरो णरो ववहारेणं।
मण्णदि पोग्गलविहवा, अप्पुल्लो भवण-पुत्तादी।।425।।

व्यवहार से जीव तिर्यंच, नारकी, देव या मनुष्य है। व्यवहार से जीव पुद्गल वैभव, भवन व पुत्रादि को अपना मानता है।

परमट्ठिय-णय-णाणं, विणा मेत्तं ववहारेण मुत्ती।
णो संभवो ववहारणय-णाणं विणा णिच्छयेण।।426।।

पारमार्थिक नय के ज्ञान के बिना मात्र व्यवहार से और व्यवहार नय के ज्ञान के बिना मात्र निश्चय से मुक्ति संभव नहीं है।

सगसुद्धप्पं मुणित्तु, परभावं उज्झदि जीवो जो सो।
सगसुद्धप्प-सहावं, पाविदुं सक्केदि णियमेण॥427॥

जो जीव अपनी शुद्धात्मा को जानकर परभावों का त्याग करता है वह नियम से अपनी शुद्धात्मा के स्वभाव को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

असुई दु सहावादो, देहो सय पूरण-गलण-सहाविं।
पोग्गलं सोहिदुं हं, असक्को णावसियो कयावि॥428॥

शरीर स्वभाव से अपवित्र है। पुद्गल का स्वभाव पूरण व गलन है। उस पुद्गल को शुद्ध करने में मैं अशक्य हूँ और यह कदापि आवश्यक भी नहीं है।

सरीर-मामयालयं, खीणसहावी जिण्णसहावी वा।
तम्मि देहम्मि णाणी, को रंजदि विम्हरिय अप्पं॥429॥

शरीर रोगों का घर है। यह शरीर क्षीणस्वभावी अथवा जीर्णस्वभावी है। आत्मा को भूलकर कौन ज्ञानी उस देह में रंजायमान होता है? अर्थात् ज्ञानी देह में रंजायमान नहीं होता।

जो देहे अणुरत्तो, रत्तो संसारे सो विसेसेण।
कहं दीह-संसारी, महण्णाणी तह मूढो णो॥430॥

जो देह में अनुरक्त है, संसार में विशेष रूप से आसक्त है तो वह दीर्घसंसारी, महाअज्ञानी और मूर्ख कैसे नहीं है? अर्थात् अवश्य है।

राय-दोसेहि बुड्ढदि, संसारे सुइ-सहावजुत्तप्पा।
रायं दोस-मुज्झिदुं, जो सक्को भावि-सिद्धो सो॥431॥

पवित्र स्वभाव से युक्त आत्मा राग व द्वेष से ही संसार में डूबती है। जो राग व द्वेष का त्याग करने में समर्थ है वही भावी सिद्ध है।

मिच्छत्ताविरदि-जोग-कसाया पमादो आसव-हेदू।
ताण चागेणं विणा, असंभवो आसव-णिरोहो॥432॥

मिथ्यात्व, अविरति, योग, कषाय और प्रमाद ये आस्रव के हेतु हैं। उनके त्याग के बिना आस्रव का निरोध असंभव है।

आसवो बंध-हेदू, बंधो संसारभमण-कारणं च।
मुत्तजीवाणं हंदि, होदि एगा णिब्बंध-दसा॥433॥

आस्रव बंध का कारण है और बंध संसार के भ्रमण का कारण है। मुक्त जीवों की ही एक निर्बंध दशा होती है।

जागरिओ भो णाणी! किं सुवसि तुमं विसयकसायेसुं।
जिणसुदमुणि-णिमित्तेण, उवकसेज्ज धम्मं जदणेण॥434॥

अहो ज्ञानी! जागृत होओ, तुम विषय-कषायों में क्यों सोते हो। जीव यत्नपूर्वक जिनेंद्रदेव, जिनश्रुत व निर्ग्रन्थ गुरुओं के निमित्त से धर्म प्राप्त करता है।

जिणसुदमुणीहिं विणा, को समत्थो पाविदुं जिणधम्मं।
पुण्णुदयेण विणा जिण-सत्थ-साहु-पत्ती असक्का॥435॥

जिनेन्द्रदेव, श्रुत व निर्ग्रन्थ मुनियों के बिना जिनधर्म को प्राप्त करने में कौन समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं। पुण्य के उदय के बिना जिनदेव, शास्त्र व निर्ग्रन्थ साधु की प्राप्ति-संगति अशक्य है।

पढमं करेज्ज मंदं, सग-कसायं विरज्जित्तु विसयादु।
रंजेज्ज परमेट्ठीसु, सुणेज्ज सया जिणसत्थाइं॥436॥

सर्वप्रथम अपनी कषायों को मंद करना चाहिए। विषयों से विरक्त होकर परमेष्ठी के गुणों में रंजायमान होना चाहिए एवं सदैव जिनशास्त्रों को सुनना चाहिए।

महु-पहुदि-पदत्थोव्व दु, मिच्छत्तादी चिय मोहदि जीवं।
ताणं समणेण विणा, असंभवो आसव-णिरोहो॥437॥

मदिरा आदि पदार्थ के समान ही मिथ्यात्व आदि जीव को मोहित कर देते हैं। उनके शमन के बिना आस्रव का निरोध असंभव है।

मोक्खमग्गस्स पहाण-आहारो संवरासवणिरोहो।
णिरुंभिदु-मासवं दिढ-दारं व सम्मत्ताइ-गुणा।।438।।

मोक्षमार्ग का प्रधान आधार आस्रव का निरोध-संवर है। सम्यक्त्व आदि गुण आस्रव को रोकने के लिए दृढ़ कपाट के समान हैं।

सम्मत्तसमिदिगुत्ती, धम्माणुवेक्खा परीसह-जओ य।
संवर-कारणं हु सो, विणा तेहिं रित्त-सिंधूव।।439।।

सम्यक्त्व, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा और परीषहजय ये संवर के कारण हैं। उन कारणों के बिना वह संवर सूखे समुद्र के समान ही है।

भव-भमण-करंताणं, रक्खा-कवयो संवरो अप्पाण।
संवर-संजुद-अप्पा, सक्केदि य कम्मक्खयेदुं।।440।।

संसार में परिभ्रमण करती हुई आत्माओं के लिए संवर तत्त्व रक्षाकवच है। संवर से युक्त आत्मा ही कर्म क्षय करने में समर्थ होता है।

संवर-जुद-णिज्जरा हि, मोक्खहेदू खलु जिणवरुद्दिट्ठा।
णिज्जरा संवरेणं, विणा ण मोक्खहेदू कया वि।।441।।

संवर से युक्त निर्जरा ही मोक्ष का हेतु है ऐसा जिनेंद्रप्रभु ने उपदिष्ट किया है। संवर के बिना निर्जरा मोक्ष का हेतु कदापि नहीं है।

पुव्वबद्ध कम्माणं, देसेग-सडणं णिज्जरा दुविहा।
सविवागी पडिसमयं, सडणं सव्वसंसारीणं।।442।।

पूर्वबद्ध कर्मों का एकदेश झरना निर्जरा कही जाती है। वह निर्जरा दो प्रकार की है—सविपाकी और अविपाकी। संसारी जीवों के प्रतिसमय कर्म का झरना सविपाकी निर्जरा है।

वदसमिदिगुत्तिजुदाण, हवेज्ज धम्मज्झाणाइ-बलेणं।

कम्म-सडण-मविवागी, णिज्जरा मोक्ख-कारणं चिय॥443॥

व्रत, समिति व गुप्ति से युक्त जीवों के धर्मध्यानादि के बल से कर्मों का झरना अविपाकी निर्जरा कहलाती है जो निश्चय से मोक्ष का कारण है।

मोक्खमग्गीण पढमं, चरणं संवरो णिज्जरा विदियं।

तेहि विणा मोक्खो जह, पंखेहि विणा उड्डणं खे॥444॥

मोक्षमार्गियों का प्रथम चरण संवर है और द्वितीय चरण निर्जरा है। जिस प्रकार पंखों के बिना आकाश में उड़ना संभव नहीं है उसी प्रकार संवर बिना मोक्ष संभव नहीं है।

अविवागी णिज्जरा दु, वदीणं सक्का अव्वदीणं णो।

पउर-णिज्जरं कुणदे, सेणीइ आरूढो जोगी॥445॥

अविपाकी निर्जरा मात्र व्रतियों के ही शक्य है वह अव्रतियों के कदापि शक्य नहीं है। श्रेणी पर आरूढ़ योगी प्रचुर मात्रा में निर्जरा करते हैं।

पुरिसायारो लोओ, णेयो अह-मज्झ-उड्ढ-भेयादो।

मिच्छत्ताइवसेणं, तत्थ भमदि अणाइयालादु॥446॥

ऊर्ध्व, मध्य व अधोलोक के भेद से यह लोक तीन प्रकार का जानना चाहिए। लोक पुरुषाकार है। मिथ्यात्व आदि के वशीभूत होकर जीव अनादिकाल से उस लोक में परिभ्रमण कर रहा है।

तदो कुणसु पुरिसट्ठं, भवी अवहेडिदुं मिच्छत्तादिं।

विणा रयणत्तयेणं, णेव उहट्टेदि भव-भमणं॥447॥

अतः हे भव्य जीव! मिथ्यात्व आदि के त्याग के लिए पुरुषार्थ करो। रत्नत्रय के बिना संसार का परिभ्रमण नष्ट नहीं हो सकता।

अदिसय-पुण्ण-फलं चिय, दुल्लहं मण्णिज्जेदि तिलोयम्मि।

वरं भवभमण-वड्ढग-पुण्णं ण दुल्लहं जीवाण॥448॥

त्रिलोक में अतिशय पुण्य का फल दुर्लभ माना जाता है। किन्तु जीवों के लिए संसार को वृद्धिंगत करने वाला पुण्य दुर्लभ नहीं है।

अइदुल्लहं सुपुण्णं, तं जं दायदि अरिहंताइ-पदं।
सव्वपुण्णे खीणे दु, जीवो पुण लहदि सिद्धत्तं।।449।।

किन्तु वह पुण्य अतिदुर्लभ है जो अरिहंत आदि पद को देता है। पुनः सर्वपुण्य के क्षीण होने पर जीव सिद्धत्व को प्राप्त करता है।

जहवि दुल्लहा लोए, सुगदि-आउ-गोद-देस-संगदी य।
वत्तं सुपुण्णाउं च, सेट्ठ-कुल-बुद्धि-बंधु-आदी।।450।।
ता सव्वा लहिदूण वि, जिणदेव-गंथ-धम्म-णिग्गंथाण।।
लहण-मदिसय-दुल्लहं, अप्पहिदं तहा तादो अवि।।451।। (जुम्मं)

यद्यपि अच्छी गति, श्रेष्ठ आयु, उच्च गोत्र, सुदेश, सुसंगति, आरोग्य, पूर्णायु, श्रेष्ठ कुल, बुद्धि व बंधु आदि लोक में दुर्लभ हैं तथापि उन सबको प्राप्त कर जिनदेव, शास्त्र, जिनधर्म व निर्ग्रन्थ गुरुओं का प्राप्त करना अतिशय दुर्लभ है तथा उनसे भी अधिक दुर्लभ आत्महित करना है।

सुसावय-साहु-केवलि-जीवणं उत्तरोत्तर-दुल्लहं च।
अदिसय-दुल्लहा कम्म-खयादु पत्त-सिद्धावत्था।।452।।

श्रावक जीवन, साधु जीवन और केवली जीवन उत्तरोत्तर दुर्लभ है। कर्म के क्षय से प्राप्त सिद्धावस्था अतिशय दुर्लभ है।

जिणधम्मो बेविहो दु, सावय-समण-धम्म-भेयादो वा।
ववहार-णिच्छयाणं, देस-सयलवदाणं णेयो।।453।।

श्रावक धर्म व श्रमण धर्म के भेद से जिनधर्म दो प्रकार का जानना चाहिए अथवा व्यवहार व निश्चय वा एकदेशव्रत व सकलव्रत रूप से जिनधर्म के दो भेद हैं।

देस-अणुव्वद-रूवो, सावयधम्मो देसेगसिवपहो।
ण देसवदी ववहार-णिच्छय-मोक्खमग्गी कयावि॥454॥

देशव्रत या अणुव्रत रूप श्रावक धर्म है। यह एकदेश मोक्षमार्ग कहा जाता है। वह देशव्रती व्यवहार व निश्चय मोक्षमार्गी कदापि नहीं है।

पमादजुदो ववहार-सिवमग्गी महव्वदि-सयलधम्मी।
पमत्तहीणो णिच्छय-मोक्खमग्गी दु मुणेदव्वो॥455॥

सकलव्रतों को धारण करने वाले सकलधर्मी प्रमादयुक्त महाव्रती व्यवहार मोक्षमार्गी जानने चाहिए जबकि प्रमाद से हीन अप्रमत्त महाव्रती निश्चय मोक्षमार्गी जानने चाहिए।

अपुव्वकरणाइ-सत्त-गुणट्ठाण-वत्ती खलु णिग्गंथा।
मोक्खमग्गी दु खवगो, तम्मि भवे हि लहंति मोक्खं॥456॥

अपूर्वकरणादि सात गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ क्षपक मोक्षमार्गी हैं। वे उस ही भव में मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

उवसामगो दु पदिदो कालक्खयादो भवक्खयादो य।
भमेज्ज भवी तहवि अद्ध-पोग्गल-परिवट्टणंतं दु॥457॥

उपशम श्रेणी पर आरूढ़ होने वाले उपशामक कालक्षय या भव क्षय से पतित होते हैं। वे भव्य अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल तक भी संसार में परिभ्रमण कर सकते हैं।

एयभवे बे-वारं, संपुण्णेसुं चढिदुं चउवारं।
खवगसेणिं णो कोवि, विदिय-वारं दु आरोहेदि॥458॥

जीव एक भव में दो बार व मोक्ष पर्यन्त संपूर्ण भवों में चार बार ही उपशम श्रेणी चढ़ सकता है। तथा कोई भी जीव दूसरी बार क्षपक श्रेणी नहीं चढ़ता। क्षपक श्रेणी का आरोहक नियम से उसी भव में मोक्ष प्राप्त करता है।

मुणिवर-विज्जाणंदो, इमाओ अणुवेक्खाओ चिंतीअ।
पढावीअ भव्वा सग-वर-कल्लाण-पह-थिरिमाए।।459।।

श्री विद्यानंदजी मुनिराज इन बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतन किया करते थे एवं स्व व पर के कल्याण-पथ की स्थिरता के लिए भव्यजनों को पढ़ाया भी करते थे।

वस्सम्मि उणवीस-सय-अट्ठहत्तरम्मि तदा ढिल्लीए।
उवज्झाय-सण्णिहीइ, महावीर-सुमरदि-चिण्हस्स।।460।।
पहाणमंति-मोरार-देसाइणा दु आहार-सिलाए।
संठावणा किदा विड्ढीइ अहिंसा-भावणाए।।461।। (जुम्मं)

26 जनवरी 1978 में दिल्ली में उपाध्याय श्री विद्यानंदजी की सन्निधि में प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने अहिंसा की भावना की वृद्धि के लिए (धौलाकुआँ के निकट) महावीर स्मारक के आधारशिला की स्थापना की।

सद्धाए विणा धम्म-पालण-मसंभवो देसाइणा दु।
कहिदं महावीरेण, धम्मस्स सव्वायारिदा दु।।462।।

इस अवसर पर प्रधानमंत्री श्री मोरारजी जी देसाई ने कहा कि श्रद्धा के बिना धर्म का पालन असंभव होता है। भगवान् महावीर स्वामी ने धर्म के लिए सभी का आह्वान किया।

कहिदं पाढगेण-मप्पसंजमेण सह विवेगावसियो।
कुरीदी णिसेहिदा य, उवदिसिदं सुकल्लाणत्थं।।463।।

उपाध्यायश्री ने अपने प्रवचनों में कहा कि आत्मसंयम के साथ विवेक आवश्यक है। उन्होंने समाज में प्रविष्ट अनेक कुरीतियों का निषेध किया एवं सभी के कल्याण के लिए उपदेश दिया।

सहस्सद्द-उच्छवस्स, तिवस्स-पुव्वे आगच्छीअ तत्थ।
कण्णाड-मुक्खमंती, संसदो तह केंदिय-मंती।।464।।

कण्णाडं आगमिदुं, पत्थिदुं दुसय-जणा कण्णाडादु।
वीरेंद-हेगडे चारुकित्ति-आइ भट्टारया वि।।465।। (जुम्मं)

श्रवणबेलगोल के सहस्राब्दि महोत्सव के तीन वर्ष पूर्व (1977 में) ही कर्नाटक के मुख्यमंत्री श्री देवराज अरस, दिल्ली के सांसद श्री जे.के. जैन और केन्द्रीय मंत्री वी. शंकरानंद जी, उपाध्यायश्री के चरणों में कर्नाटक आने की प्रार्थना करने के लिए आए। पश्चात् कर्नाटक से दो सौ लोग, धर्मस्थल के धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेगड़े जी व श्रवणबेलगोल क्षेत्र के भट्टारक श्री चारुकीर्ति जी और अन्य मठों के भट्टारकों ने भी मुनिराज को कर्नाटक आने के लिए प्रार्थना की।

पच्छा महुच्छवस्स दु, देज्ज णिय-अणुमदिं विज्जाणंदो।
सव्वा दु बहु-पसण्णा, वड्ढंत-उच्छाहेणं सह॥466॥

पश्चात् प्रतिनिधि मंडल की प्रार्थना स्वीकार करते हुए उपाध्याय श्री विद्यानंदजी ने महोत्सव के लिए अपनी अनुमति प्रदान की। उपाध्यायश्री के स्वीकृति प्रदान करते ही बढ़ते हुए उत्साह के साथ सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए।

महावीर-जयंदीइ, सावया पहुच्चीअ सुइपव्वम्मि।
मंति-इंदिरा-णियडे, कज्जकमस्स णिमंतेदुं दु॥467॥

उसी वर्ष महावीर जयंती के पावन पर्व पर कार्यक्रम के लिए निमंत्रण देने के लिए जैन श्रावक श्रीमती इंदिरागांधी के समीप पहुँचे।

किं मुणि-विज्जाणंदो, आविस्सेदि दु तस्सिं कज्जकमे।
रत्तीए कज्जकमो, किण्णु णियड-धम्मसालाए॥468॥
मुणीवरो उवट्ठिदो, दंसण-ववत्था सुविहाजणगा दु।
दियंबरो मुणी णेव, संचरदि अयारणं णिसीइ॥469॥ (जुम्मं)

श्रीमती इंदिरागांधी जी ने चर्चा के बीच में पूछा कि क्या मुनिश्री विद्यानंदजी भी उस कार्यक्रम में पधारेंगे? उन लोगों ने उत्तर दिया कि यह कार्यक्रम तो रात्रि में है और रात्रि में मुनिश्री किसी कार्यक्रम में उपस्थित नहीं होते किन्तु कार्यक्रम स्थल के निकट की जैन धर्मशाला में ही मुनिवर उपस्थित हैं, वहाँ पर मुनि के दर्शनों की व्यवस्था सुविधाजनक होगी। अहो! दिगंबर मुनि रात्रि में अकारण संचरण नहीं करते।

सायं सत्तवायणे, पहुच्चीअ सा मुणि-दंसणत्थं दु।
एगासीदीइ महा-मत्थगाहिसेगे आवेज्ज॥470॥

शाम के समय सात बजे वे मुनिराज के दर्शन के लिए पहुँचीं। वार्ता के मध्य आचार्यश्री ने 1981 में महामस्तकाभिषेक व सहस्राब्दि महोत्सव में आने को कहा।

विशेषार्थ–जब प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी जी श्रीविद्यानंदजी के दर्शनार्थ आयीं तब उनके साथ उस समय प्रसिद्ध सेविका निर्मलाताई देशपांडे थीं। इसके अतिरिक्त और कोई साथ में नहीं था। दोनों को आशीर्वाद देकर मुनिश्री ने श्रवणबेलगोल के महामस्तकाभिषेक में जाने के विषय में बताया और उनसे भी आने को कहा।

भासिदं मुणिणा तदा, असंभवो मुणी उत्तरे कहीअ।
हं कारागहे होज्ज, पुणो कहीअ णो तत्थ तुमं।।471।।

जब मुनिराज ने ऐसा कहा तब श्रीमती इंदिराजी ने उत्तर में कहा–मुनिश्री! यह तो असंभव है, मैं तो उस समय जेल में रहूँगी। मुनिश्री ने पुनः कहा कि नहीं आप जेल में नहीं होंगी।

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी जी को पुस्तक भेंट करते हुए

सहस्सद्दि-मुच्छवस्स, सव्ववयस्स दायित्तं हु तुमम्मि।
तुमं अवि जयी होज्जा, भयवद-बाहुबली-सामीव।।472।।

संकल्प कीजिए कि भगवान् बाहुबली की प्रतिमा के सहस्राब्दी महोत्सव के सर्व व्यय का दायित्व आप पर होगा। जिस प्रकार भगवान् बाहुबली स्वामी ने चक्रवर्ती को जीता था उसी प्रकार आप भी विजयी होंगी।

भविस्सवाणी सफला, मज्झावहि-णिव्वायणे जयी सा।

होज्ज देसस्स पहाणमंती पुण्ण-बहुमदेणं दु।।473।।

उपाध्यायश्री की भविष्यवाणी सफल हुई। सांसद भंग हुई और मध्यावधि चुनाव हुए जिसमें वे विजयी हुई। पूर्ण बहुमत के साथ श्रीमती इंदिरा गांधी जी देश की प्रधानमंत्री बनीं।

विणयंजली अप्पिदा, बेलगोलाए बाहुबलि-पदेसु।

तिदिणंतं ठाएज्जा, तत्थ अइ-सद्धा-भत्तीए।।474।।

श्रीमती इंदिरा जी ने श्रवणबेलगोला में बाहुबली स्वामी के चरणों में विनयांजलि अर्पित की। वे वहाँ तीन दिनों तक श्रद्धा-भक्तिपूर्वक ठहरीं।

विशेषार्थ–इस सहस्राब्दी उत्सव और महामस्तकाभिषेक के समारोह में कर्नाटक सरकार व केन्द्रीय सरकार के सहयोग से 12 करोड़ रुपये खर्च किए गए।

वीसमसदीए पढम-एलाइरियो

(20वीं शताब्दी के प्रथम एलाचार्य)

सत्तरस-णवंबरम्मि, उणवीससय-अट्ठहत्तरवस्से।
गंधी-परिसरे पदिट्ठिदो एलाइरियपदे सो।।475।।

17 नवंबर 1978 में गांधी ग्राउण्ड में उपाध्याय श्री को एलाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

कुंदकुंदभारदीइ, सासण-पत्त-भूमीए सुद्धी य।
आहार-सिला-ठवणा, होज्ज तदा मुणि-सण्णिहीए।।476।।

दिल्ली से श्रवणबेलगोला की ओर विहार करने से पूर्व एलाचार्यश्री के पावन सान्निध्य में कुंदकुंद भारती के लिए शासन (डी.डी.ए.) से प्राप्त भूमि की शुद्धि और आधार-शिला स्थापना अर्थात् शिलान्यास हुआ।

उणवीसणवंबरम्मि, उणवीससय-अट्ठहत्तरवस्से।
सवणबेलगोलाए, पारब्भो मंगलविहारो।।477।।

19 नवंबर 1978 को एलाचार्यश्री का मंगल विहार श्रवणबेलगोला के लिए प्रारंभ हुआ।

जणगपुरि-जइण-मंदिर-आहारसिलाठवणा ढिल्लीए।
होज्ज मुणि-सण्णिहीए, अच्चंत-उल्लासुमंगेहि।।478।।

विहार करते हुए एलाचार्यश्री के पावन सान्निध्य में अत्यंत उल्लास व उमंग से दिल्ली में जनकपुरी जैन मंदिर का शिलान्यास संपन्न हुआ।

चित्तोडगढे करिदं, अट्ठसयवस्स-पाईण-जइणस्स।
दंसणं दियंबर-कित्ति-थंभस्स एलाइरियेण।।479।।

एलाचार्यश्री जयपुर, कोटड़ी, भीलवाड़ा और हमीरगढ़ होते हुए चित्तौड़गढ़ पहुँचे। वहाँ चित्तौड़गढ़ में एलाचार्यश्री ने 19 मई को 800 वर्ष प्राचीन दिगंबर जैन कीर्ति स्तंभ का अवलोकन किया।

महावीर-जिणालये, कलसारोहणं कुव्विदं मुणिस्स।
मज्झपदेस-पवेसो, पेरणाए मई-अंतम्मि।।480।।

कीर्तिस्तंभ के समीप स्थित महावीर जिनालय पर कलशारोहण उन्हीं की प्रेरणा से किया गया। मई के अन्तिम सप्ताह में एलाचार्यश्री का मध्यप्रदेश की सीमा में प्रवेश हुआ।

छम्मासाहिय-यालो, मज्झ-पदेसे जविदं मुणिंदेण।
इंदोरे चउमासो, विदियवार-मइ-पहावणाइ।।481।।

मुनिश्री ने 6 माह से अधिक समय मध्यप्रदेश में व्यतीत किया। इंदौर में एलाचार्यश्री का दूसरी बार चातुर्मास अत्यंत प्रभावनापूर्वक संपन्न हुआ।

चीफ जस्टिस श्री लोढ़ा जी व साथ में विश्व धर्म सम्मेलन के
जनरल सेकेट्री मेजर जनरल उबान सिंह

णायगर-अहिवत्ताण, वक्खाणं दायिदं मुणिंदेणं।
भूसिदं समायेणं, सिद्धंत-चक्कि-उवाहीए।।482।।

इंदौर बार एसोसिएशन द्वारा आयोजित सभा में एलाचार्यश्री ने न्यायाधीशों और वकीलों के लिए व्याख्यान दिया, उन्हें संबोधित किया। इंदौर के इसी चातुर्मास में एलाचार्यश्री को समाज के द्वारा सिद्धांत चक्रवर्ती की उपाधि से विभूषित किया गया।

मज्झपदेसस्स मुक्ख-मंतिणा घोसिदं णिम्मावेदुं।
मज्झपदेस-भवणं दु, तित्थ-सवणबेलगोलाए।।483।।

इसी सभा में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री ने तीर्थ श्रवणबेलगोला में मध्यप्रदेश भवन निर्माण के लिए घोषणा की।

उणवीस सयतिहत्तर-वस्सम्मि य विज्जाणंद-णिलयस्स।
आहारसिला-ठविदा, तित्थ-सवणबेलगोलाए।।484।।

8 वर्ष पूर्व ही सहस्राब्दी महोत्सव और महामस्तकाभिषेक की तैयारियाँ प्रारंभ हो गई थीं। 3 अगस्त 1973 में ही श्रवणबेलगोला में चारुकीर्ति जी के सान्निध्य में विद्यानंद निलय की आधारशिला स्थापित की गई थी।

सासण-साउज्जेणं, मुणि-मग्ग-णिद्देसणे सण्णिहीइ।
दक्खिण-भट्टारगाण, वीरेंद-धम्माहिगारिस्स।।485।।

महुच्छव-अज्झक्ख-सेयंस-पसादस्स हीराचंदस्स।
पंचसय-पदिणिहीणं, देसस्स होज्ज उवट्ठिदीइ॥486॥
विआरो वित्थारेण, बे-दिणंतं महुच्छव-जोयणासु।
इंदोर-समायस्स दु, णिवेदिदं सिट्ठ-मंडलेण॥487॥
उत्तर-भारदम्मि भो सामी! विसाल-पडिमा-ठावणा दु।
होज्ज गोमडदेवोव्व, दायिदा तदासी समणेण॥488॥ (चउक्कं)

गोम्मटेश्वर प्रतिमा के निर्माण को 1000 वर्ष पूर्ण हो जाने पर शासन (कर्नाटक सरकार) के सहयोग से एलाचार्यश्री के मार्ग निर्देशन व सान्निध्य में दक्षिण भारत के भट्टारकों, धर्माधिकारी वीरेन्द्र हेगडे, महोत्सव समिति के अध्यक्ष साहू श्री श्रेयांस प्रसाद जी, तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष श्री लालचंद हीराचंद दोशी जी व देश के लगभग 500 प्रतिनिधियों की उपस्थिति में दो दिन तक महोत्सव की योजनाओं पर विस्तार से विचार-विमर्श हुआ। तब उस समय इंदौर समाज के शिष्ट मंडल ने एलाचार्य जी से निवेदन किया कि हे स्वामी! गोम्मटेश बाहुबली के समान एक विशाल प्रतिमा की स्थापना उत्तर भारत में भी हो। तब एलाचार्य जी ने अपना आशीष उन्हें प्रदान किया।

चूलगिरिं पहुच्चित्तु, पस्सित्ता आदिपडिमा-जिण्णं दु।
जागरिदो दु समायो, तेण तित्थखेत्त-विगासस्स॥489॥
मुणिवर-णिद्देसेणं, कराविदो हु जिण्णुद्धारो तत्थ।
विसालायोजणं चिय, होज्ज तत्थ अविम्हरणीयं॥490॥ (जुम्मं)

(पुनः समाज का अत्यधिक अनुरोध देखकर एलाचार्यश्री बड़वानी की ओर गतिमान हुए।) चूलगिरी पहुँचकर विश्व की उत्तुंग 84 फुट श्री आदिनाथ भगवान् की प्रतिमा को जीर्ण देखकर उन्होंने समाज को जागृत किया। तीर्थक्षेत्र के विकास के लिए मुनिराज के निर्देश से प्रतिमा का जीर्णोद्धार कराया गया। पश्चात् वहाँ एक विशाल अविस्मरणीय आयोजन हुआ।

पुण विहरंतो समणो, मुंबई-पोदणपुरं पहुच्चीअ।
विसाल-जण-समुदायो, एलाइरिय-पवेसे तत्थ।।491।।

पुनः वहाँ से विहार करते हुए श्रमणराज पोदनपुर मुंबई में पहुँचे। वहाँ एलाचार्यश्री के प्रवेश में विशाल जनसमुदाय एकत्रित हुआ।

तत्थ जदि-पवयणेहिं, महाणयरीइ दो-सत्तगंतं।
महइ-धम्मपहावणा, लक्ख-जइण-जइणेदरेसुं।।492।।

वहाँ पूज्य यतिराज के प्रवचनों से महानगरों में दो सप्ताह तक लाखों जैन-जैनतरों के मध्य जिनशासन की महती प्रभावना हुई।

विशेषार्थ–एलाचार्यश्री के किसी भी कार्यक्रम में डॉ. नेमिचंद्र जैन इंदौर का भी विशेष सहयोग प्राप्त होता रहता था।

चउपाडि-खेत्ते तस्स, पवयणम्मि अदिसय-जण-समुदायो।
संगच्छिदा अहिंसा, मुणि-दंसणाइ सिक्खादीहि।।493।।

मुंबई में चौपाटी में 14 से 19 फरवरी, 1980 में एलाचार्यश्री के प्रवचन चले। चौपाटी में उनके प्रवचन में अतिशय जन सैलाब उमड़कर आता था। मुनिश्री के दर्शन से ही सिक्ख आदि लोगों ने अहिंसा धर्म स्वीकार किया और जीवनभर के लिए मांसाहार आदि का त्याग कर दिया।

होज्ज सायर-सम्मुहे, पवयणं माणव-विस्सधम्मेसुं।
णिरुत्तर-पत्तगारा, करिदा पत्तसम्मेलणम्मि।।494।।

पूज्य एलाचार्यश्री के प्रवचन समुद्र के सामने ही मानव विश्वधर्म पर हुआ करते थे। पूरी मुंबई विद्यानंदमय हो गई। महानगर के लोग अधीर हो होकर प्रवचनों में वा दर्शन के लिए पहुँच रहे थे। वहाँ पर एक पत्रकार सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें एलाचार्यश्री ने सभी पत्रकारों को निरुत्तर कर दिया।

कण्णाडं गच्छंतो, अणेग-गाम-णयर-महाणयरेसु।
सुधम्मसहायोजिदा, वर-सागदं ठाणे ठाणे॥495॥

कर्नाटक जाते हुए अनेक ग्राम, नगर, महानगरों में एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज का श्रेष्ठ स्वागत हुआ और स्थान-स्थान पर धर्मसभा आयोजित की गई।

चउदस-फरवरीदु पण-वीसंतं बंबई-पवासो पुण।
विहरीअ बेलगामं, पडि पहुच्चीअ तदा हि पुणे॥496॥

14 फरवरी से 25 फरवरी तक एलाचार्यश्री का मुंबई में अविस्मरणीय धर्मप्रभावना के साथ गरिमामयी अल्पप्रवास रहा। पुनः 25 फरवरी को बेलगाम की ओर विहार हुआ। विहार करते हुए एलाचार्यश्री पुणे पहुँचे। (पुणे में भव्य स्वागत-प्रवेश व प्रवचन के उपरांत सतारा, कराड व शिरोली होते हुए कोल्हापुर पहुँचे।)

कोल्हापुरे ठाएज्ज, सत्तगेगस्स एलाइरियो तत्थ।
पवयणे सहस्सजणा, आवीअ दु गाम-गामादो॥497॥

एलाचार्यश्री एक सप्ताह के लिए कोल्हापुर में ठहरे। वहाँ उनके प्रवचन में गाँव-गाँव से हजारों- हजारों की संख्या में लोग आया करते थे।

सत्तदसवस्स-पच्छा, आवीअ दक्खिणे एलाइरियो।
मंदिरेसु मठेसु महरट्ठे होज्जा पवयणादी॥498॥

उत्तर भारत में 17 वर्षों तक धर्म-प्रभावना करने के पश्चात् अब एलाचार्यश्री दक्षिण भारत में आ रहे थे। महाराष्ट्र में मंदिरों और मठों में स्थान-स्थान पर उनके प्रवचनादि कार्यक्रम हुए।

चउदसप्पेल-असीदि-वस्से महलच्छि-मंदिर-पंगणे।
विसेस-पवयणं होज्ज, पढमावसरे जइण-मुणिस्स॥499॥

संस्था के विशेष अनुरोध पर 14 अप्रैल 1980 को एलाचार्यश्री के कोल्हापुर के हिंदू देवालय महालक्ष्मी मंदिर के प्रांगण में विशेष प्रवचन हुए। पहली बार इस परिसर में किन्हीं जैन मुनि का प्रवचन हुआ था।

सिवाविज्जापीठेण, हवेज्ज सिवा-जयंदि-उवलक्खम्मि।

मुणिवर-पवयणं सिवा-जोगदाणे रायणीदीइ।।500।।

कोल्हापुर के शिवाजी विद्यापीठ द्वारा शिवाजी जयंती के उपलक्ष्य में 16 अप्रैल को मुनिश्री के प्रवचन आयोजित किए गए। 'राजनीति में छत्रपति शिवाजी महाराज का योगदान' विषय पर मुनिराज का प्रवचन हुआ।

मरहट्ठ-भासाए हु, दायिद-पवयणं सहस्सजणेहिं।

सुणिदं दु धम्मभारदि-केंद-साहा ठाविदा तेण।।501।।

पूज्य श्री ने मराठी भाषा में प्रवचन दिए। हजारों लोगों ने मराठी भाषा के इस प्रवचन को बहुत आनंद के साथ सुना। आचार्य रत्न देशभूषण शिक्षण प्रसारक मंडल द्वारा संचालित इस संस्था में सभी धर्मों के अध्ययन एवं शोधकर्त्ताओं के लिए स्थापित धर्मभारती केंद्र की विशेष शाखा एलाचार्यश्री ने यहाँ स्थापित की।

एलाइरियो विज्जाणंद-सक्किदिग-भवणं सुहणामो।

णवविणिम्मिद-भवणस्स, लोयकल्लाणकारगस्स दु।।502।।

इस केन्द्र में लोककल्याण-कारक इस नवनिर्मित श्रेष्ठ भवन का शुभ नाम एलाचार्य विद्यानंद सांस्कृतिक भवन रखा गया।

विशेषार्थ-इस प्रकार कोल्हापुर जैसे सांस्कृतिक नगर में आधुनिक शास्त्रीय पद्धति से अध्ययन व संशोधन का कार्य प्रारंभ हो गया।

कुंभोज-बाहुबलिं च, पहुच्चीअ एलाइरियो विणदो।

दंसणत्थं साहुस्स, वयोवुड्ढ-समंतभद्दस्स।।503।।

विनय भावों से युक्त एलाचार्यश्री वयोवृद्ध साधु श्री समंतभद्र मुनिराज के दर्शन के लिए कुंभोज बाहुबली पहुँचे।

बेलगामे पवेसो, एयारस-मई-असीदिवासम्मि।
सागदं तत्थ भव्वं, समणस्स चायगोव्व जणेहि।।504।।

वहाँ कुछ समय बिताकर 11 मई 1980 को एलाचार्यश्री का बेलगाँव में प्रवेश हुआ। वहाँ चातक के समान भक्त लोगों ने श्रमणराज का भव्य स्वागत किया।

चारुकित्ति-भट्टारग-अण्ण-भट्टारग-मुक्खमंतीहिं।
सव्वेहि सागदं करिदं मुणिस्स वज्ज-उलूलूहि सह।।505।।

कर्नाटक की सीमा पर चारुकीर्ति भट्टारक जी अन्य दूसरे मठों के भट्टारक व तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री गुंडुराव व अन्य सभी ने वाद्य की मंगल ध्वनि के साथ भक्तिपूर्वक मुनिराज का शानदार स्वागत किया।

णववहूव सुसज्जिदे, बेलगामम्मि णयणाहिरामा दु।
पवेसो सोहजत्ता, उसपहावणा पढमवारं।।506।।

नववधू के समान सुसज्जित बेलगाँव में एलाचार्यश्री का प्रवेश, शोभायात्रा सब कुछ नयनाभिराम था। बेलगाँव में पहली बार ऐसी धर्म प्रभावना हुई थी।

सवणबेलगोलाए, एगद्ध-कोस-पुव्वे ठाएज्जा।
केंदीय-मंती पहुच्चीअ सीमाए सागदस्स।।507।।

एलाचार्यश्री श्रवणबेलगोला से लगभग 1.5 कोस पहले रुके थे। वहीं नगर सीमा पर एलाचार्यश्री के स्वागत के लिए केन्द्रीय मंत्री श्री प्रकाशचंद सेठी जी पहुँचे।

एलाइरिय-संघेण, जत्ताए सह पविसिदं णयरीइ।
तत्थ सेदवत्थेसुं, विज्जापीठ-बंभयारी दु।।508।।

कलसेहिं सह णारी, विसाल-जणजूहो मंगलवज्जं।

केसरियावत्थेसु, भट्टारगा य विदूहिं सह॥509॥ (जुम्मं)

एलाचार्यश्री ससंघ ने भव्य शोभायात्रा के साथ नगरी में प्रवेश किया। (नगर के बाहर लगभग 2 कि.मी. पर 'श्रमण-महाद्वार' नामक एक सुंदर द्वार बनाया गया था।) वहीं श्वेत वस्त्रों में विद्यापीठ के ब्रह्मचारी द्वार पर सबसे आगे उपस्थित थे। मंगल कलशों के साथ नारी, विशाल जनसमूह, मंगल वाद्य, विद्वानों के साथ केसरिया वस्त्रों में भट्टारक उपस्थित थे।

पुण्णो-कुंभो अग्गे, इमाए दिव्व-सोहा-जत्ताए।

वंदिदो दारे मुणी, पदिट्ठिदेहि सहस्सजणेहि॥510॥

इस दिव्य शोभायात्रा में पूर्ण कुंभ की पालकी सबसे आगे थी। प्रतिष्ठित हजारों लोगों ने द्वार पर मुनिराज की वंदना की।

विशेषार्थ–सर्वप्रथम चारूकीर्ति भट्टारक जी ने एलाचार्यश्री की वंदना की। इसके पश्चात् कोल्हापुर, नरसिंहराजपुरा और मूडबद्री के भट्टारक जी और धर्मस्थल के श्री वीरेन्द्र हेगड़े जी ने एलाचार्यश्री को नमन किया।

पुनः स्वागत समारोह के मुख्य अतिथि केन्द्रीय मंत्री श्री प्रकाशचंद सेठी, संसद सदस्य श्री नन्जे गौड़ा एवं श्री जे.के जैन, कर्नाटक के सहकारिता मंत्री श्री ए.बी. जखनूर, स्थानीय विधायक श्री एच. सी. कंठैया आदि ने एलाचार्यश्री जी की वंदना की। महोत्सव समिति के अध्यक्ष साहू श्रेयांस प्रसाद जी भारतवर्षीय दिगंबर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष सेठ लालचंद हीराचंद आदि अनेक श्रेष्ठियों व हजारों नागरिकों ने मुनिश्री का स्वागत किया। 1.5 घंटे की भव्य शोभायात्रा के बाद 'प्रवचन मण्डप' में यात्रा पहुँची।

अपार-जणसमूहो दु, कज्जकमम्मि विउल-भत्ताण तहा।
सूचेज्ज धम्मसहाइ, कहिदं चारु-भट्टारगेण॥511॥

उस अपार जनसमूह व उनके उत्साह को देखकर भट्टारक चारुकीर्ति जी ने विनम्र शब्दों में एलाचार्यश्री स्तुति करते हुए कहा कि इस धर्मसभा में यह विशाल भक्तों का समूह होने वाले महा-मस्तकाभिषेक के कार्यक्रम में अपार जनसमूह की पूर्व सूचना दे रहा है।

सत्तावीस-जुलाई-उणवीससयअसीदि-सणे ठविदो।
चउमासो तत्थ धम्म-पहावगेलाइरियेणं दु॥512॥

27 जुलाई 1980 में धर्म प्रभावक एलाचार्यश्री ने वहाँ श्रवणबेलगोला में चातुर्मास की स्थापना की।

विशेषार्थ–एलाचार्यश्री के चातुर्मास के अवसर पर विभिन्न राज्यों से श्रेष्ठीगण पधारे। महामस्तकाभिषेक के विधिवत् कार्यक्रम के संचालन हेतु कई उपसमितियों का गठन किया गया। देश में आबाल-वृद्ध सभी में महामस्तकाभिषेक की नवीन चेतना जागृत हो गई।

महुच्छवुग्घाडो णव-फरवरी-एगअसीदि-वस्सम्मि य।
अण्ण-केंदिय-मंतीहि, मुक्खमंतिणा कण्णाडस्स॥513॥

9 फरवरी 1981 को गोमटेश बाहुबली भगवान सहस्राब्दी महोत्सव व महामस्तकाभिषेक महोत्सव का उद्‌घाटन हुआ। वह उद्‌घाटन कर्नाटक के मुख्यमंत्री श्री आर. गुण्डूराव-श्रीमती वरलक्ष्मी गुण्डूराव, अन्य केन्द्रीय मंत्री, केन्द्रीय संचारमंत्री श्री सी.एम. स्टीफन और कर्नाटक के सहकारिता मंत्री श्री एच.सी. श्री कण्ठैया के माध्यम से हुआ।

कहिदं मुक्खमंतिणा, अहिंसा णिस्संगो य उवजोगी।
पह-दंसगसिद्धंतो, पुण्ण-माणव-जादीए चिय॥514॥

मुख्यमंत्री जी ने गोम्मटेश्वर प्रभु के चरणों में पुष्पांजलि अर्पित कर महोत्सव का उद्‌घाटन किया और कहा कि बाहुबली भगवान द्वारा प्रदत्त यह अहिंसा व अपरिग्रह संपूर्ण मानव जाति के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत है व अत्यंत उपयोगी है।

पुण्णदेस-महुच्छवो, णेव मेत्तं धम्म-जादि-एगस्स।
जइणायाराहारिद-पेम्म-सुभावावसियो जगे॥515॥

यह ऐतिहासिक महोत्सव केवल एक धर्म या जाति का नहीं है अपितु संपूर्ण देश का है। जैन आचार पर आधारित प्रेम और सद्‌भाव विश्व में अत्यंत आवश्यक है।

पण्णासम-दिक्खा-दिण-उच्छवायरणं कुणीअ हरिसेण।
छहत्तरि-आउग-सिरी-देस-भूसणस्स सहाए दु।।516।।

इस महोत्सव में भारत गौरव आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज चौथी बार महामस्तकाभिषेक में पधारे थे। इस समय उनकी आयु लगभग 76 वर्ष की थी। सभा में हर्षपूर्वक उनका 50वाँ दीक्षा दिवस मनाया गया।

सड्ढापत्त-मप्पिदं, पोसिय सम्मत्त-चूडामणी तं।
सिद्धंत-चक्की तेण, भासिदो दु विज्जाणंदस्स।।517।।

इस समारोह में इनकी ख्याति एक अन्तर्राष्ट्रीय संत के रूप में सामने आयी। आचार्यश्री को 'सम्यक्त्व चूड़ामणि' घोषित कर समस्त जैन समाज की ओर से उन्हें श्रद्धा-पत्र समर्पित किया गया। पूरी सभा उनके जय-जयकारों से गूंज उठी। इंदौर में मुनिवरश्री को 'सिद्धान्त चक्रवर्ती' की उपाधि समाज द्वारा प्रदान की गई थी। आचार्यश्री ने एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के लिए उस सिद्धांत चक्रवर्ती उपाधि की पुष्टि की।

महामहुच्छवस्स जण-मंगलकलसो वट्टिदो देसम्मि।
सिदंबर-असीदीए, पहाणमंतिणा आढविदो।।518।।

इस बड़े महोत्सव के लिए एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज की प्रेरणा व मार्गदर्शन पग-पग पर मिला। उन्हीं की प्रेरणा से पूरे देश में जनमंगल महाकलश प्रवर्तित हुआ। 29 सितंबर 1980 में इस कलश का शुभारंभ देश की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधीजी के द्वारा हुआ था।

वीसफरवरीइ पत्त-कलसस्स धणुवजोगो कज्जेसुं।
जणकल्लाणस्स तत्थ, घोसिदं एलाइरियेणं।।519।।

यह जनमंगल महाकलश 20 फरवरी 1981 को श्रवणबेलगोला पहुँचा। वहाँ एलाचार्य श्री ने घोषणा की कि इस कलश से प्राप्त धन का उपयोग जनकल्याण के लिए किया जाएगा।

आजीविगाइ सीवण-जंताणि गो देज्ज णारी-णराण।
ओसहि-चिगिच्छय-सिक्खसाला ठाविदा अदिहिगिहा॥520॥

गरीबों को रोजगार देने की योजनाएँ बनने लगीं। आजीविका के लिए नारियों को सिलाई मशीनें और पुरुषों को गायें दीं। एलाचार्यश्री के मार्गदर्शन से औषधालय, चिकित्सालय, अतिथि गृह एवं शिक्षाशालाएँ-शिक्षा के केन्द्र स्थापित किये गए।

श्रवणेबेळगोल में माननीया प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी जी

इगवीस-फरवरीए महाहिसेग-उग्घाडणं करिदं।
इंदिराइ सुमविट्ठी, उद्धाडिगाइ गोम्मटेसे॥521॥

22 फरवरी 1981 से प्रारंभ होने वाले महामस्तकाभिषेक का उद्‌घाटन 21 फरवरी को श्रीमती इंदिरागांधीजी ने किया। उन्होंने गोम्मटेश बाहुबली भगवान् पर हेलीकॉप्टर से सुमनों की वृष्टि की।

गोम्मडेसं अप्पिदुं, दायिदं णारीएलं सामिस्स।
गंधीए भत्तीए, आढविदं संभासणं पुण॥522॥

श्रीमती इंदिरा गांधी जी अपने साथ रजत नारियल लायी थीं। उन्होंने यह नारियल गोमटेश बाहुबली भगवान् को अर्पित करने के लिए स्वामीजी को दिया। पुनः श्रीमती गाँधीजी ने भक्तिपूर्वक अपना भाषण प्रारंभ किया।

भारददेस-विआसो, जइणधम्मस्स उच्चायंसेहिं।
ण मेत्तं धम्मखेत्ते, णवरि साहित्त-कलादीसु वि॥523॥

साधुओं का वंदन-अभिनंदन कर उन्होंने कहा कि जैन धर्म के उच्च आदर्शों से ही भारत देश का विकास है। जैन धर्म के इन आदर्शों से मात्र धर्मक्षेत्र में ही नहीं अपितु साहित्य, कला आदि के क्षेत्र में भी विकास है।

सुसत्ति-सुंदरिमाए, पदीग-बाहुबलि-मुत्ती अवसरो य।
दिट्ठंतो भारदस्स, पाईण-सुह-परंपराए॥524॥

गोम्मटेश बाहुबली भगवान् की यह मूर्ति शक्ति और सौंदर्य का प्रतीक है। यह अवसर भारत की प्राचीन शुभ परंपरा का एक उदाहरण है।

पंचामिय-अहिसेगो, अट्ठोत्तरसहस्सणीर-कलसेहि।
करिदो सुमविट्ठी संतीधारा आरदी पच्छा॥525॥

22 फरवरी का नजारा बिल्कुल अलग था। दूर-दूर तक लोग ही लोग दिखाई दे रहे थे। पहले 1008 कलशों से अभिषेक हुआ, पंचामृत अभिषेक हुआ, पुनः पुष्पवृष्टि एवं शांतिधारा पश्चात् आरती की गई।

बावीस फरवरीए, अहिलासा पगडिदा गहिदुं ताइ।
जिणाहिसेगं तदा हि, पहुच्चाविदं हंदि ढिल्लिं॥526॥

22 फरवरी को ही समाचार प्राप्त हुआ कि श्रीमती इंदिरा जी ने जिनाभिषेक को ग्रहण करने की अभिलाषा प्रकट की है। तब ही वह गंधोदक दिल्ली पहुँचाया गया।

विज्जंत-पुण्णवंता, दूरदंसणेण विस्से पस्सीअ।
जिण-बाहुबलिस्स महा-हिसेगं पुण्णं अज्जेदुं॥527॥

विश्व में विद्यमान सभी पुण्यवानों ने पुण्यार्जन के लिए श्री बाहुबली जिनदेव का महामस्तकाभिषेक दूरदर्शन के माध्यम से देखा।

वस्से बासीदीए, पदिट्ठिदा णव-बाहुबली पडिमा।
महामत्थगहिसेगो, धम्मत्थले मुणि-सण्णिहीइ॥528॥

अनंतर सन् 1982 में एलाचार्यश्री जी की शुभ सन्निधि में धर्मस्थल में भगवान् बाहुबली की नवीन प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई एवं महामस्तकाभिषेक भी संपन्न हुआ।

पणवीस-जणवरीदो, जिणपदिट्ठा चउफरवरी-अंतं।
करिदं मंतण्णासं, विमलसिंधु-विज्जाणंदेहि॥529॥

25 जनवरी से 4 फरवरी तक जिनप्रभु का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव संपन्न हुआ। आचार्यश्री विमलसागर जी मुनिराज एवं एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने प्रतिमा पर मंत्रन्यास किया।

विशेषार्थ–बाद में तुरई के जयघोष के साथ महामस्तकाभिषेक प्रारंभ हुआ। दोपहर में धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेगड़े जी एवं प्रतिमा की प्रेरण ादात्री श्रीमती रत्नम्मा हेगड़े को सम्मानित किया गया व हेलीकॉप्टर से पुष्पवृष्टि की गई।

कण्णाड-मुक्खमंती, कइवय-विदू सेट्ठी उवट्ठिदा य।
भट्टारगा उच्छवे, पणफरवरीइ अहिसेगस्स।।530।।

5 फरवरी के दिन महामस्तकाभिषेक महोत्सव में कर्नाटक के मुख्यमंत्री श्री गुंडूराव जी, कई विद्वान, श्रेष्ठी एवं कोल्हापुर के जैन मठ संस्था के पट्टाचार्य श्री लक्ष्मीसेन भट्टारक उपस्थित थे। बाद में श्री वीरेन्द्र हेगड़े जी ने सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।

कोथलिं च गच्छंतो, मूडबिद्दीए वि किंचियालस्स।
ठाएज्ज संपादणं, अणुसंधाणं पगासणं च।।531।।

ताडपत्तगंथाणं, आढवेदुं जोयणा णिम्मिदा हु।
गुरु-परमस्सेण रमा-राणीसोहसंठाणं चिय॥532॥
साहु-संतिपसादेण, ठाविदं मुणि-पेरणाइ खेत्तम्मि।
संतिदेवी-भवणं च, णिम्माविदं णेमचंदेण॥533॥ (तिगं)

पुनः वहाँ से कोथली की ओर विहार किया। कोथली जाते हुए वे कुछ समय के लिए मूड़बिद्री ठहरे। वहाँ ताड़पत्र ग्रंथों के अनुसंधान, संपादन और प्रकाशन को प्रारम्भ करने की योजनाएँ बनने लगीं। गुरुवर पूज्य एलाचार्यश्री विद्यानंदजी के परामर्श से साहू शांतिप्रसाद जी ने मूड़बिद्री में रमारानी शोध संस्थान की स्थापना की थी। मुनिश्री की प्रेरणा से ही क्षेत्र पर श्री नेमचंद जैन जौहरी दिल्ली ने 'शान्तिदेवी भवन' का निर्माण कराया।

मूडबिद्दीए तदा, कराविदो सेट्ठो जिण्णुद्धारो।
भत्तीए सावगेहिं, पाईण-जिण-गुरु-वसदीणं॥534॥

तब मूड़बिद्री में श्रावकों के द्वारा भक्तिपूर्वक प्राचीन जिनमंदिर व गुरुवसति का श्रेष्ठ जीर्णोद्धार कराया गया।

बासीदीए करिदो, चउमासो कोथलीइ मुणिंदेण।
तदा हि एगुत्तरसद-पवयणेहि णाणमिय-वरिसा॥535॥

सन् 1982 का चातुर्मास एलाचार्यश्री ने कोथली में ही किया। तब एलाचार्यश्री ने 101 प्रवचन दिये। उन प्रवचनों से ज्ञानामृत की वर्षा संपूर्ण कोथली में हुई।

सोहग्गवदि-णारीहिं, णाणपदीग-दीवेहि सह जत्ता।
मुणिणिवासादु पवयण-थलंतं आयोजिदा तदा॥536॥

9 अक्टूबर को दोपहर 2 बजे से सौभाग्यवती नारियों ने ज्ञान का प्रतीक दीपक हाथ में लेकर मुनि-निवास से प्रवचन-स्थल तक एक शोभायात्रा आयोजित की।

ण सुविहाजणग-ठाणं, गमणागमणस्स तं सासणेणं।
विसाल-जण-जूहं पेच्छंतेण सुववत्था करिदा॥537॥

गमनागमन की दृष्टि से कोथली स्थान सुविधाजनक नहीं था अतः पूज्य एलाचार्यश्री के चातुर्मास में विशाल जन-समूह को देखते हुए शासन (कर्नाटक राज्य परिवहन मंडल) ने बस आदि की अच्छी व्यवस्था कर दी। महाप्रभावना से युक्त वह चातुर्मास सभी के लिए अविस्मरणीय रहा।

कुंभोज-बाहुबलिम्मि, उणवीस-सय-तेआसी-वस्सादु।
चउअसीदि-वस्संतं, होज्जा अइतिव्व-संघस्सो॥538॥

कोथली के ऐतिहासिक चातुर्मास के पश्चात् एलाचार्यश्री का मंगल विहार कोल्हापुर जिले के कुंभोज ग्राम स्थित बाहुबली क्षेत्र के लिए हुआ था। कुंभोज बाहुबली में 1983 से 1984 तक क्षेत्र संरक्षण हेतु बहुत तीव्र संघर्ष हुआ।

कस्स वि अण्णदियंबर-मुणिस्स णेव दंसिदो साहसो दु।
संपइयालम्मि खेत्त-रक्खाए परंपराए य॥539॥

वर्तमान काल में क्षेत्र रक्षा व परंपरा की सुरक्षा के लिए किन्हीं भी अन्य दिगंबर साधु का वह साहस दिखाई नहीं देता जो उस समय एलाचार्यश्री विद्यानंदजी का देखने को मिला।

बहुअ-रायणीदि-दलं, भज्जा य महरट्ठ-मुक्खमंतिस्स।
सम्मिलिदा अहिगारी, संसदा संपदाइग-जणा॥540॥

[शासकीय सत्ता का दुरुपयोग कर यहाँ श्वेतांबर-दिगंबर के झगड़े को सांप्रदायिक आयाम देने की कोशिश की जा रही थी।] इसमें बहुत से राजनैतिक दल, महाराष्ट्र तत्कालीन मुख्यमंत्री की पत्नी श्रीमती शालिनी ताई, कई शासकीय अधिकारी, महाराष्ट्र के सांसद व कट्टर सांप्रदायिक लोग सम्मिलित थे।

सरयू-दफ्फरीए, सहायो अविम्हरणीयातुल्लो।
इह तिव्वसंघस्सम्मि, पुण्ण-भत्तीइ समप्पणेण।।541।।

इस तीव्र संघर्ष में मुनिश्री की अनन्य भक्त श्रीमती शरयू दफ्तरी जी का पूर्ण भक्ति व समर्पण से सहयोग अविस्मरणीय व अतुलनीय रहा।

तत्थ धम्मविरोहीहि, उवद्दवो करिदो असोहणीयो।
खुद्दचित्तेण विज्जाणंदेणं अणसणं करिदं।।542।।

वहाँ धर्म विरोधियों ने अशोभनीय उपद्रव किया। तब एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज का चित्त बहुत खिन्न हुआ। तब उन्होंने अनशन किया।

विशेषार्थ–दरअसल आचार्यश्री समंतभद्रजी पर उपद्रव करके शिवाजी का पुतला बाहुबली क्षेत्र की पहाड़ी पर खड़ा करने का षड्यंत्र था। दिगंबर जैन क्षेत्र पर गैरकानूनी तरीके से पुतला खड़ा करने की तैयारियाँ थीं। इस अन्याय व गैरकानूनी कार्यवाही को नीचे से लेकर ऊपर तक के सभी सरकारी अफसरों का पूरा-पूरा समर्थन था। दिगंबर जैन क्षेत्र व समाज पर खुले आम अन्याय हो रहा था।

एगस्सिणुत्तरद्धे, पढमुववासो एलाइरियेणं।
एयारसादो अण्ण-चागो दु समंतभद्देणं।।543।।

1 अक्टूबर 1983 को एलाचार्यश्री ने प्रथम उपवास किया। 11 अक्टूबर से आचार्यश्री समंतभद्रजी ने अन्न का त्याग शुरू कर दिया।

दक्खिण-भारद-सहाइ, अज्झक्खा-सरयूदफ्फरीइ सह।
हरिजण-णारीहिं अवि, अमज्जादिदणसणं करिदं॥544॥

दक्षिण भारत सभा की अध्यक्षा श्रीमती शरयू दफ्तरी के साथ नेज गाँव की हरिजन महिलाओं ने भी अमर्यादित अनशन शुरू कर दिया।

वत्ता कुणिदा सासण-अहिगारीहि एलाइरियेण सह।
पढमुववास-समत्तो, किण्णु समस्सा-णिवारणं ण॥545॥

परिणामत: शासन अधिकारियों ने बाहुबली में आकर एलाचार्य जी के साथ बातचीत की। एलाचार्यश्री से चर्चा के बाद पहाड़ी पर जो सशस्त्र पुलिस वाले थे उन्हें अन्यत्र भेजा गया। एलाचार्यश्री का पहला उपवास समाप्त हुआ। किन्तु समस्या का निवारण नहीं हुआ।

पहाणा खिप्पिदा जिण-बाहुबली-विसाल-मुत्तीए चिय।
चप्पडी आलुंखिदा, भय-जुद-परिसरो णिम्मिदो य॥546॥

भगवान् बाहुबली की विशाल मूर्ति पर बहुत से पत्थर फेंके, पटाखे जलाए गए। उस परिसर को भय युक्त निर्मित कर दिया गया।

तदा विदियं अणसणं, आरंभिदं च एलाइरियेणं।
समभावेणं सोलसणवंबरादो णो कोहेण॥547॥

तब एलाचार्यश्री ने 16 नवंबर से दूसरा अनशन शुरू कर दिया। यह उपवास क्रोध से नहीं, समत्व परिणाम से युक्त होकर किया था।

घडणा-परिक्खणस्स दु, पडिणिहि-मंडलो य पेसिदो तत्थ।
इंदिराइ कुंभोजे, मुणिंद-अणसण-समत्तीए॥548॥

एलाचार्यश्री के इस दूसरे अनशन से पूरे देश में खलबली मच गई। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधीजी द्वारा घटना के परीक्षण के लिए एक प्रतिनिधि मंडल नियुक्त किया गया। यह प्रतिनिधि मंडल घटना की

जानकारी व मुनिराज के अनशन की समाप्ति के लिए कुंभोज बाहुबली पहुँचा।

विशेषार्थ–उन्होंने प्रतिनिधि मंडल में चार सांसदों श्री अशोक गहलोत, श्री जे.के. जैन, श्री भिकूराम जैन तथा राज्यसभा सदस्य श्री डी.जी. पाटिल को नियुक्त किया।

एगवीस-दिसंबरे, अणसणसमत्तीए घोसणा करिदा।
विसेस-णिवेदणेणं, पहाणमंति-इंदिराए दु॥549॥

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा जी के विशेष निवेदन से एलाचार्यश्री ने 21 दिसंबर 1983 को अपने अनशन समाप्ति की घोषणा की।

विशेषार्थ-समस्त समाज ने अपना हर्ष प्रकट किया और साथ ही प्रधानमंत्री जी को निम्न पत्र भेजा–

Smt. Indira Gandhi

Prime Minister, New Delhi

Jain Samaj is very thankful to you for favour of sending your representatives a Central Minister and Parliament Member Shri Bhikooram Jain and Shri J.K. Jain to Kumbhoj Bahubali for requesting Holy Saint Vidyanand ji to end the fast. We further request you to solve the problem of Kumbhoj Bahubali at the earliest.

सहस्सजणा आवीअ, एलाइरिय-दंसणत्थं तदा हि।
बावीस-दिसंबरम्मि, गहिदो आहारो पहादे॥550॥

उस समय एलाचार्यश्री के दर्शन के लिए हजारों लोग वहाँ आए। 22 दिसंबर 1983 को सुबह उन्होंने आहार ग्रहण किया।

तिफरवरीइ देविदं, तदा मुक्खमंतिणा महरट्ठस्स।
बाहुबलिम्मि छत्तपदि-सिवा-सुमुत्ति-संठावणस्स॥551॥

अग्गह-मुज्झेज्ज सयं, णिवारिदा हु इंदिरा-गंधीए।
समस्सा विसिट्ठा सग-विसिट्ठ-बुद्धीइ वियारित्तु॥552॥ (जुम्मं)

तब 3 फरवरी 1984 को महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ने आदेश दिया कि मराठा समाज बाहुबली में छत्रपति शिवाजी का पुतला स्थापित करने का आग्रह छोड़ दे, उन्हें अन्य बिठाएँ। इस प्रकार प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधीजी ने अपनी विशिष्ट बुद्धि से विचारकर स्वयं विशिष्ट समस्या का निवारण किया।

वीसम-सयद्दीए दु, महाण-मुणिंदेण खेत्त-रक्खाइ।
जं करिदं तं सया हि, अविम्हरणीयं धम्मीहिं॥553॥

20वीं शताब्दी के महान् मुनींद्र श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने क्षेत्र रक्षा के लिए जो किया, वह सदा ही धर्मात्माओं के द्वारा अविस्मरणीय है।

रट्ठीय-गुरुकुल-दिव्ववदाण-समारोहो उल्लासेण।
किदण्हु-भावेहिं णिय-गुरुं पडि आयोजिदो तत्थ॥554॥

फरवरी सन् 1984 को कुंभोज में अपने गुरु के उपकार के प्रति कृतज्ञ भावों से एलाचार्य श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने राष्ट्रीय स्तर पर एक गुरुकुल दिव्यावदान समारोह अति उल्लासपूर्वक आयोजित किया।

कुंभोजम्मि बाहुबलि-खेत्ते पदिट्ठिदा तस्स पडिमा दु।
ठाविदं सोहपीढं, सूरि-देसभूसणण्णाए॥555॥

श्री समंतभद्र मुनिराज ने कोल्हापुर जिले के कुंभोज ग्राम के बाहुबली क्षेत्र में आचार्यश्री देशभूषण जी की आज्ञानुसार उन भगवान बाहुबली की भव्य उदात्त प्रतिमा की प्रतिष्ठा की और अनेकांत शोधपीठ की स्थापना की।

गुरुकुल-पद्धती पुणण्णवा करिदा मुणि-समंतभद्देण ।
अट्ठारस-ठाणेसुं, संचालिदा गुरुकुलादी य॥556॥

(वहाँ एलाचार्यश्री ने अपने उद्‌बोधन में बताया कि) श्री समंतभद्र महाराज ने गुरुकुल पद्धति पुनर्जीवित कर दी। उन्होंने कारंजा, बाहुबली, खुरई, स्तवनिधि आदि 18 स्थानों पर गुरुकुल व हाईस्कूल संचालित किए।

देसस्स विदू गुरुकुल-ण्हादगुवट्ठिदा जिणिंदकुमारो।

तयदिवसायोजणम्मि, सम्माणिदा सेवाभावी।।557।।

देश के विद्वान व गुरुकुल के स्नातक इस त्रिदिवसीय आयोजन में उपस्थित हुए। यहाँ हिन्दी के ख्यातिप्राप्त साहित्यकार जैनेंद्र कुमार जी (एवं महाराष्ट्र राज्य के साहित्य व संस्कृति मंडल के अध्यक्ष सुरेंद्र बारलिंगे भी) उपस्थित थे एवं गुरुकुल के लिए सेवाभावी लोगों को सम्मानित भी किया गया।

गुरुकुल-गोरवुवाहीए चिय गारविदा माणिगचंदा।

गुरुकुल-वच्छलाए य, गजाबेणा णिय-सेवाए।।558।।

अपना संपूर्ण जीवन गुरुकुल को समर्पित करने वाले ब्र. पं. माणिकचंद चवरे और पं. माणिकचंद भिसीकर को ''गुरुकुल-गौरव'' की उपाधि से गौरवान्वित किया गया। और अपनी सेवा के लिए पं. गजाबेन को ''गुरुकुल-वत्सला'' की उपाधि से सम्मानित किया गया। इनके अतिरिक्त गुरुकुल के लिए अपनी सेवा प्रदान करने वाले अन्य व्यक्तियों का सम्मान भी किया गया।

मुंबई-बोरीवल्लि-खेत्ते चिय चउमासो संपण्णो।

महा-आयोजण-जुदो, अच्चंत-धम्मपहावणाइ।।559।।

1984 का एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज का चातुर्मास मुंबई बोरीवली त्रिमूर्ति में संपन्न हुआ। यह चातुर्मास अत्यंत प्रभावना और महाआयोजन से युक्त था।

उणवीस-सय-पणसीदि-वस्से इंदोरे विराइदो सो।
तत्थ आयोजिदो चिय, सट्ठि-पुत्ति महुच्छवो तस्स।।560।।

सन् 1985 में एलाचार्यश्री इंदौर में विराजमान थे। वहाँ उनका षष्ठिपूर्ति महोत्सव आयोजित किया गया।

विशेषार्थ—अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित षष्ठिपूर्ति समारोह 22 अप्रैल 1985 से 21 अप्रैल 1986 तक विभिन्न कार्यक्रम संपन्न होंगे एतदर्थ एक समिति का गठन हुआ।।

संवच्छरिय-अवही दु, सावयायार-वस्स-रूवे तदा।
गामेसु णयरादीसु, आयोजिदा घोसिदमिदं दु।।561।।
अणेग-पदंसणी गोट्ठी वक्खाणाइ-कज्जाणि देसे।
अहिंसा-पसारस्स य, सागाहार-णीदि-धम्माण।।562।।

तब घोषणा की गई कि इस सांवत्सरिक अवधि को श्रावकाचार वर्ष के रूप में हर गाँव, नगरादि में मनाया जाएगा। इस अवसर पर देश में अनेक प्रदर्शनी, गोष्ठी, व्याख्यानादि कार्य हुए। अहिंसा के प्रसार के लिए शाकाहार, नीति व धर्म के कार्य हुए।

सरयू-दफ्फरीए दु, सागाहारागरिसग-पदंसिणी।
णयणाहिरामा तदा, दंसिदा हु सहस्सजणेहिं।।563।।

श्रीमती शरयू दफ्तरी ने शाकाहार की आकर्षक व नयनाभिराम प्रदर्शिनी तैयार की। उस शाकाहार प्रदर्शिनी को हजारों लोगों ने देखा।

सागाहारो गहिदो, सहस्साहियजण-पस्संतेहिं च।
जम्हा सागाहारो, भारदीय-सक्किदि-मूलो हु ।।564।।

देखने वाले हजारों से ज्यादा लोगों ने शाकाहार ग्रहण किया क्योंकि शाकाहार भारतीय संस्कृति का मूल है।

अहिंसाथलम्मि वीरबिंब-ठावणाइ करिदो विरोहो।
उवद्दविदं अवि तत्थ, जइणधम्मविद्देसीहिं दु॥565॥
जइण-समायमुक्खेहि, सुणिय लिहिदं पत्तं आइरियेण।
राजीवगंधी गहीअ, करं खालिय अइविणयेणं॥566॥
णमंतो कहीअ जइण-समायो ण चिंतेज्ज इमे विसये।
विस्सपुज्ज-मंगल्लो, महावीरजिणबिंबो जं दु॥567॥

सन् 1985 में जब अहिंसास्थल दिल्ली में भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा स्थापना का निर्णय किया गया तब जिनधर्म विद्वेषियों ने उसका विरोध किया और वहाँ उपद्रव भी किया। जब जैन समाज के प्रमुख जनों ने यह समाचार सुना तो वे शीघ्र आचार्य श्रीविद्यानंद जी मुनिराज के चरणों में पहुँचे। आचार्यश्री ने संपूर्ण वार्ता जानकर एक पत्र तत्कालीन प्रधानमंत्री माननीय श्री राजीव गांधी जी के लिए लिखा। उन्होंने आचार्यश्री का वह पत्र हाथ धोकर अत्यंत विनम्रतापूर्वक नमन करते हुए ग्रहण किया। पुनः पत्र पढ़कर कहा कि जैन समाज इस विषय में बिल्कुल चिंता न करें, आचार्यश्री को मेरा नमन निवेदित कर कहियेगा कि वे निश्चिंत रहें, महावीर भगवान् का वह बिंब विश्वपूज्य व सभी के लिए मंगलकारी है।

विशेषार्थ–सन् 1985 में दिल्ली में अहिंसास्थल में भगवान् महावीर स्वामी की प्रतिमा स्थापना की घोषणा पर जिनधर्म विद्वेषियों ने उसका विरोध किया और वहाँ उपद्रव भी किया। उस समय आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज इंदौर में विराजमान थे। जब जैन समाज के प्रमुख लोग इस विवाद के निवारण हेतु उनके पास पहुँचे। तब स्थिति की गंभीरता को देख आचार्यश्री ने तत्कालीन प्रधानमंत्री माननीय श्री राजीवगांधीजी के लिए एक पत्र लिखा। जैसे ही उन्हें ज्ञात हुआ कि आचार्यश्री का पत्र

आया है वे खड़े हुए, उन्होंने हाथ धोकर विनम्रतापूर्वक उस पत्र को अपने मस्तक से लगाया। उसमें आचार्यश्री ने अहिंसा स्थल के विषय में लिखते हुए कहा कि मैं अभी इंदौर हूँ, शीघ्र दिल्ली आ रहा हूँ, तब तक आप सम्हाल लेना। प्रत्युत्तर में माननीय प्रधानमंत्री जी ने कहा कि आचार्यश्री को मेरा नमोस्तु निवेदित करियेगा और कहियेगा कि आचार्यश्री निश्चिंत रहें, वे आराम से दिल्ली आएँ तब तक सब सकुशल रहेगा। मार्च 1986 में इंदौर से आचार्यश्री ने विहार किया और शीघ्र दिल्ली आ गए। दिल्ली में गुलमोहर पार्क में वे मुल्तान जैन परिवार श्री वीरेंद्र जैन, मंजू जैन जी के यहाँ ठहरे। तभी श्रीमती तेजी बच्चन (अभिनेता अमिताभ बच्चन की माँ) आचार्यश्री के चरणों में पहुँचीं एवं बराबर में ही अपने घर पर आ. श्री को अति निवेदन व विनम्रतापूर्वक लेकर आयीं। वहीं बैठकर प्रधानमंत्री श्री राजीवगांधी जी से चर्चा हुई एवं निर्णय हुआ कि अहिंसास्थल पर विराजमान भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा यथावस्थित रहेगी।

उणवीस-सय-छलसीअ-वस्से पंचकल्लाणपदिट्ठा हु।
चउवीस-मंदिराणं, मदण-बाहुबलि-मुत्तीए य॥568॥

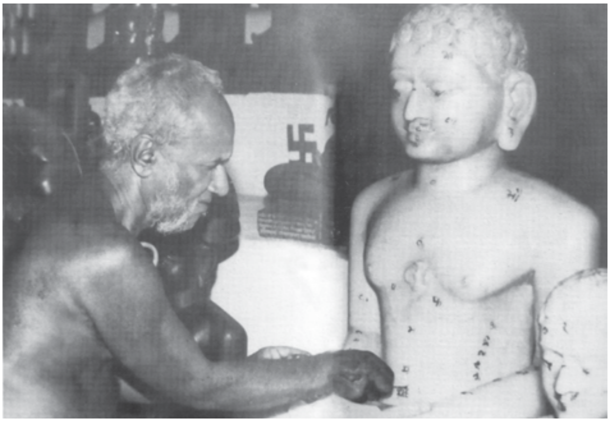

गोम्मडगिरिम्मि तदा हि, सूरि-विमलसायर-उवट्ठिदीए।
तहा एलाइरियस्स, अट्ठादु तेरसमच्चंतं।।569।। (जुम्मं)

8 मार्च से 13 मार्च तक 1986 में इंदौर में नवनिर्मित तीर्थक्षेत्र गोम्मटगिरि पर आचार्यश्री विमलसागर जी एवं एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज की उपस्थिति में 24 मंदिर और कामदेव बाहुबली की मूर्ति की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा की गई।

मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल वोरा

लक्खाहिया सावया, उवट्ठिदा पणकल्लाणपूयाइ।
मुक्खमंति-रज्जवाल-आदी बहु-समायसेट्ठी वि।।570।।

पंचकल्याणक पूजा में लाखों से अधिक श्रावक मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल वोरा, महामहिम राज्यपाल व बहुत से समाजश्रेष्ठी आदि भी उपस्थित थे।

सागाहारो दत्तो, जइण-समायेणं पुण्णविस्सस्स।
सुसिद्धंतो अहिंसा, बिड़ला- सेट्ठिणा भासिदं दु।।571।।

उद्योगपति श्रेष्ठी श्री के.के. बिड़ला जी ने उस समारोह में कहा कि जैन समाज ने संपूर्ण विश्व को शाकाहार दिया, अहिंसा का यह सिद्धांत भी विश्व को जैन समाज ने ही दिया है।

उद्योगपति व संसद श्री कृष्ण कुमार बिरला

णाणीजइलसीहेण, सहस्साहिय-सावगेहि सह गडुअ।

सवणबेलगोलं पत्थीअ ढिल्लिं च आगमेदुं।।572।।

दिल्ली के हजारों श्रावकों के साथ धर्मानुरागी महामहिम राष्ट्रपति श्री ज्ञानी जैलसिंह जी ने श्रवणबेलगोला जाकर पूज्य एलाचार्यश्री को दिल्ली आने के लिए प्रार्थना की थी।

राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह

पुणो सावगेहिं जह, ढिल्ली-महापोरो आगच्छीअ।

एलाइरिय-णियडम्मि, ढिल्ली-आगमण-पत्थणाइ।।573।।

पुनः इंदौर में 1986 में दिल्ली के बहुत श्रावकों के साथ दिल्ली के महापौर श्री महेन्द्रसिंह जी दिल्ली आगमन की प्रार्थना के लिए एलाचार्यश्री के निकट आए। और एलाचार्यश्री ने भी उन सभी को स्वीकृति प्रदान की।

इंदोरादो ढिल्लिं, पलोट्टंतो चिय फिरोजाबादं।
गच्छीअ णिवेदणम्मि, मुणी चंदवाड-खेत्तं अवि॥574॥

इंदौर से दिल्ली लौटते हुए पूज्य मुनिवरश्री फिरोजाबाद की समाज के निवेदन पर फिरोजाबाद पहुँचे और वे चंद्रवाड क्षेत्र भी गए।

ठविदा चंदणयरम्मि, फलिह-पडिमा लद्धचंदप्पहस्स।
चंदवाडखेत्तादो, एलाइरियो ठाएज्जा य॥575॥
बेदिणं हु गवेसिदं, इदिवित्तं रइधूकविणा लिहिदं।
साहिच्च-मत्थ कहिदं, तदा गुरु-एलाइरियेणं॥576॥ (जुम्मं)

फिरोजाबाद में चंद्रवाड क्षेत्र से श्री चंद्रप्रभ भगवान् की प्रतिष्ठित स्फटिकमणि की प्रतिमा प्राप्त हुई थी जो चंद्रनगर फिरोजाबाद में चंद्रप्रभ दिगंबर जैन मंदिर में स्थापित है। तब एलाचार्य गुरुदेव एक दिन के स्थान पर दो दिन वहाँ ठहरे, पुनः वहाँ का इतिहास खोजा और बताया कि रइधू कवि ने इसी स्थान पर बहुमूल्य साहित्य रचा।

चंदवाड-णिवासीण, विअरिदं मिट्ठण्णं जइणेहिं च।
जिण्णोद्धारस्स तदा, इग-लक्ख-धणरासी लद्धा॥577॥

एलाचार्यश्री के संकेतानुसार जैन समाज के लोगों ने चंद्रवाड के निवासियों को मिठाई बाँटी और तब लगभग एक लाख रुपये की धनराशि जीर्णोद्धार के लिए एकत्रित हो गई।

वस्सिग-मेलयस्स णिण्णयो कुणिदो य मुणि-णिद्देसेणं।
बे-अक्टूबरे तदा, समायेण जस्सिं अज्जं वि॥578॥

लक्खजणा मेलंते, उत्तर-पदेस-सासणेणं तत्थ।

णिम्माविद-मदिहिगिहं, जणकल्लाण-सुभावणाए।।579।। (जुम्मं)

मुनिश्री के निर्देशानुसार जैन समाज के द्वारा दो अक्टूबर को वार्षिक मेले का निर्णय किया गया। जिस मेले में आज भी लाखों लोग मिलते हैं। बाद में उत्तरप्रदेश सरकार के द्वारा जनकल्याण की भावना से वहाँ एक अतिथिगृह निर्माण भी कराया गया।

अट्ठावीस-जूणम्मि, पविसिदा ढिल्ली पहुच्चिदं हंदि।

रत्त-दुग्गं दु मुणिणा, विसाल-सोहा-जत्ताइ जह।।580।।

एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने 28 जून को दिल्ली में प्रवेश किया और अगले दिन विशाल शोभायात्रा के साथ उन्होंने लालकिला मैदान में प्रवेश किया।

लालकिले पर महापौर श्री महेन्द्र सिंह साथी एवं
पूर्व सांसद श्री जे.के. जैन

विशेषार्थ—यह शोभा यात्रा 29 जून को प्रातः 6:20 बजे मॉडल टाउन मंदिर से प्रारंभ होकर पहाड़गंज, सदरबाजार, चांदनी चौक होती हुई प्रातः 8:30 बजे लाल किला पर पहुँची थी।

महातित्थोव्व णयरी, भासीअ जुत्ता अपारभत्तेहि।

अद्धलक्खजणेहिं दु, कुव्विदं सागदं दुग्गम्मि।।581।।

पचास हजार से अधिक व्यक्तियों ने मुनिश्री का लालकिला पर स्वागत किया। उस समय अपार भक्तों से घिरी वह नगरी महातीर्थ के समान ही प्रतिभासित हो रही थी।

संबोहिदा सहा चिय, कत्तव्वं पडि जागरिआ करिदा।

अहिगारं णादि णरो, किण्णु णेव सगकत्तव्वं दु।।582।।

एलाचार्यश्री ने संपूर्ण सभा को संबोधित किया और उनके कर्त्तव्यों के प्रति उन्हें जागरुक किया। उन्होंने कहा कि धर्म शब्द का अर्थ है हर व्यक्ति अपना कर्त्तव्य निभाये। कर्त्तव्य विमुखता का आशय है धर्म-विमुखता। व्यक्ति अधिकारों को तो जानता है किन्तु अपने कर्त्तव्य को नहीं जानता।

देसमुहेणं लिहिदं, णिम्माविदो दु मोहणजोदडो य।

जइणेहिं हि सो पुणो, जइण-वावार-केंदो वरो।।583।।

एलाचार्यश्री ने बताया कि श्री के.पी.आर. देशमुख जी ने अपनी पुस्तक Indus Civilisation Rigveda and Hindu Culture में लिखा है कि मोहनजोड़दो का निर्माण जैनों ने ही किया था। यह जैनों का श्रेष्ठ व्यापार केन्द्र था।

देसस्सत्थववत्था, जइणेसु णिब्भरा पणसहस्सादु।
दससहस्सवस्संतं, लिहिदं दु महादेवणेणं।।584।।

मद्रास के विद्वान् श्री महादेवन ने अपनी पुस्तक में लिखा कि पाँच हजार से दस हजार वर्ष तक देश की अर्थव्यवस्था जैनों पर ही निर्भर थी।

जवाहर-लालेणं पि, लिहिदं देसस्स मूलणिवासी हु।
जइणा णिच्छयेण तं, देसं पडि अहियकत्तव्वं।।585।।

एलाचार्यश्री ने बताया कि जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक Discovery of India में लिखा कि निश्चय से देश के मूलनिवासी जैन ही होते हैं इसलिए हमारा देश के प्रति कर्त्तव्य अधिक है।

चउमास-संठावणा, कुविदा कुंदकुंदभारदीए।
आवीअ मुक्ख-अदिही, उवरट्ठवदि-वेंगडरमणो।।586।।

20 जुलाई 1986 को एलाचार्यश्री ने चातुर्मास की स्थापना कुंदकुंद भारती में की। वहाँ मुख्य अतिथि के रूप में महामहिम उपराष्ट्रपति श्री आर. वी. वेंकटरमन जी पधारे।

महामहिम उपष्ट्रपति श्री आर. वेंकटरामन

सव्व-भारद-वासीण, हिअयेसु णिम्माविदं वर-ठाणं।
एलाइरियेणं णिय-णाण-पवयणेहि विहारेण।।587।।

सयायारं अहिंसं अज्झप्पिय-णइदिग-मुल्लं जणेसु।
वड्ढीअ णिय-जत्ताइ, रिसि-मुणि-परंपरा-पडिणिही॥588॥ (जुम्मं)

उन्होंने अपने उद्‌बोधन में कहा कि एलाचार्यश्री ने अपने ज्ञान से, प्रवचनों से एवं विभिन्न स्थानों पर विहार कर सभी भारतवासियों के हृदयों में अपना श्रेष्ठ स्थान बनाया है। अपनी यात्रा से मुनिश्री ने लोगों में सदाचार, अहिंसा, आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों को वृद्धिंगत किया। मुझे गर्व है कि ये ऋषि-मुनि परंपरा के प्रतिनिधि हैं।

महप्प-गंधिम्मि जइण-धम्मस्स विसिट्ठ-पहावो य तस्स।
गुरु-रायचंद-जइणो, जेण दु अहिंसा-विस्सासी॥589॥

उन्होंने आगे कहा कि महात्मा गांधी के जीवन में जैन धर्म का विशिष्ट प्रभाव था। उनके गुरु श्री रायचंदजी जैन थे जिससे वे अहिंसा धर्म के विश्वासी हुए।

अहिंसा-पालणस्स हि, कुव्वंति जइणसाहू चउमासं।
असंतीइ वि संति-मणुभवेज्ज तित्थाइ-कारणेण॥590॥

पुनः मुनिराज ने उपदेश दिया कि जैन साधु अहिंसा धर्म के पालन के लिए ही चातुर्मास करते हैं। भारत में होने वाले हमारे तीर्थंकर, अरिहंत, संतादि के कारण ही हम अशांति में भी शांति का अनुभव करते हैं।

उवदिसिदं मुणिंदेण, परिसरे ण ठाणं ठविदुं पदं पि।
तं सीमाए बहिरं, ठाइत्तु हि सुणेज्ज पस्सेज्ज॥591॥

उस दिन उस परिसर में पैर रखने के लिए भी जगह नहीं थी। अतः लोग सीमा से बाहर खड़े होकर ही कार्यक्रम सुन रहे थे व देख रहे थे।

विशेषार्थ–1986 में कुंदकुंद भारती में एलाचार्यश्री का यह प्रथम चातुर्मास था।

सहा जम्मजयंदीइ, भाऊराव-पाडिलस्स खलु तत्थ।
अट्ठारस-जुलाइम्मि, एलाइरिय-सण्णिहीए हु।।592।।
महरट्ठ-मुक्खमंती, अट्ठारस-संसदा विधायगा वि।
ढिल्लीइ पमुहा-जणा, आदी उवट्ठिदा सहाए।।593।। (जुम्मं)

18 जुलाई 1986 में एलाचार्यश्री के सान्निध्य में भाऊराव पाटिल की जन्म जयंती की सभा आयोजित की गई। उस सभा में कुंदकुंद भारती में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री एस.बी. चव्हाण, महाराष्ट्र के 18 सांसद व विधायक आदि एवं दिल्ली के प्रमुख लोग उपस्थित थे।

महाराष्ट्र मुख्यमंत्री व अन्य

पंचसद-विज्जालया, कलालया महाविज्जालया तह।
ठविदा सिक्खा-संथा, भाऊरावपाडिलेणं च।।594।।

एलाचार्यश्री ने भाऊराव पाटिल जी जैन के विषय में जो बताया वह सभी को विस्मित करने वाला था। भाऊराव पाटिलजी ने 500 विद्यालय, महाविद्यालय, कलासंस्थान एवं श्रेष्ठ शिक्षासंस्था की स्थापना की।

सिक्खाए खेत्तम्मि दु, ताइ संथाइ सिक्खत्थीण तदा।
सिक्खा-कंती कुणिदा, लक्खेहि लहिदा वर-सिक्खा।।595।।

शिक्षा के क्षेत्र में उस संस्था ने विद्यार्थियों के लिए शिक्षा की क्रांति की। लाखों बच्चों ने उस संस्थान से श्रेष्ठ शिक्षा प्राप्त की।

विशेषार्थ—एलाचार्यश्री के उपदेशों का यह प्रभाव हुआ कि महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री जी, जो सभा में उपस्थित थे, ने कहा कि ''कर्मवीर भाऊराव पाटिल की जन्म शताब्दी प्रान्तीय स्तर पर आयोजित करने हेतु केबिनेट में बात रखकर मैं इस कार्य के लिए एक संस्था का गठन करूँगा'' उन्होंने कहा वे इस संबंध में प्रधानमंत्री श्री राजीवगांधी जी से भी चर्चा करेंगे।

राजस्थान राज्यपाल महामहिम श्री बसन्त दादा पाटिल

वसंतदादापाडिल-रायट्ठाण-मण्ण-रज्जवालेण।
मुणिणा सह वियारं, कडुअ कहिदं तं णमंतेण॥596॥
सासणस्स कत्तव्वं, जम्मसयद्दि-उक्कित्तणं दु तस्स।
तव सुमग्ग-दंसणस्स, तुज्झ किदण्हू वयं सया हि॥597॥

इसी संबंध में राजस्थान के राज्यपाल श्री वसन्तदादा पाटिल जी ने एलाचार्यश्री के साथ 20 अगस्त को विचार करके पुनः उनको नमस्कार

करते हुए कहा कि कर्मवीर भाऊराव पाटिल जैन जैसे देश के महान् व्यक्तित्व का जन्मशताब्दी महोत्सव मनाना शासन का कर्त्तव्य है। आपके श्रेष्ठ मार्ग-दर्शन के लिए हम सदा ही आपके कृतज्ञ रहेंगे।

अट्ठारस-सिदंबरे, जम्मसयद्दि-उच्छवो पारंभो।
लोगसहज्झक्खेणं, बलरामेण मुणि-सण्णिहीइ॥598॥

18 सितंबर 1986 को एलाचार्यश्री के सान्निध्य में लोकसभा अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ ने भाऊराव पाटिल के जन्म शताब्दी का उत्सव प्रारंभ किया था।

लोकसभा अध्यक्ष डॉ. बलराम जाखड़ व सुश्री निर्मला देशपांडे

अट्ठवीस-मइम्मि उणवीस-सय-सत्तासीदि-ईसवीइ।
सूरि-देसभूसणेण, देहो उज्झिदो समत्तेण।।599।।

28 मई 1987 को एक दुखद समाचार ज्ञात हुआ। भारत गौरव आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज ने समत्व परिणामों के साथ देह का परित्याग कर दिया।

इगतीस-मइम्मि पुणो, सद्धंजली अप्पिदा मुणिंदेण।
कुंदकुंदभारदीइ, आयोजिद-विसाल-जण-सहाइ।।600।।

31 मई 1987 को कुंदकुंद भारती दिल्ली में एक विशाल जनसभा का आयोजन हुआ जिसमें मुनिवरश्री ने अपने गुरु को श्रद्धांजलि अर्पित की।

मुणी सुसील-कुमारो, खुल्लयो धम्माणंदो सहाए।
सद्धासुमण-मप्पिदुं, उवट्ठिदो देसभूसणस्स।।601।।

आचार्य सुशील कुमार मुनि व क्षुल्लक धर्मानंद जी भी आचार्यश्री देशभूषण ाजी को श्रद्धासुमन अर्पित करने के लिए सभा में उपस्थित थे।

पंचायार-परायणो

(पंचाचार परायण)

सूरि-देसभूसणेण, पेसिदं पत्तं विज्जाणंदस्स।
आइरिय-पदं दु तुमं, धरेज्ज मम णिण्णयो लिहिदं।।602।।
चरिय-चक्कवट्टिस्स दु, संतिसिंधु-परंपराणुरूवेण।
संचालेज्जा संघं, णेउणेणं विस्सस्सेमि दु।।603।। (जुम्मं)

अपने देह का अवसान निकट जानकर पूर्वाभासी आचार्यश्री देशभूषण ाजी मुनिराज ने एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के लिए पत्र भेजा था, उसमें लिखा था कि तुम यह आचार्य पद धारण करो, यही मेरा निर्णय है। मुझे विश्वास है कि चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी मुनिराज की परंपरा के अनुरूप ही आप निपुणतापूर्वक संघ का संचालन करोगे।

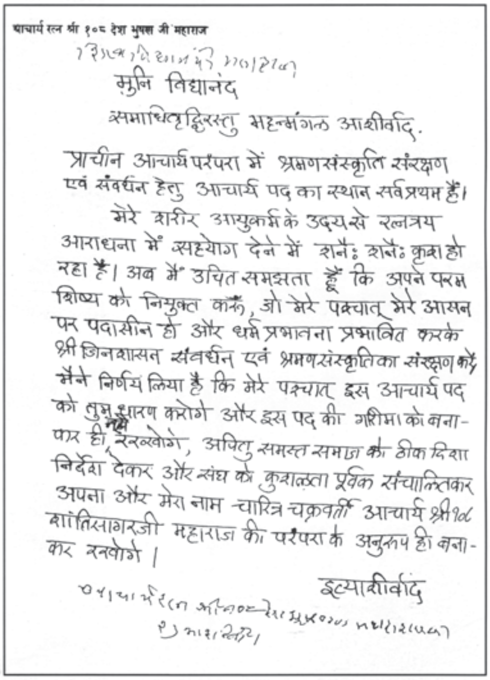

आचार्य रत्न श्री १०८ देश भुषण जी महाराज

मुनि विद्यानंद

समाधिवृद्धिरस्तु महन्मंगल आशीर्वाद.

प्राचीन आचार्य परंपरा में श्रमणसंस्कृति संरक्षण एवं संवर्धन हेतु आचार्य पद का स्थान सर्वप्रथम है।

मेरे शरीर आयुकर्म के उदय से रत्नत्रय आराधना में सहयोग देने में शनैः शनैः कृश हो रहा है। अब मैं उचित समझता हूँ कि अपने परम शिष्य को नियुक्त करूँ, जो मेरे पश्चात् मेरे आसन पर पदासीन हो और धर्म प्रभावना प्रभावित करके श्री जिनशासन संवर्धन एवं श्रमणसंस्कृति का संरक्षण करें, मैंने निर्णय लिया है कि मेरे पश्चात् इस आचार्य पद को तुम धारण करोगे और इस पद की गरिमा को बनाए ही नहीं रखोगे, अपितु समस्त समाज को ठीक दिशा निर्देश देकर और संघ को कुशलता पूर्वक संचालित कर अपना और मेरा नाम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शांतिसागरजी महाराज की परंपरा के अनुरूप ही बनाकर रखोगे।

इत्याशीर्वाद

दायिदं पडिउत्तरं, तेणं पालिदं सिस्स-कत्तव्वं।
विणयेणं गुरु-अण्णा, संगच्छिदा पत्थणाइ सह॥604॥
सुहभावं भावेमि हु, तुज्झं णिराउल-धम्मज्झाणस्स।
सुगुरु-किवादिट्ठी मे, सया सय रहेज्ज गुरुदेवो!॥605॥ (जुम्मं)

एलाचार्यश्री ने उस पत्र का प्रत्युत्तर भी दिया था, उन्होंने शिष्य के कर्त्तव्य का पालन किया एवं प्रार्थना के साथ गुरु की आज्ञा स्वीकार की। उन्होंने लिखा–हे गुरुदेव! मैं आपके निराकुल धर्मध्यान के लिए शुभ भावना भाता हूँ। मुझ पर गुरु की कृपादृष्टि सदा-सदा रहे।

अट्ठावीस-जूणम्मि, आइरिय-पदं दायिदं विहीए।
सत्थुत्त-पद्धतीए, सहस्स-जणसमूह-मज्झम्मि॥606॥

28 जून 1987 को हजारों जनसमूह के मध्य शास्त्रोक्त पद्धति से एलाचार्य जी को विधिपूर्वक आचार्यपद प्रदान किया गया।

आइरियो दु पालीअ, छत्तीस-गुणा परमविसुद्धीए।
सगपरिणामाणं चिअ, गुणोत्तर-विसोहि-विड्ढीए॥607॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज परम विशुद्धि के लिए एवं अपने परिणामों की गुणोत्तर-विशुद्धि के लिए 36 मूलगुणों का पालन करते थे।

अणसण-मवमोदरियं, रसपरिचागं वित्ति-परिसंखं च।
विवित्तसेज्जासणं दु, कायकिलेसं हु बज्झतवं॥608॥
पायच्छित्तं विणयं, वेज्जावच्चं सज्झायं तवं च।
काओसग्गं झाणं, अब्भंतरं करीअ सूरी॥609॥ (जुम्मं)

आचार्यश्री ने अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, वृत्तिपरिसंख्यान, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश ये बाह्य तप और प्रायश्चित, विनय, वैय्यावृत्ति, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग व ध्यान ये आभ्यंतर तप किए।

दंसण-णाण-चरिय-तव-आयार-परायणा दु आइरियो।
णिग्गहकम्मे कुसलो, अणुग्गहसंगहे सिस्साण।।610।।

आचार्यश्री दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार व वीर्याचार परायण थे। शिष्यों के संग्रह, अनुग्रह व निग्रहकर्म में कुशल थे।

थुदिं वंदणं समदं, पच्चक्खाणं तहा पडिक्कमणं।
काउसग्गं छव्विहं, पालीअ आवसियं णिच्चं।।611।।

वे नित्य ही स्तुति, वंदना, समता, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण तथा कायोत्सर्ग छह प्रकार के आवश्यकों का पालन करते थे।

मणवयणकायगुत्ती, तिजोगपवत्तिं रोहिदुं करीअ।
अब्भासं अहण्णिसं, णासेदुं सयलकम्माइं।।612।।

मनोगुप्ति, वचनगुप्ति व कायगुप्ति ये तीन गुप्ति हैं। सकल कर्मों के नाश के लिए वे अहर्निश तीनों योगों की प्रवृत्ति के निरोध का अभ्यास किया करते थे।

उत्तमखमं मद्दवं, अज्जवं सउचं सच्चं संजमं।
तवं चाग-मकिंचणं, बंभचेर-धम्मं पालीअ।।613।।

वे उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, अकिंचन और ब्रह्मचर्य धर्म का पालन किया करते थे।

दसविहं समणधम्मं, उत्तमखमाइ-सुद्धभाव-रूवं।
पालेज्जा आइरियो, सस्सद-सुह-णिमित्तं धम्मो।।614।।

आचार्य परमेष्ठी उत्तम क्षमादि शुद्ध भाव रूप दस प्रकार के श्रमण धर्म का पालन करते हैं। ये धर्म शाश्वत सुख का निमित्त हैं।

अच्चंत-कोहुदयेण, वा कोह-णिमित्ते मिलणे वि णेव।
कुव्वदि कोहं जो सो, खमाभावजुदो णादव्वो।।615।।

अत्यंत क्रोध के उदय से अथवा क्रोध के निमित्त मिलने पर भी जो कभी क्रोध नहीं करते वे क्षमाभाव से युक्त जानने चाहिए।

कडुगसद्दे सुणणे वि, भये बंधणे उवसग्गे जोगी।
खंडदि णेवविसुद्धिं, उत्तमखमाभावजुत्तो य॥616॥

कड़वे वचन सुनने पर, भय में, बंधन वा उपसर्ग में जो अपनी आत्मविशुद्धि को खंडित नहीं करता, वह योगी उत्तमक्षमाभाव से युक्त है।

सव्वुक्किट्ठ-खमा चिय, सेट्ठ-धम्मरूवो होदि णियमेण।
ताइ णासगं कोहं, समित्ता खमा होज्ज पगडो॥617॥

सर्वोत्कृष्ट क्षमा नियम से श्रेष्ठ धर्मरूप होती है। उस क्षमा का नाश करने वाला क्रोध है। उस क्रोध का शमन करके ही क्षमा प्रकट होती है।

उवसग्गाइ-समयम्मि, समणो चिंतदि समत्तभावेणं।
इमो जीवो णो हणदि, मम धम्म-मप्पगुणं कया वि॥618॥

उपसर्ग आदि के समय श्रमण समताभाव से चिंतन करते हैं कि यह जीव मेरे धर्म और मेरे आत्मगुणों का हनन कभी नहीं कर सकता।

दुहं दायिदुं सक्को, दुट्ठो मे पावकम्मोदयम्मि हि।
मज्झ पुण्णुदये कहं, सक्को दुहं दायिदुं को वि॥619॥

दुष्ट जीव मेरे पापकर्म के उदय में ही मुझे दु:ख देने में समर्थ है। मेरे पुण्य के उदय में कोई भी मुझे दु:ख देने में कैसे समर्थ होगा? अर्थात् मेरे पुण्य के उदय के कोई मुझे दु:ख नहीं दे सकता।

रिणमोयणं व चिंतदि, समणो दुट्ठेहि उवसग्गे कदे।
तं उवसग्ग-कत्ता य, मे हिदेसी पावक्खयादु॥620॥

दुष्टों के द्वारा उपसर्ग किए जाने पर श्रमण चिंतन करते हैं कि पूर्व का कोई ऋण था जो अब चुक गया। अत: यह उपसर्ग करने वाला मेरे पाप क्षय करने से मेरा हितैषी ही है।

ण को वि जीवो सक्को, णासिदु-मत्थित्तं मे संसारे।
मे पावकम्मुदयम्मि, सो णिमित्तं अज्जदि कम्मं।।621।।

कोई भी जीव संसार में मेरा अस्तित्व नष्ट करने में समर्थ नहीं है। मेरे पापकर्म के उदय में मेरा अपकार करने वाला वह जीव निमित्त मात्र है; जो स्वयं पाप कर्मों का अर्जन कर रहा है।

अप्पगुण-णासगग्गी, कोहो सुद्धप्पसहावो खमा य।
णाणी अप्पगुणा रक्खंते झामेदि अण्णाणी।।622।।

क्रोध आत्मगुणों को नाश करने वाली अग्नि है और क्षमा शुद्ध आत्मा का स्वभाव है। ज्ञानी आत्मगुणों की रक्षा करते हैं और अज्ञानी उन्हें जलाकर नष्ट कर देता है।

जे के वि महापुरिसा, खमाभावसंजुत्ता सव्वा ते।
सगसरूव-णादू णो, कुव्वंति कोहं सुमिणम्मि वि।।623।।

जो कोई भी महापुरुष हैं वे सभी क्षमाभाव से संयुक्त होते हैं, अपने स्वरूप के ज्ञाता होते हैं। वे स्वप्न में भी कभी क्रोध नहीं करते।

पढमाणुजोगम्मि बहु-कहा पसिद्धा दिट्ठंता समये।
जेहि लहिदा दुग्गदी, दुरावत्था कोहभावेण।।624।।

प्रथमानुयोग के शास्त्रों में ऐसी बहुत सी कथाएँ व दृष्टांत प्रसिद्ध हैं जिन्होंने क्रोधभाव से दुर्गति व दुरावस्था को प्राप्त किया।

कूवे णीरं व खमा-भावो फुट्टेदि अप्पपदेसेसु।
पुप्फम्मि सुगंधोव्व य, कलहोयम्मि पीदवण्णोव्व।।625।।

जिस प्रकार कुएँ में जल होता है, पुष्पों में सुगंधि और स्वर्ण में पीत वर्ण होता है उसी प्रकार क्षमाभाव आत्मप्रदेशों में प्रस्फुटित होता है।

सूरिविज्जाणंदेण, धारिदा खमा सगप्पपदेसेसु।
अण्णभव्वाण पच्छा, कुव्विदो धम्मोवएसो दु॥626॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने अपने आत्मप्रदेशों में क्षमाभाव धारण किया पश्चात् अन्य भव्यजीवों के लिए धर्मोपदेश दिया।

मद्दव-मप्पसहावो, विहावभावो य माणो जीवस्स।
विहावो भव-कारणं, सिवत्त-हेदू सहावो तह॥627॥

मार्दव गुण आत्मा का स्वभाव है और मान-अहंकार जीव का विभाव भाव है। विभाव संसार का कारण है, जबकि स्वभाव सिद्धत्व का कारण है।

माणो कुणदि जीवस्स, कडु-दुट्ठ-कक्कस-णिट्ठुर-सहावो।
णासेदि य सण्णाणं, सुबुद्धिं सम्मत्ताइ-गुणा॥628॥

अहंकार जीव का स्वभाव कटु-दुष्ट-कर्कश व निष्ठुर कर देता है। अहंकार जीव के सम्यग्ज्ञान, सुबुद्धि और सम्यक्त्व आदि गुणों को नष्ट करता है।

णिरयाउ-बंध-हेदू, वा तिरियाउस्स अवि तिव्वमाणो।
कुव्वदि कक्कस-भावं, पासाणोव्व दुट्ठ-चित्तं व॥629॥

तीव्र मान नरक आयु अथवा तिर्यंच आयु के बंध का कारण है। अहंकार जीव का चित्त दुष्ट व्यक्ति के चित्त के समान कर देता है और उसके भाव पाषाण के समान कर्कश कर देता है।

सुक्क-मिदिगा ण सक्का, परिणमेदुं अण्णायाररूवे।
अद्दा परिणमदि विणदो ईसरो होदुं सक्का॥630॥

सूखी मिट्टी को अन्य आकार रूप में परिणमित करना शक्य नहीं है जबकि आर्द्र मिट्टी को अन्य आकार रूप में परिणमित किया जा सकता है। इसी प्रकार मार्दव परिणाम वाले विनम्र जीव ही परमात्मा होने में शक्य हैं।

विणदो सया समत्थो, ओग्गहेदुं बहुगुणा दु अप्पस्स।
बहुदोसा हणेदुं च, दुग्गइ-आइ-पाव-कम्माणि॥631॥

विनम्र जीव ही सदैव आत्मा के बहुत गुणों को ग्रहण करने में समर्थ है। विनम्र स्वभावी ही आत्मा के बहुत दोषों को एवं दुर्गति आदि पाप कर्मों के क्षय करने में समर्थ है।

सम्मत्तं सण्णाणं, वेरग्ग-वच्छल-वद-तवा विणदो।
पावदि कमेण मोक्खं, विणओ मोक्खदारं णेयं॥632॥

विनम्र स्वभावी, मार्दव गुण से युक्त जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, वैराग्य, वात्सल्य व तप को प्राप्त करता है। क्रमशः मोक्ष प्राप्त करता है। विनय मोक्ष का द्वार जानना चाहिए।

सक्केदि खमं करिदुं, मिदुभावजुदो-जीवो सुवण्णं व।
सगसहावं ण विजहदि, मरिसित्तु अणेगपहारं वि॥633॥

मृदु, ऋजु वा कोमल परिणामों से युक्त जीव ही सर्वदा क्षमा करने में समर्थ होता है। वह स्वर्ण के समान होता है। वह अनेक प्रहारों को सहकर भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता।

भू-ठिद-वत्थुं गहिदुं, णमंतो णरो हि समत्थो णिच्चं।
णमणं विणा बहुमुल्ल-वत्थुं गहिदुं खमो ण को वि॥634॥

पृथ्वी पर स्थित वस्तु को ग्रहण करने के लिए नित्य झुकता हुआ मनुष्य ही समर्थ है। झुके बिना, विनम्र हुए बिना कोई भी बहुमूल्य वस्तु को ग्रहण करने में समर्थ नहीं है।

जह सलिलं पवहेदि य, समुद्द-तडागाइं गड्डं पडि य।
मद्दव-गुण-जुत्तं पडि, गच्छदि अप्पस्स सव्वगुणा।।635।।

जिस प्रकार पानी समुद्र, सरोवर वा गड्ढे आदि की ओर प्रवाहित होता है उसी प्रकार आत्मा के सर्व गुण मार्दव गुण से युक्त व्यक्ति की ओर चले जाते हैं।

जाइ-कुल-रूव-धण-सद्द-णाण-विज्जा-तव-बल-पूया।
पुण्ण-पद-पदिट्ठादी, हवेज्जा हि माण-कारणं च।।636।।

जाति, कुल, रूप, धन, शब्दज्ञान, विद्या, तप, बल व पूजा और पुण्य पद व प्रतिष्ठा मान के कारण हो सकते हैं।

रस-साद-इड्ढि-गारव-चागेण विणा मद्दवधम्मो णो।
मद्दव-धम्म-संजुदो, उस्सिक्केज्जा गव्वभावं।।637।।

रस गारव, सात गारव और ऋद्धि गारव को त्याग किए बिना मार्दव धर्म नहीं हो सकता। मार्दव धर्म से युक्त जीव गर्वभाव का सर्वदा त्याग करता है।

सगप्पगुणदाहगा य, मूलघादगा मूसगोव्व माया।
तम्हा कवडी ण लहदि, हिदयरं चिय अज्जवधम्मं।।638।।

मायाचारी निज आत्मा के गुणों को जलाने वाली है। वह चूहे के समान जड़ का नाश करने वाली है। अतः कपटी व्यक्ति हितकारी आर्जवधर्म को प्राप्त नहीं करता।

भिण्ण-भिण्ण-भाव-जुदा, पवित्ती तह मण-वयण-कायाणं।
जस्स सो दु मायावी, तिरियाइ-दुग्गइ-कारणं च।।639।।

जिसकी मन, वचन व काय की प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न भाव से युक्त होती है वह मायावी है। मायामयी यह प्रवृत्ति तिर्यंच आदि दुर्गति का कारण होती है।

तिजोग-पवित्ती होदि, जावदु सुद्ध-एगट्ठ-रूवा णो।
तावदु सरल-भावो ण, फुट्टदि अक्कं विणा करोव्व।।640।।

जब तक तीनों योगों की प्रवृत्ति शुद्ध एकत्व रूप नहीं होती तब तक भाव सरल वैसे ही नहीं होते जैसे सूर्य के बिना सूर्य की किरणें प्रस्फुटित नहीं होतीं।

बहु-पत्त-पुप्फ-फल-जुद-रुक्खमूले णट्ठे जह खयदि सो।
तह मायायारेणं, खयदि सव्वहिदयरो धम्मो।।641।।

बहुत पत्तों, पुष्पों व फलों से युक्त किसी वृक्ष की जड़ को नष्ट कर देने पर जिस प्रकार पुष्पादि से समन्वित संपूर्ण वृक्ष नष्ट हो जाता है उसी प्रकार मायाचारी से सर्व हितकारी धर्म नष्ट हो जाता है।

तरु-विड्ढी असंभवो, मूले णट्ठे जह तह हि रुक्खस्स।
धम्मविड्ढिं कुणेदुं, णेव सक्को मायायारी।।642।।

जिस प्रकार वृक्ष की जड़ नष्ट करने पर वृक्ष की वृद्धि असंभव हो जाती है उसी प्रकार मायाचारी धर्म रूपी वृक्ष की वृद्धि करने में अशक्य है। अर्थात् निश्छलता, सरलता, सहिष्णुता धर्म के मूल के समान है।

वक्कगदीए चलदे, भूमीए णियगिहपवेसयाले।
णवरि सरलगमणं चिय, पकुव्वेदि भुयंगो लोए।।643।।

संसार में देखा जाता है कि साँप भूमि पर वक्रगति से चलता है किन्तु अपने घर के प्रवेश के काल में वह सीधा गमन करता है अर्थात् निजात्म-गृह में प्रवेश हेतु सरलता ही एक मार्ग है।

जावदु वक्कपवित्तिं, कुणदि तावदु दुहं पावदि लोए।
सरलभावाभावम्मि, असंभवो सिवमग्गे गदी।।644।।

जब तक जीव वक्र प्रवृत्ति अर्थात् छल युक्त प्रवृत्ति करता है तब तक लोक में वह दु:ख ही प्राप्त करता है। निश्छल-सरल भावों के अभाव में मोक्षमार्ग पर गति असंभव है।

जावइय-सरल-सहजो, गंभीरो तावइय-अप्पणियडो।
सरलस्स फुडदि णाणं, सम्मत्तं तवो वेरग्गं॥645॥

जीव जितना सरल, सहज व गंभीर होता है वह उतना ही आत्मा के निकट होता है। सरल-निश्छल जीव के ही ज्ञान, सम्यक्त्व, तप व वैराग्य प्रस्फुटित होता है।

लोय-ववहारे सव्व-णरा मुणंति दीहो वक्कमग्गो।
सरलो लहु-मग्गो किं, णो पालेज्ज अज्जवधम्मं॥646॥

लोकव्यवहार में सभी लोग जानते हैं कि टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता लंबा होता है और सरल-सीधा मार्ग छोटा होता है तब व्यक्ति सरल आर्जव धर्म का पालन क्यों नहीं करता?

सुत्तं गंथिजुदं चिय, दिग्घं वि लहू जह तह णियमादो।
गंठिल्लो लहु-जीवो, गंठि-हीणो दीह-जीवी य॥647॥

जिस प्रकार गाँठे लगा हुआ बड़ा धागा भी छोटा लगता है उसी प्रकार कषायादि की गाँठ से युक्त लघुजीवी होता है जबकि सभी प्रकार की अंतरंग ग्रंथियों से हीन दीर्घजीवी होता है।

जाण संजमीण होज्ज, उक्किट्ठ-रूव-संजम-परिणामा।
ते संजमी समत्था, फुडिदु-मुत्तम-अज्जव-मप्पे॥648॥

जिन संयतों के उत्कृष्ट रूप संयम के परिणाम होते हैं वे संयमी अपनी आत्मा में उत्तम आर्जव धर्म प्रकट करने में समर्थ होते हैं।

अप्पगुणा अहिऊलदि, सव्वदा अग्गीव लोहकसायो।
तं समेदुं समत्थो, सम-समत्तभावो जीवस्स॥649॥

लोभ कषाय अग्नि के समान है जो आत्म-गुणों को जलाकर राख कर देती है। उस लोभ कषाय का शमन करने में जीव के शम व समत्व भाव ही समर्थ हैं।

पक्खालिदुं समत्थो, पंकं व लोहं संतोसणीरं।
विणा संतोसजलेण, णेव को वि णिम्मलो अप्पा।।650।।

कीचड़ के समान लोभ कषाय का प्रक्षालन करने में सदा संतोष रूपी जल ही समर्थ है। संतोष रूपी जल के बिना कोई भी आत्मा कभी निर्मल नहीं होती।

भव-भमणस्स कारणं, लोहकसाओ जिणेहि णिद्दिट्ठो।
जो तं लोहं खयदे, तिलोय-जई दु सो तित्थोव्व।।651।।

लोभकषाय संसार-परिभ्रमण का कारण है, ऐसा जिनेंद्र भगवन्तों के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। जो उस लोभ को नष्ट कर देता है वही तीर्थंकर के समान तीनों लोकों का विजेता होता है।

खेडगं व खमा तहा, असीव मद्दव-मज्जवं कवयोव्व।
भवं जयिदुं सुदंसण-चक्कं व सया सउच-धम्मो।।652।।

क्षमा ढाल के समान, मार्दव धर्म तलवार के समान, आर्जव धर्म कवच के समान एवं संसार को जीतने के लिए शौच धर्म सुदर्शन चक्र के समान है।

चित्त-सुई असक्को दु, विणा पक्खालेदुं लोहपंकं।
चित्त-सुइं विणा धम्म-बीअं च णिप्फज्जदे णेव।।653।।

लोभ रूपी कीचड़ का प्रक्षालन किए बिना चित्त की पवित्रता अशक्य है। और चित्त की पवित्रता के बिना चित्त में धर्म का बीज निष्पन्न नहीं होता।

रयणत्तयबलेणं दु, खयेदि कोहं जो पुण्णरूवेण।
सो जदी णिप्पमादो, मुत्ति-कंतो तब्भवे होदि।।654।।

जो रत्नत्रय के बल से पूर्ण रूपेण क्रोध को नष्ट कर देता है वह निष्प्रमाद (अप्रमत्त) योगी उसी भव में मुक्ति रूपी स्त्री का पति होता है।

पाणवाउं विणा जह, कस्स वि जीवणं दु संभवो णेव।
धम्मस्स जीवणं तह, चित्तस्स सोअवियाइ विणा।।655।।

जिस प्रकार प्राणवायु के बिना किसी भी जीव का जीवन संभव नहीं है उसी प्रकार चित्त की पवित्रता के बिना धर्म का जीवन संभव नहीं है अर्थात् चित्त-विशुद्धि धर्म का प्राण है।

लोह-सेट्ठो ण कया वि, पावपइडी हि लोहो णियमेणं।
धम्मलद्धीइ भावं, करेज्ज लोह-मवहेडिदूण।।656।।

लोभ कभी भी श्रेष्ठ नहीं होता। लोभ नियम से पाप प्रकृति है। लोभ का त्यागकर धर्मोपलब्धि के भाव करने चाहिए।

धण-लोही णेव लहदि, णिरामय-जोव्वणं पदं पदिट्ठं।
सारज्जं सुह-दायग-बहु-विहवं कया संपत्तिं।।657।।

धन का लोभी कभी भी आरोग्य युक्त यौवन, पद, प्रतिष्ठा, स्वर्ग साम्राज्य, सुख का कारक बहुत वैभव व संपत्ति को प्राप्त नहीं करता।

लोही ण लहदि कया वि, सम्मत्ताइ-धम्म-णिम्मल-भावं।
णो जसं तवं झाणं, तं उज्झेज्ज सवरहिदत्थं।।658।।

लोभी सम्यक्त्वादि धर्म के निर्मल भावों को कभी प्राप्त नहीं करता। वह यश, तप व ध्यान भी प्राप्त नहीं करता अतः स्वपर हित के लिए उस लोभ का त्याग करना चाहिए।

रुक्ख-मूलं दु बीअं, घिदस्स दुद्धं गंधस्स पुप्फं च।
सिवस्स मूलं धम्मो, जह तह पावमूलं लोहो।।659।।

जैसे वृक्ष का मूल बीज, घी का दूध, गंध का पुष्प और मोक्ष का मूल धर्म है वैसे ही पाप का मूल लोभ है।

जो साहू सग-अप्पे, फुडदि वर-सउच-धम्मं जदणेणं।
भवसायर-तड-णियडे, सो मुणिंदो मण्णेज्ज सया॥660॥

जो साधु अपनी आत्मा में यत्नपूर्वक उत्तम शौच धर्म को प्रकट करता है वह मुनींद्र सदैव भव सागर के निकट माना जाता है।

सुद्धुवजोग-संजुदो, उत्तम-सउच-धम्म-जुत्तो जो सो।
सुहुवजोग-संजुदो हि, सउच-धम्म-जुदो णादव्वो॥661॥

जो साधु शुद्धोपयोग से युक्त है वह तो उत्तम शौचधर्म से युक्त है ही किन्तु जो शुभोपयोग से युक्त है वह भी शौचधर्म से संयुक्त जानना चाहिए।

जह लोयस्साहारो, वादवलयो तह सुतलं भवणस्स।
धम्माहारो उत्तम-सउच-धम्मो य तिक्कालम्मि॥662॥

जैसे लोक का आधार वातवलय है, भवन का आधार नींव है उसी प्रकार तीनों कालों में धर्म का आधार उत्तम शौच धर्म है।

अंकेण विणा सुण्णं, जह संखं उप्पादिदु-मसमत्थो।
सच्चेण विणा किरिया, का वि धम्मफलं दायेदुं॥663॥

जैसे अंक के बिना शून्य संख्या उत्पन्न करने में असमर्थ है उसी प्रकार सत्य के बिना कोई भी क्रिया धर्म का फल देने में असमर्थ है।

सव्वजीवेसु अप्पा, विज्जेज्जा समरूवेणं सया हि।
णेव कस्सिं वि अप्पे, णूणाहिय-पदेसा गुणा वि॥664॥

सर्व जीवों में आत्मा सदैव ही समान रूप से विद्यमान है। किसी भी आत्मा में प्रदेश या गुण कम या ज्यादा नहीं हैं। (प्रत्येक आत्मा असंख्यात प्रदेशी व अनंत गुणों से युक्त है।)

धम्म-पाणो दु सच्चं, उप्पालिदं सव्वण्हु-जिणवरेहि।

सच्चं विणा णो को वि, सक्कदि सवरहिदं करेदुं॥665॥

सत्य, धर्म का प्राण है ऐसा सर्वज्ञ जिनवरों के द्वारा कहा गया है। सत्य के बिना कोई भी स्वपर हित करने में समर्थ नहीं होता।

मण्णंति सच्चरूवं, जहवि सच्चवयणं स-धीइ लोए।

तदवि ववहारम्मि तं, अणुव्वद-महव्वद-धम्मो दु॥666॥

यद्यपि लोक में सत्य वचन को अपनी बुद्धि से लोग सत्य रूप मानते हैं। तद्यपि व्यवहार में वह सत्यधर्म अणुव्रत व महाव्रत धर्म रूप है।

ववहारे सच्चं दहविहं जाणेज्जा सिआवायेणं।

तेण विणा ण समत्थो, छउमत्थो जाणिदुं सच्चं॥667॥

स्याद्वाद से व्यवहार में दस प्रकार के सत्य जानने चाहिए। उस स्याद्वाद के बिना कोई भी छद्मस्थ सत्य को जानने में समर्थ नहीं है।

जणवद-सम्मदि-ठवणा-णाम-रूव-पडुच्च-ववहार-सच्चं।

संभावणा य भावो, उवमा तहा दसविह-सच्चं॥668॥

जनपद, सम्मति, स्थापना, नाम, रूप, प्रतीत्य, व्यवहार, संभावना, भावना एवं उपमा इस प्रकार दस प्रकार के सत्य कहे गए हैं।

णिच्छयेण चेयणाइ-भावो सच्चं अणुभवरूवंतं।

सद्दहीणो अणुभवो, सगणुभवो सय सच्चरूवं॥669॥

निश्चय से सत्य चेतना का भाव है, वह सत्य अनुभव रूप है और अनुभव शब्दहीन है। प्रत्येक के लिए अपना अनुभव सदैव सत्यरूप ही होता है।

सच्चेण ठिदा णिरये, णेरइया भवणवासी भवणेसु।

वइमाणिगा विमाणेसु, णिच्चणिगोदिया कलकलम्मि॥670॥

थावरा सव्वलोए, वियलिंदिया अढाइज्जदीवेसु।
सिद्धा सिद्धखेत्तम्मि, जाव सच्चं ताव धम्मो दु।।671।।

सत्य (शाश्वत सिद्धांत) से ही नारकी नरक में, भवनवासी भवनों में, वैमानिक विमानों में, नित्यनिगोदिया कलकल भूमि में, स्थावर सर्वलोक में, विकलेन्द्रिय ढाईद्वीप में एवं सिद्ध सिद्धक्षेत्र में स्थित हैं। जब तक सत्य है तब तक धर्म है।

धम्माधम्मा यालायासा व णिच्चं सस्सदं सुद्धं।
सच्चं दु अणादीदो, धम्म-पाणो सव्व-हिदेसी।।672।।

जिस प्रकार धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, काल द्रव्य और आकाश द्रव्य नित्य व शाश्वत शुद्ध हैं उसी प्रकार सत्य अनादिकाल से नित्य व शाश्वत शुद्ध है। सत्य धर्म का प्राण है और स्वपर-हितैषी है।

असच्चं दुक्ख-हेदू, दुग्गदि-कारणं तह पावाणं पि।
भमाविदुं दीहभवे, एग-मसच्चं हि पज्जत्तं।।673।।

असत्य दुःख का हेतु है। यह असत्य पाप व दुर्गति का कारण है। दीर्घ संसार में परिभ्रमण कराने के लिए एक असत्य ही पर्याप्त है।

लोयम्मि कं वि पावं, सक्को बंधिदु-मसच्चेण जीवो।
कं सुहं ण पदायिदुं, सच्चं समत्थो तिलोएसु।।674।।

लोक में जीव असत्य से किसी भी पापकर्म का बंध करने में समर्थ है। तीनों लोकों में कौन-सा सुख प्रदान करने में सत्य समर्थ नहीं है? अर्थात् सत्य सर्व सुख देने में समर्थ है।

उत्तम-सच्चं धम्मं, अणुभवदि जोगी सुद्धुवजोगम्मि।
सच्च-सादं लहेदुं, ण को वि समत्थो तेण वि णा।।675।।

योगी शुद्धोपयोग में उत्तम सत्यधर्म का अनुभव करता है। उसके बिना कोई भी सत्य का स्वाद लेने में समर्थ नहीं है।

जावइयं पुण्णफलं, पस्सिदुं समत्थो तुमं लोयम्मि।
सव्वं सच्च-धम्मस्स, विणिद्दोस-पालण-सुफलं दु॥676॥

लोक में जितना पुण्य का फल देखने में आप समर्थ हो वह सब सत्यधर्म के निर्दोष पालन का ही सुफल है।

पक्खी पसू य मच्छा, बंधिदुं पंजरं रज्जू जालं।
जह तह समत्था सया, असंजमो हंदि भव्वुल्ला॥677॥

जिस प्रकार पिंजरा पक्षियों को, रस्सी पशुओं को और जाल मछलियों को कैद करने में समर्थ है उसी प्रकार असंयम भव्यों को संसार में बांधने में समर्थ है।

णीरे चलिदु-मसक्का, बंधिददोणीव अंकुडगेणं दु।
असंजमी असमत्थो, रीदुं च णिव्वाणमग्गम्मि॥678॥

जैसे खूंटे से बंधी हुई नाव पानी में चलने में अशक्य है उसी प्रकार असंयमी मोक्षमार्ग पर चलने में असमर्थ है।

मोक्खं लहिदु-मसक्को, मोहाविट्ठो जीवो णिच्छयेण।
कच्छभूए परिलग्ग-णावा व तं णाणं लहेज्ज॥679॥

जिस प्रकार दलदल में फँसी हुई नाव आगे बढ़ने में असमर्थ होती है उसी प्रकार मोह दलदल में फँसा हुआ जीव निश्चय से मोक्ष प्राप्त करने में अशक्य होता है। अतः सम्यग्ज्ञान का अर्जन करना चाहिए।

देसवदी सिवमग्गे, ठिदो णेव सो गदिवंतो जम्हा।
सयलसंजमेण विणा, सिवपहे असंभवो गमणं॥680॥

देशव्रती मोक्षमार्ग में स्थित है, वह मोक्षमार्ग पर गतिमान नहीं है। क्योंकि सकलसंयम के बिना मोक्षमार्ग पर गमन असंभव है।

जह सरिदाए तीरे, ठिदो पस्सेज्ज विदिय-तडं मेत्तं।
संजम-तरणीइ विणा, ण सक्को अवरतडं लहिदुं॥681॥

जिस प्रकार नदी के एक किनारे पर खड़ा हुआ व्यक्ति मात्र दूसरे किनारे को देख ही सकता है, उस तक पहुँच नहीं सकता उसी प्रकार संयम रूपी नाव के बिना भव्यजीव संसार के दूसरे तट को प्राप्त करने में समर्थ नहीं है।

असंजमो बेविहो दु, इंदिय-पाणि-असंजम-भेयादो।
पत्तेयं छव्विहं च, जहक्कमेण जाणेज्ज सया॥682॥

इंद्रिय असंयम व प्राणी असंयम के भेद से असंयम दो प्रकार का है। प्रत्येक इंद्रिय व प्राणी असंयम भी यथाक्रम से सदैव छह प्रकार का जानना चाहिए।

जंतणं च पंचिंदिय-मणाणं इंदिय-संजमो णेयो।
पाणी-संजमो तहा, जीवरक्खणं छक्कायाण॥683॥

पंचेन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण) और मन को वश में करना इंद्रिय संयम जानना चाहिए तथा षट्काय जीवों की रक्षा करना प्राणी संयम है।

उत्तमसंजमधम्मं, गहिदुं जह तह संजमी समत्था।
फलं देदुं समत्थं, पुप्फं णो कंडग-पत्ताणि॥684॥

जिस प्रकार पुष्प ही फल देने में समर्थ हैं, काँटे व पत्ते नहीं उसी प्रकार उत्तम संयम धर्म को ग्रहण करने के लिए संयमी समर्थ होते हैं।

जह बालो होदि जुवा, जुवा पुणो बुड्ढो सम्मादिट्ठी।
तह अणुव्वदी हि सयलसंजदो णिच्छय-धम्मजुदो॥685॥

जिस प्रकार एक बालक युवा, युवा वृद्ध होता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि ही अणुव्रती, सकलसंयमी और पुनः वह ही निश्चय धर्म से युक्त होता है।

जह रक्खंति सगणिवं, अंगरक्खगा दु बहुपयारेणं।
तह संजमधम्मो अप्पं सया लोए सुरक्खेदि।।686।।

जिस प्रकार अंगरक्षक बहुत प्रकार से अपने राजा की रक्षा करते हैं उसी संयमधर्म सदैव लोक में आत्मा की रक्षा करता है।

कवयोव्व जोहाणं च, बादाम-अक्खोडाण तक्खणं व।
अप्पं संजम-धम्मो, रक्खदि जीव-गुणं सहावं।।687।।

जिस प्रकार कवच सैनिकों की रक्षा करता है, बादाम व अखरोट के छिलके उसकी गिरि की रक्षा करते हैं उसी प्रकार संयम धर्म सदैव आत्मा की रक्षा करता है, जीव के गुण व स्वभाव की रक्षा करता है।

वाहणं रोहगोव्व य, अस्सं वग्गा व गयं अंकुसोव्व।
णियंतेदुं सगप्पं, संजमधम्मो मुणेदव्वो।।688।।

जिस प्रकार वाहन को नियंत्रित करने के लिए ब्रेक है, घोड़े को नियंत्रित करने के लिए लगाम और हाथी को नियंत्रित करने के लिए अंकुश है उसी प्रकार अपनी स्वात्मा को नियंत्रित करने के लिए संयम धर्म जानना चाहिए।

संजमधम्मेण विणा, णेव को वि हु मोक्खमग्गी कया वि।
तित्थाइ-महाणरा वि, गहित्तु संजमं सिवपहिया।।689।।

संयम धर्म के बिना कोई भी कदापि मोक्षमार्गी नहीं होता। तीर्थंकरादि महापुरुष भी संयम ग्रहण करके ही मोक्षमार्ग के पथिक बने थे।

जिणभवणं व संजमो, तस्सुवरि सय सिहरं व सम्मतवो।
सिहरं विणा मंदिरं, तवं विणा संजमो जह तह।।690।।

संयमधर्म जिनमंदिर के समान है और सम्यक् तप उसके ऊपर शिखर के समान है। जिस प्रकार शिखर के बिना मंदिर शोभाहीन होता है उसी प्रकार तप के बिना संयम शोभाहीन है।

सीयलत्तं जह णीर-धम्मो अग्गिस्स दाहगो णहस्स।
अमुत्तिगो तहा तवो, अप्प-सोहगो तवस्सीणं॥691॥

जिस प्रकार जल का धर्म या स्वभाव शीतलता है, अग्नि का धर्म दाहक, आकाश का धर्म अमूर्तिक है उसी प्रकार तपस्वियों का धर्म आत्मा का शोधन करने वाला तप है।

अग्गी सोहदि धादुं, णीरं वत्थाइं जोगो देहं।
जह तह सोहदि अप्पं, तव-धम्मो सया बोहव्वो॥692॥

जिस प्रकार अग्नि धातु को शुद्ध करती है, नीर वस्त्रादि को शुद्ध करता है, योग देह को शुद्ध करता है उसी प्रकार तपधर्म सदैव आत्मा का शोधन करता है ऐसा जानना चाहिए।

भवभमणं णासेदुं, बज्झंतर-बारस-तवा अत्थं व।
पहाणसही इव मुत्तिकंताए मोक्ख-सोवाणं॥693॥

भव भ्रमण के नाश के लिए बाह्य व अभ्यंतर ये 12 तप अस्त्र के समान हैं। तप मोक्ष का सोपान एवं मुक्तिरूपी स्त्री के लिए सखी के समान है।

सेदूव सुतव-धम्मो, णित्थारिदुं भवसायर-घोरादु।
तवं गहिदुं समत्था, मेत्तं माणुसा अण्णा णो॥694॥

उत्तम तपधर्म इस घोर संसार सागर से पार करने के लिए सेतु के समान है। उत्तम तपधर्म को ग्रहण करने में मात्र मनुष्य ही समर्थ हैं अन्य गति के जीव नहीं।

विणा रयणत्तयेणं, णो संजमो णो तवो णो चागो।
णेव तह बंभचेरं, तम्हा ववसेज्ज गहिदुं तं॥695॥

रत्नत्रय के बिना संयम नहीं होता, तप नहीं होता, त्यागधर्म नहीं होता और ब्रह्मचर्य धर्म भी नहीं होता। इसलिए रत्नत्रय को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

अग्गि-सामगं णीरं, रुक्ख-विआसगं पि मल-खालगं च।
भू-संताव-हारगं, जह तह सव्वदा जाणेज्जा॥696॥
संसारतावहारग-तवो अप्पगुणविआसगो णिच्चं।
मिच्छातमहारगो य, घादि-कम्मप्पणासगो अवि॥697॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार जल अग्नि को बुझाने वाला, वृक्ष को विकसित करने वाला, मल साफ करने वाला और पृथ्वी के संताप को दूर करने वाला जाना जाता है उसी प्रकार तप धर्म संसार के ताप का हरण करने वाला, नित्य आत्म-गुणों का विकास करने वाला, मिथ्यात्व रूपी अंधकार का हरण करने वाला और घाति कर्म का नाश करने वाला है।

उदर-सोहग-हरडई, जह तह बलवड्ढगा घिदकुमारी।
मलसोहगं च तक्कं, पीडावहारगा हलिद्दा॥698॥
विइडिणासग-संजमो, बलदायगो सुतवो दु विण्णेयो।
पीडाहारग-चागो, कम्म-विघादग-मकिंचणं च॥699॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार उदर का शोधन करने वाली हरड़, बल का वर्द्धन करने वाली घृतकुमारी, मल शोधक मट्ठा और पीड़ा का हरण करने वाली हल्दी है उसी प्रकार विकृति का नाश करने वाला संयम, बल देने वाला तप, पीड़ा को हरने वाला त्याग और कर्म का घात करने वाला अकिंचन धर्म जानना चाहिए।

धूगो पस्सिदु-मक्कं, जह तवं कुणिदुं दीहसंसारी।
तह जोगीण तियाले, णं किंचिवि असज्झं तवेण॥700॥

जिस प्रकार उल्लू सूर्य को देखने में असमर्थ है उसी प्रकार दीर्घसंसारी तप करने में असमर्थ है। योगियों के लिए तीनों कालों में तप के द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं है।

णिरयाउ-बंधगो जह, असक्को वंदेदुं च सम्मेदं।
सम्मतवं कुणिदुं तह, णो सक्को दीहसंसारी॥701॥

जिस प्रकार नरक आयु का बंधक सम्मेदशिखर की वंदना करने में अशक्य है उसी प्रकार दीर्घसंसारी सम्यक् तप करने में शक्य नहीं है।

चागं करेज्ज णियमा, परवत्थूणं तह परभावाणं।
सगणायज्जिद-धणस्स, सदुवजोगं पत्तदाणेण॥702॥

परवस्तुओं और परभावों का नियम से त्याग करना चाहिए। अपने न्यायार्जित धन का पात्रदान आदि के माध्यम से सदुपयोग करना चाहिए।

आहार-ओसहि-णाण-अभय-वसदि-उवयरणाणं दाणं।
सत्तपुण्णखेत्तेसु वि, दाएज्ज सत्तीइ हिदत्थं॥703॥

स्वपर हित के लिए शक्तिपूर्वक आहारदान, औषधिदान, ज्ञान- दान, अभयदान, वसतिकादान और उपकरणदान देना चाहिए एवं सप्त पुण्य क्षेत्रों में भी दान देना चाहिए।

गिहाइ-दसविहं बज्झ-परिग्गहं उज्झंति सया जोगी।
मिच्छत्ताइ-चउदसं, अंतरगंथं सगसत्तीइ॥704॥

योगी गृह आदि दस प्रकार के बाह्य परिग्रह का सदैव त्याग करते हैं एवं अपनी शक्ति के अनुसार मिथ्यात्व आदि चौदह प्रकार के अंतरंग परिग्रह का भी त्याग करते हैं।

चागुक्किट्ठा रूवा, दियंबर-साहू अस्सिं लोयम्मि।
मुत्तित्थीए सामी, हवेदुं समत्था हंदि ते।।705।।

इस लोक में त्याग का उत्कृष्ट रूप दिगंबर साधु हैं। वे निर्ग्रन्थ साधु ही मुक्ति रूपी स्त्री के स्वामी होने में समर्थ होते हैं।

होही होदि हविस्सदि, ण को वि तिलोयपदी विणा चागं।
चागादो सुह-संती, णियप्प-सस्सदा विहूदी हु।।706।।

त्याग के बिना कोई भी न तो त्रिलोकीनाथ हुआ था, न हुआ है और न ही होगा। त्याग से ही सुख व शांति प्राप्त होती है और निजात्मा की शाश्वत विभूति भी त्याग से ही प्राप्त होती है।

मुत्ति-सुंदरिं गहिदुं, चागधम्मो दु पत्तववहारोव्व।
ण कंखदि जोगिं मुत्ति-कंता विणा वर-चागेणं।।707।।

मुक्ति-सुंदरी को ग्रहण करने के लिए त्यागधर्म पत्र व्यवहार के समान है। उत्तम त्याग के बिना मुक्ति रूपी स्त्री योगी की आकांक्षा नहीं करती।

पत्तदाणेण जीवो, भोयभूमिया होज्जा इंदादी।
कमसो तित्थयरादी, ण सिज्झदि को वि विणा दाणं।।708।।

आहारदान से ही जीव भोगभूमिया व इंद्रादि होता है। क्रम से तीर्थंकर होता है। दान के बिना कोई भी मुक्ति प्राप्त नहीं करता।

णाणस्स णाणदाणं, उक्किट्ठ-खओवसम-हेदू जाण।
णाणावरण-खयस्स वि, केवलणाण-पत्तीए पुण।।709।।

ज्ञानदान को ज्ञान के उत्कृष्ट क्षयोपशम का हेतु जानना चाहिए। वह ज्ञानदान ही ज्ञानावरण कर्म के क्षय का और पुनः केवलज्ञान की प्राप्ति का कारण है।

ओसहिदाणेण मोक्ख-पज्जंतं णिरामयो चिय जीवो।
किं सेवेदि ओसहिं, सो जो दायदि सुपत्ताणं॥710॥

औषधिदान से जीव मोक्ष पर्यन्त निरोगी रहता है। जो सुपात्रों को औषधिदान देता है वह फिर औषधिसेवन क्यों करता है? अर्थात् औषधिदान देने वाले को स्वयं औषधि की आवश्यकता नहीं पड़ती।

लहदि संजमुवयरणं, अग्गे उवयरणदाणेण जीवो।
सेट्ठभवसुहं भुंजिय, भुंजदि सिद्धसुहं णियमेण॥711॥

उपकरण दान से जीव स्वयं संयमोपकरण प्राप्त करता है। आगे श्रेष्ठ संसार सुख को भोगकर नियम से सिद्ध-सुख भोगता है।

अभयदाणेण जीवो, णिब्भयो सय तिलोए तिक्काले।
तस्स दु भयवदोव्व सो, जो देदि जस्स अभयदाणं॥712॥

अभयदान से जीव दोनों लोकों में त्रिकाल में सदैव निर्भय होता है। जो जिसके लिए अभयदान देता है वह उसके लिए भगवान् के समान होता है।

छउमत्थो ण समत्थो, वण्णेदुं उत्तमदाणाइफलं।
पुण्णफलं वण्णेदुं, गणहरो अवि समत्थो णेव॥713॥

छद्मस्थ जीव उत्तम दानादि के फल का वर्णन करने में समर्थ नहीं है। दान के फल का पूर्ण वर्णन करने में गणधर भी समर्थ नहीं है।

णो मे किंचिवि वत्थुं, अस्सिं लोए सय चिंतंति मुणी।
सगचदुट्ठयम्मि सया, सव्वत्थ चिट्ठंति वट्टंति॥714॥

मुनि सदैव चिंतन करते हैं कि इस लोक में किंचित् भी वस्तु मेरी नहीं है। वे सदैव सर्वदा स्वचतुष्टय में ही ठहरते हैं और वर्तन करते हैं।

सगचदुट्ठयेण विणा, परचदुट्ठयस्स पदेसेगो अवि।
णेव होज्ज कयावि मे, हं णेव कयावि पररूवो॥715॥

स्वचतुष्टय के बिना परचतुष्टय का एक प्रदेश भी कदापि मेरा नहीं है। और मैं कदापि पररूप नहीं हूँ।

परभावा य पदत्था, पररूवा चिय अणाइयालादो।
अज्जं अवि पररूवा, भविस्से वि सया पररूवा॥716॥

परभाव और परपदार्थ अनादिकाल से पररूप ही हैं। ये परभाव व परपदार्थ आज भी पररूप ही हैं और भविष्य में भी पररूप ही रहेंगे।

आसी अत्थि होस्सेदि असंखेज्जपदेसी मज्झ अप्पा।
ण णूणाहिया सस्सद-सिद्धंत-अपरिवट्टणीयो॥717॥

मेरी आत्मा असंख्यातप्रदेशी थी, असंख्यातप्रदेशी है और असंख्यातप्रदेशी ही रहेगी। वे आत्मप्रदेश न कम हैं, न ज्यादा। ये सिद्धांत शाश्वत व अपरिवर्तनीय है।

पोग्गलेण सह अप्पा, वियडिरूवो य विहावसंजुत्तो।
अप्पा होज्जा सुद्धो, पोग्गल-संजोग-मुज्झित्ता॥718॥

पुद्गल के साथ आत्मा विकृतिरूप और विभावयुक्त होती है। पुद्गल संयोग का त्याग कर ही आत्मा शुद्ध हो सकती है।

परमट्ठेणं सुद्धो, ण विहाव-अत्थ-विंजण-पज्जाया।
णो मज्झं णोकम्मं, दव्वकम्मं भावकम्मं ण॥719॥

मैं परमार्थ से शुद्ध हूँ। विभावअर्थ-व्यंजन पर्याय मेरी नहीं हैं। ये नोकर्म, द्रव्यकर्म और भावकर्म मेरे नहीं हैं।

परवत्थुगहणभावो, संसारकारणं णिच्चं तहेव।
परवत्थुचागभावो, अवि णिव्वाण-कारणं हंदि॥720॥

पर-वस्तुओं के ग्रहण का भाव नित्य ही संसार का कारण है उसी प्रकार पर-वस्तु के त्याग का भाव भी निर्वाण का कारण है।

मुत्तिसुंदरीए सह, आकिंचणं दु विवाहणिच्छयोव्व।
वागदाणेणं विणा, णेव विवाहो सिट्ठ-णराण॥721॥

आकिंचन धर्म मुक्ति सुंदरी के साथ सगाई के समान है। वाग्दान के बिना शिष्ट लोगों का विवाह नहीं होता।

वर-आकिंचण-धम्मो, सिद्धत्त-णियामगहेदू मुणीण।
घादिकम्मक्खयादो, अणंतचदुट्टयं पावेदि॥722॥

मुनियों का उत्तम अकिंचन धर्म सिद्धत्व का नियामक हेतु है। घातिकर्म के क्षय से जीव अनंत चतुष्टय प्राप्त करता है।

करिदु-मप्पकल्लाणं, तप्परो सय विसयभोयविरत्तो।
जीवरक्खाइ पढमं, धारेदि वदं बंभचेरं॥723॥

विषय-भोग से विरक्त जीव सदैव आत्मकल्याण करने में तत्पर होता है। वह जीवरक्षा के लिए सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य व्रत को ही धारण करता है।

परमधम्मो अहिंसा, सच्चाइ-वदाणि ताइ पुट्ठीए।
सव्वत्थ सव्वदा चिय, उत्तमवदं बंभचेरं हि॥724॥

अहिंसा परम धर्म है। सत्यादि व्रत उस अहिंसा धर्म की पुष्टि के लिए ही हैं। उत्तम ब्रह्मचर्य ही सर्वत्र और सर्वदा उत्तम व्रत है।

अबंभं विसयमूलं, पहाणहेदू भोगासत्तीए।
पहाण-मत्थं व सया, घादेदुं अप्पं अबंभं॥725॥

अब्रह्म विषयों का मूल है। वह भोगों में आसक्ति का प्रधान हेतु है। आत्मा का घात करने के लिए अब्रह्म सदैव ही प्रधान अस्त्र की तरह है।

विसयविरत्तीइ विणा, अणु-महव्वदा पुण्ण-सत्थगा णो।
भोगासत्तीए सह, कहं वदं तवो तह झाणं॥726॥

विषय-विरक्ति के बिना अणुव्रत और महाव्रत पूर्ण सार्थक नहीं होते। भोगासक्ति के साथ व्रत, तप व ध्यान कैसे हो सकते हैं? अर्थात् नहीं हो सकते।

सगपरमप्पाणुभूदि-कारण-मुत्तमबंभचेर-धम्मो।
सुद्धुवजोगो दु णेव, संभवो विणा बंभचेरं।।727।।

उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म स्व-परमात्मानुभूति का कारण है। ब्रह्मचर्य के बिना शुद्धोपयोग संभव नहीं है।

बंभो तिलोयपुज्जो, परिणयणस्स दु मुत्तिसुंदरीए।
वरमाला व विणा तं, कहं विवाहो चिय लोयम्मि।।728।।

ब्रह्मचर्य त्रिलोकपूज्य है। मुक्ति सुंदरी से विवाह करने के लिए ब्रह्मचर्यधर्म वरमाला के समान है। उस वरमाला के बिना लोक में विवाह कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

मुत्तं विणा सिप्पीव, रयणायरोव्व य विणा रयणेहिं।
णीरं विणा सरिदाव, बंभचेरेण विणा धम्मो।।729।।

ब्रह्मचर्य के बिना धर्म वैसे ही है जैसे मोती के बिना सीप, रत्नों के बिना रत्नाकर और जल के बिना नदी।

देव-रयण-सेलेसुं, सोहम्मोव्व वइरं व सुमेरू व।
णाणं व अप्पगुणेसु, बंभचेरं सव्वधम्मेसु।।730।।

जिस प्रकार देवों में सौधर्मेन्द्र, रत्नों में हीरा, पर्वतों में सुमेरु पर्वत और आत्मगुणों में ज्ञान है उसी प्रकार सभी धर्मों में ब्रह्मचर्य है।

जिणागमम्मि सीलस्स, अट्ठारस-सहस्स-भेया भणिदा।
पालंते णिद्दोसं, जे ते णियमा भावि-सिद्धा।।731।।

जिनागम में शील के 18000 भेद कहे गए हैं। जो शीलव्रत का निर्दोष पालन करते हैं वे नियम से भावी सिद्ध होते हैं।

उज्जोदेणं इंदू, आदवेण रवी णायेण रायो।
गंधेण सुमं सोहदि, जह तह णारी हु सीलेणं॥732॥

जिस प्रकार उद्योत से चंद्रमा, आतप से सूर्य, न्याय से राजा और सुगंध से पुष्प सुशोभित होता है उसी प्रकार शील से नारी सुशोभित होती है।

सीलेण सुक्क-रुक्खो, पल्लविदो पुप्फिदो फलिदो।
सुक्क-तडाग-सरिदा वि, जलपूरिदा पुज्जो सुरेहि॥733॥

शील से सूखे वृक्ष भी पुष्पित, फलित व पल्लवित हो जाते हैं, सूखे तालाब भी पानी से भर जाते हैं। शील से मनुष्य देवों के द्वारा पूज्य हो जाता है।

उवसग्गा दुब्भिक्खं, सीलेण खयेज्जं रोया मारगा य।
सीलेण पावपइडी, संकमंति पुण्णपइडीसुं॥734॥

शील से रोग, मारक, उपसर्ग व दुर्भिक्ष नष्ट हो जाते हैं। शीलव्रत से पाप प्रकृतियाँ पुण्य प्रकृतियों में संक्रमित हो जाती हैं।

उत्तमबंभचेरं दु, सोलस-तावजुद-सुवण्णं व सया।
तेणप्पा परमप्पा, सिरोमणी सव्वधम्मेसुं॥735॥

उत्तमब्रह्मचर्य धर्म सोलह ताप से युक्त स्वर्ण के समान है। उससे आत्मा परमात्मा हो जाती है। वह सर्वधर्मों में शिरोमणि है।

मादंगो अवि पुज्जो, सीलेण जिणिंदफासिद-णीरं व।
देसवदेहि वि पुज्जो, णरो तिरियो वा जिणसमये॥736॥

जिस प्रकार जिनेन्द्रप्रभु से संस्पर्शित नीर पूज्य होता है उसी प्रकार शील से चांडाल भी पूज्य हो जाता है। जिनशासन में कहा है कि मनुष्य या तिर्यंच देशव्रतों से भी पूज्य हो जाता है। इस प्रकार आचार्यश्री दसधर्मों का पालन किया करते थे।

जिणसासण-पहावणा

(जिनशासन प्रभावना)

णवजुलाई-उणवीस-सय-सत्तासीदीइ उग्घाडिदं।
पागद-भवणं पहाण-मंति-राजीव-गंधिणा चिय॥737॥

9 जुलाई 1987 को प्रधानमंत्री माननीय श्री राजीवगांधी जी ने कुंदकुंद भारती में बने नवनिर्मित प्राकृत भवन का उद्‍घाटन किया।

सव्व-पाईण-पागद-भासा-विगासस्स सासणं करेज्ज।
अणुदाण-ववत्थं तह, धम्म-कज्जे गच्छेज्ज सया॥738॥

पहाणमंतिस्स देज्ज, परामस्सं जं सासग-तवसीण।
एगट्ठिदी खएज्जा, पमादेण तव-रायणीदी॥739॥ (जुम्मं)

इस अवसर पर आचार्यश्री ने कहा कि देश की सबसे प्राचीन प्राकृत भाषा है। शासन को प्राकृत भाषा के विकास के लिए अनुदान की व्यवस्था करनी चाहिए। और प्रधानमंत्री जी को परामर्श देते हुए कहा कि आपको धार्मिक कार्यों, समारोह में सदैव जाना चाहिए। उन्होंने कहा—शासक और तपस्वियों की एक-सी स्थिति होती है, थोड़े से भी प्रमाद से राजनीति व तप दोनों नष्ट हो जाते हैं।

जिणसासण-पहावणं, उत्तरादु दक्खिणंतं कुणंतो।
कुव्वीअ पदविहारं, जणा थिरेदुं सद्धम्मम्मि।।740।।

उत्तर से लेकर दक्षिण तक लोगों को समीचीन धर्म में स्थिर करने के लिए आचार्यश्री ने जिनशासन की प्रभावना करने के लिए पदविहार किया।

उणवीस-णवंबरम्मि, ऊणवीस-सय-सत्त-असीदीए।
दक्खिणं भारदं पडि, विहरीअ सिरि-विज्जाणंदो।।741।।

19 नवंबर, 1987 को आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने दक्षिण भारत की ओर विहार किया।

आयोजिद-उच्छवम्मि, रत्तदुग्गे कहिदं आइरियेण।
जदि सुसिक्खिदा णारी, कुरीदी कुपथा खयिस्संति।।742।।

उस दिन लालकिले मैदान में आयोजित समारोह में आचार्यश्री ने कहा यदि देश की नारियाँ सुशिक्षित हो जाएँ तो वे सामाजिक कुरीतियों व कुप्रथाओं को नष्ट कर सकेंगी।

बलिं अप्पघादादिं, सामाइग-दोसा खयेज्ज णारी।

जदि सुधम्मपरायणा, सुसक्कारिदा सुसिक्खिदा य॥743॥

यदि देश की नारियाँ धर्मपरायण, सुसंस्कारित व सुशिक्षित होंगी तभी वे बलि, आत्मघात आदि सामाजिक दोषों को नष्ट कर सकती हैं।

आयारिदो बेसहस्सद्दि-उच्छवो चिय आइरियेणं।

कुंदकुंदाइरियस्स, तस्स समाहि-वस्सुवलक्खे॥744॥

वीस-तीस-सहस्सेहि, अस्सुपूरिद-जणेहि जुगपुरिसस्स।

विहारो कराविदो य, अच्चंतभत्तिभाव-जुदेहि॥745॥ (जुम्मं)

उसी सभा में आचार्यश्री ने आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद स्वामी के समाधि वर्ष के उपलक्ष्य में 2000वाँ उत्सव (द्विसहस्राब्दि) मनाने के लिए संपूर्ण देश का आह्वान किया। समारोह के पश्चात् 20-30 हजार लोगों ने अत्यंत भक्ति से युक्त होकर अश्रुपूरित नयनों से उन युगपुरुष का विहार कराया।

सोलस-कत्तिग-मासे, ऊणवीस-सय-अट्ठासी-वरिसे।

उच्छवो उग्घाडिदो, उवरट्ठवदिणा ढिल्लीए॥746॥

16 अक्टूबर, 1988 को आचार्यश्री की प्रेरणा व आशीर्वाद से आचार्य कुंदकुंद द्विसहस्राब्दी समारोह का उद्घाटन दिल्ली में भारत के उपराष्ट्रपति माननीय डॉ. शंकरदयाल शर्मा के माध्यम से किया गया।

एगवरिस-पज्जंतं, उच्छाहेणं हु उच्छवायारो।

करिदो भारदवस्से, सण्णाणवड्ढणं करंतो॥747॥

संपूर्ण भारतवर्ष में एक वर्ष पर्यंत 1988-1989 सम्यग्ज्ञान का वर्द्धन करते हुए उत्साहपूर्वक यह द्विसहस्राब्दी महोत्सव मनाया गया।

अणेग-विदुसंगोट्ठी पाइद-अज्झयण-पसार-केंदो य।

ठाविदो उदयपुरम्मि, पागदविज्जा-पगासणं पि॥748॥

तिमासिग-पत्तिगाए, आरब्भिदं उदयपुरादो तदा।
अणेगणेग-कज्जाणि, होज्ज आइरिय-सण्णिहीए।।749।।

इस अवसर पर अनेक विद्वत् संगोष्ठी की गईं एवं प्राकृत अध्ययन प्रसारकेन्द्र की स्थापना उदयपुर में की गई। त्रैमासिकी पत्रिका प्राकृतविद्या का प्रकाशन भी तब उदयपुर से प्रारंभ किया गया। आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के सान्निध्य में अनेकानेक कार्य हुए।

विशेषार्थ–आ. कुंदकुंद द्विसहस्राब्दी समारोह के प्रसंग में उदयपुर, इंदौर, जबलपुर, कोबा, पूना, सागर, आरा, मेरठ, जयपुर, अजमेर, ब्यावर, सोनीपत फिरोजाबाद, सतना, कटनी आदि अनेक स्थानों पर संगोष्ठी आदि कार्यक्रम आयोजित किये गए।

णवासीदि-वरिसे पुण-वस्सजोगो करिदो कोथलीए।
णिम्माविदं सिद्धंत-दंसण-मंदिरं अणेगाण।।750।।
भवण-जिण्णुद्धारो य, करिदो विज्जाणंद-पेरणाए।
धम्म-अइपहावणाइ, संपण्णो वस्साजोगो दु।।751।। (जुम्मं)

1989 में आचार्यश्री ने कोथली में वर्षायोग किया। आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज की प्रेरणा से सिद्धांत दर्शन मंदिर का निर्माण

किया गया एवं अनेक भवनों का जीर्णोद्धार भी किया गया। अतिशय धर्म-प्रभावना के साथ यह वर्षायोग संपन्न हुआ।

णवदीए-चदुमासो, कुव्विदो य बारामदि-महरट्ठे।
जिणसासण-पहावणा, होज्ज तत्थ णाण-पवयणेहि॥752॥

सन् 1990 का चातुर्मास आचार्यश्री ने बारामती महाराष्ट्र में किया। उनके ज्ञान व प्रवचनों से वहाँ जिनशासन की खूब प्रभावना हुई।

इगणवदि-ईसवीए, चदु-असीदि-फुड-उत्तुंग-पडिमाइ।
जिण्णुद्धार-पच्छा दु, होज्ज पणकल्लाण-पदिट्ठा॥753॥

सन् 1991 में बावनगजा में प्रथम तीर्थंकर श्रीआदिनाथ भगवान् की 84 फुट उत्तुंग प्रतिमा का जीर्णोद्धार हुआ। पश्चात् आचार्यश्री के पावन सान्निध्य में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा व महामस्तकाभिषेक का भी आयोजन किया गया।

उपराष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा एवं मुख्यमंत्री श्री मोती लाल वोहरा

बावणगजा-णामेण, खेत्तं खादं देसविदेसेसुं।
उवरट्ठपदी य मुक्ख-मंती उवट्ठिदा सिंधिया वि॥754॥

यह क्षेत्र देश-विदेशों में बावनगजा के नाम से विख्यात है। इस समारोह में भारत के उपराष्ट्रपति माननीय डॉ. शंकरदयाल शर्मा जी, मुख्यमंत्री श्री सुंदरलाल जी पटवा और राजमाता विजयाराजे सिंधिया भी उपस्थित थीं।

दसलक्ख-णरणारीहि, सम्मिलिदा तम्मि आयोजणम्मि य।
जिणाहिसेगो य तस्स, अणुमण्णणं वि खयदि पावं।।755।।

उस आयोजन में दस लाख नर-नारी सम्मिलित हुए। जिनाभिषेक व उसकी अनुमोदना भी पापों का क्षय करती है।

सूरि-विज्जाणंदेण, पुण आविदो महावीर-खेत्तम्मि।
सहस्सद्दि-उच्छवस्स, णिण्णयो करिदो पेरणाइ।।756।।

समारोह के पश्चात् आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज 1991 में अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी पधारे। आचार्यश्री की मंगल प्रेरणा से प्रबंध-कारिणी कमेटी ने भगवान् महावीरस्वामी की प्रतिमा का सहस्राब्दी महोत्सव मनाने का निर्णय किया।

विशेषार्थ–आचार्यश्री ने महावीरजी दिगंबर जैन क्षेत्र पर प्रवचन दिया जिसमें उन्होंने एक अखिल भारतीय स्तर पर अद्वितीय समारोह आयोजित करने की प्रेरणा दी। उन्होंने बताया कि भगवान् महावीर स्वामी की प्रतिमा को भूगर्भ से प्रकट हुए मात्र 400 वर्ष हुए हैं। इस प्रतिमा का काल क्या है इसे जानने

हेतु अनेक विद्वान्, भक्त, शोधकर्ता आदि उत्साहित हैं। आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के डायरेक्टर जनरल डॉ. मुनीशचंद जोशी जी ने पूर्णतया प्रतिमा की जाँच कर घोषित किया कि इस प्रतिमा का निर्माण 11वीं शताब्दी में हुआ। इस प्रकार इस प्रतिमा को निर्मित हुए लगभग 1000 वर्ष पूर्ण हुए। और यहीं से प्रारंभ हो गया सहस्राब्दी महोत्सव का उद्घोष।

धम्मि-ववत्थावगेहि, पाईणमंदिरं परिवट्टिदं दु।
पुण झाणकेंदे रयण-मयी-विज्जिदा बहुपडिमा दु॥757॥

आचार्यश्री की प्रेरणा से भूतल पर बने प्राचीन मंदिर को धर्मानुरागी व्यवस्थापकों ने ध्यानकेन्द्र के रूप में परिवर्तित कर दिया। वहाँ रत्नमयी बहुत सी प्रतिमाएँ भी विराजमान कराई गईं।

विशेषार्थ—ध्यातव्य है यह उसी स्थान की बात है जहाँ आज रत्नमयी प्रतिमाएँ विराजमान हैं। वह मंदिर 400 वर्ष पूर्व निर्मित हुआ था। पूर्व में जब कभी गंभीर नदी में बाढ़ आती थी उस समय भूतल पर निर्माणाधीन मंदिर में पानी भर जाता था। अतः सुरक्षा की दृष्टि से प्रतिमाएँ भूतल से प्रथम तल पर ले जाकर स्थापित कर दीं।

एगणवदि-ईसवीइ, चदुमासो कुंदकुंदभारदीइ।
धम्मणिरवेक्खो णेव, संपदाय-णिरवेक्खो सो दु॥758॥

प्रधानमंत्री डॉ. नरसिंहराव

किदी पहाणमंतिणा, उग्घाडिदा दु सितंबरे एगे।
धम्मेगो अण्णधम्म-विरोही णो कहिदं मुणिणा॥759॥ (जुम्मं)

आचार्यश्री का सन् 1991 का चातुर्मास श्री कुंदकुंदभारती दिल्ली में हुआ। 1 सितंबर 1991 में देश के प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंह राव जी ने आचार्यश्री की ''धर्म-निरपेक्ष नहीं संप्रदाय निरपेक्ष'' नामक लघुकृति का लोकार्पण किया। मुनिवरश्री ने इस अवसर पर कहा भी कि एक धर्म कभी अन्य धर्म का विरोधी नहीं होता।

विशेषार्थ–उन्होंने कहा कि लोगों को साम्प्रदायिक सद्भाव बनाकर रखना चाहिए। सबके हित का कहना ही धर्मनिरपेक्षता है। जैसे अग्नि, अग्नि का विरोध नहीं करती वैसे ही एक धर्म भी दूसरे धर्म को विरोध नहीं करता।

एगणउदि-उत्तरूण-बीस-सहस्सवासे हरिदुववणे।
अइतिव्वजरपीडिदो, कणगणंदी एलाइरियो॥760॥
कुंथुसायर-संघम्मि, तदा सुणित्तु आयारीअ सूरी।
करीअ वेज्जावच्चं, गुरुविज्जाणंदो णेहेण॥761॥

सन् 1991 में ग्रीनपार्क, दिल्ली में आचार्य श्री कुंथुसागर जी संघ सहित पधारे। उनके संघ में एलाचार्य श्री कनकनंदी जी मुनिराज बहुत तीव्र ज्वर से पीड़ित थे। तब उनके स्वास्थ्य के विषय में सुनकर आचार्य श्री विद्यानंद जी गुरुदेव ग्रीनपार्क आए और स्नेहपूर्वक उनकी वैय्यावृत्ति की।

बाणउदि-वरिसे वि चदुमासो कुंदकुंदभारदीए हि।
णाणज्झाणतवेहिं, पहावणाइ सह जवीअ सो॥762॥

आचार्यश्री का सन् 1992 का चातुर्मास भी कुंदकुंदभारती में ही हुआ। ज्ञान, ध्यान, तप और धर्म-प्रभावना के साथ उन्होंने वह चातुर्मास व्यतीत किया।

हरिदुववण-ढिल्लीए, तिणउदिवरिसे करिदो चदुमासो।
अइ-पहावणाइ तदा, पुण्णो णाण-भत्ति-पहुदीहि॥763॥

सन् 1993 का चातुर्मास आचार्यश्री का ग्रीनपार्क दिल्ली में हुआ। तब उनका यह चातुर्मास ज्ञान, भक्ति आदि के साथ अति धर्मप्रभावनापूर्वक संपन्न हुआ।

चदुणवदि-वरिसे कुंद-कुंदभारदीए वस्साजोगो।
करिदो आइरियेणं, अज्झप्प-साहणा-विड्ढीइ॥764॥

अध्यात्मसाधना की वृद्धि के लिए आचार्यश्री ने 1994 का वर्षायोग भी कुंदकुंदभारती में किया।

पंचणवदि-वरिसे पुण, बाहुबली-खेत्तम्मि दु ढिल्लीए।
जइण-समूहं थिरिदुं, धम्मे सासण-पहावणाइ॥765॥
वस्साजोगो करिदो, आइरिय-सिरि-विज्जाणंदेणं दु।
धम्मम्मि धणिग-ठवणं, महाकज्जं संपइयाले॥766॥ (जुम्मं)

जैन समुदाय को धर्म में स्थिर करने के लिए और जिनशासन की प्रभावना के लिए आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने सन् 1995 का चातुर्मास बाहुबली एन्क्लेव दिल्ली में किया। वर्तमान काल में धनिकजनों को धर्म में स्थिर करना बहुत बड़ा कार्य है।

लाल-बहादुर-सत्थी-रट्ठीय-सक्किद-विज्जापीढम्मि।
ढिल्लीए पागदस्स, आरब्भीअ गुरु-पेरणाइ॥767॥

श्री लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ में

पमाणपत्त-पदविगा-अब्भासकमं छण्णवदि-वरिसम्मि।

कुंदकुंदभारदीइ, कत्तिगे वस्साजोगम्मि य॥768॥ (जुम्मं)

सन् 1996 में आचार्यश्री का चातुर्मास कुंदकुंद भारती दिल्ली में हुआ। उस चातुर्मास के समय अक्टूबर में आचार्य गुरुदेव श्री विद्यानंदजी की प्रेरणा से श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ विश्वविद्यालय दिल्ली में प्राकृतभाषा का सर्टिफिकेट और डिप्लोमा कोर्स शुरू हो गया। (उस समय विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. डॉ. वाचस्पति उपाध्याय जी थे। इनका और संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति डॉ. मण्डन मिश्र जी का इसमें विशेष सहयोग व श्रम था।)

पागद-अज्झयणस्स दु, उच्छाहपूरिद-सव्ववग्गजणा।

पागदा मूलभासा, भारदस्स माणणीया जं॥769॥

प्राकृतभाषा के अध्ययन के लिए सभी वर्ग के लोग भारी उत्साह से भरे हुए थे। क्योंकि प्राकृतभाषा माननीय व भारत की मूलभाषा है।

जयपुर-रायट्ठाणे, सत्तणउदीए वस्साजोगो दु।

समयसार-गंथो उवदिसिदो पढमवारं केणं॥770॥

णिग्गंथेणं तदा हि, मूलभासाए णाणाभावम्मि।

उप्पण्णणेग-भंती, णस्सिदा सगसेट्ठणाणेण॥771॥ (जुम्मं)

आचार्यश्री का सन् 1997 का वर्षायोग राजस्थान की राजधानी जयपुर में हुआ। तब पहली बार किन्हीं निर्ग्रन्थ दिगंबर मुनिराज ने समयसार ग्रंथ पर उपदेश दिया। मूलभाषा के ज्ञान के अभाव में अनेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुई थीं। उन सब भ्रान्तियों को आचार्यश्री ने अपने श्रेष्ठ ज्ञान से नष्ट कर दिया।

ववहार-णिच्छय-णयो, उहयो हि आवसियो समरूवेण।

णय-णाणेण विणा जं, असक्को गमणं जिणमग्गे॥772॥

व्यवहारनय और निश्चयनय दोनों ही समान रूप से आवश्यक हैं। क्योंकि नयों के ज्ञान के बिना जिनमार्ग अर्थात् मोक्षमार्ग पर गमन करना अशक्य है।

राजस्थान मुख्यमंत्री
श्री भैरोंसिंह शेखावत

पूर्व राज्यपाल
श्री बलिराम भगत

सहस्सद्दि-महुच्छवो, आयोजिदो दु एगफरवरीए।

अट्ठदिवसंतं अट्ठ-णउदि-वासे अइ-णंदेणं॥773॥

(जिस सहस्राब्दी महोत्सव की भूमिका सन् 1991 में बन गई थी अब उस महोत्सव का समय भी आ गया।) सन् 1998 में 1 फरवरी से आठ दिन पर्यंत अर्थात् 8 फरवरी तक वह सहस्राब्दी महोत्सव अति आनंद के साथ मनाया गया।

वइसालि-जणपद-णाम-भव्व-विसाल-मंडवे उच्छवस्स।

लक्खजणा सम्मिलिदा, आइ-उच्छाहेण हरिसेण॥774॥

अट्ठुत्तर-सहस्सेहि, कलसेहि अहिसेगो उच्छाहेण।

पडिमा विराइदा गंभीर-णदि-पुव्व-णिम्मिदम्मि य॥775॥ (जुम्मं)

(1 फरवरी को एक विशाल रथयात्रा महोत्सव का आयोजन किया गया। उस दिन भगवान् महावीर स्वामी की वह प्रतिमा जो प्रतिवर्ष महावीरजी मेले के अवसर पर बाहर ले जाई जाती है) उस प्रतिमा को गंभीर नदी

के पूर्व में बने 'वैशाली जनपद' नामक भव्य विशाल मंडप में महोत्सव हेतु विराजमान की गई। वहाँ 1008 कलशों से प्रतिमा का उत्साहपूर्वक अभिषेक हुआ। उस महोत्सव में अति उत्साह व हर्षपूर्वक लाखों लोग सम्मिलित हुए।

सुंदर-झाणकेंदो वि, उग्घाडिदो सूरि-सण्णिहीए दु।
समागद-सद्धालूण, आगरिसण-पहाण-केंदो य॥776॥

आचार्यश्री के सान्निध्य में तब सुंदर ध्यान केन्द्र का उद्‌घाटन हुआ। वहाँ आने वाले श्रद्धालुओं के लिए वह ध्यानकेन्द्र आकर्षण का प्रमुख केन्द्र रहा।

आणंदेणं इत्थं, उणवीस-सय-अट्ठणउदि-वच्छरो।
आरब्भो धम्मीणं, सव्वाण भद्द-परिणामीण॥777॥

इस प्रकार सभी धर्मात्मा, भद्र परिणामी जीवों का वर्ष 1998 बहुत आनंद के साथ प्रारंभ हुआ।

णवरोहदगमग्गम्मि, ढिल्लीए वस्साजोगो हु तदा।
णिवेदणम्मि संपुण्ण-पच्छिम-इंदपत्थस्स होज्ज॥778॥

संपूर्ण पश्चिमी दिल्ली के निवेदन पर आचार्यश्री का सन् 1998 का चातुर्मास न्यू रोहतक मार्ग, दिल्ली में हुआ।

ऊणतीस-णवंबरे, कलिंगचक्कहिवदि-खारवेलस्स।
सिमदीए खारवेल-भवणस्स चिय आहारसिला॥779॥
ठाविदा उडीसाए, ढिल्लीए तदा मुक्खमंतीणं।
कुंदकुंदभारदीइ, गोरवमय-उवट्ठिदीए दु॥780॥ (जुम्मं)

29 नवंबर 1998 को कलिंग चक्राधिपति खारवेल की स्मृति में कुंदकुंदभारती में खारवेल भवन (विशाल भवन व पुस्तकालय) का शिलान्यास किया गया। यह शिलान्यास उड़ीसा के मुख्यमंत्री श्री जानकीवल्लभ पटनायक और दिल्ली की मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित जी की गौरवमयी उपस्थिति में किया गया।

बेसहस्स-ईसवी दु, उग्घोसिदो य खारवेल-वासो।
उडिसा-मुक्खमंतिणा, भवण-णिम्माणे सहजोगो।।781।।

उड़ीसा के मुख्यमंत्री ने घोषणा की कि वर्ष 2000 खारवेल वर्ष के रूप में मनाया जाएगा। उन्होंने भवन निर्माण में सहयोग करने की भी घोषणा की।

ढिल्ली-मुक्खमंतिणा, हाथीगुंफासिलालेह-विसये।
कहिदं वावग-सोहो, आवसियो पगासणाए दु।।782।।

दिल्ली की मुख्यमंत्री ने सभा में हाथीगुम्फा के प्राचीन शिलालेख के विषय में भी कहा। उन्होंने कहा इस शिलालेख में सम्राट खारवेल की संपूर्ण कलिंग पर विजय का इतिहास अंकित है। इसके प्रकटीकरण के लिए व्यापक-शोध की आवश्यकता है।

मुणि-पेरणाइ ठाविद-भवणं कलिंग-सक्किदीणं इदं।
होज्ज विजय-थंभो चिय, एदिहासिग-पसंगो इमो।।783।।

संपूर्णानंद संस्कृत विद्यालय, वाराणसी के कुलपति डॉ. मण्डन मिश्र ने कहा कि मुनिश्री विद्यानंदजी की प्रेरणा से स्थापित यह भवन कलिंग की संस्कृति का विजयस्तंभ होगा। यह कार्य एक ऐतिहासिक प्रसंग है।

भवणं पमुहो केंदो, होज्ज सोहस्स राय-खारवेले।
कहिदं तेण पेरिदं, सक्किद-पागद-उण्णयणं दु।।784।।

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने अपने प्रवचन में कहा कि यह भवन राजा खारवेल पर शोध का प्रमुख केंद्र होगा। उन्होंने संस्कृत व प्राकृत के उन्नयन के लिए सभी को प्रेरित किया।

विशेषार्थ–इस भवन निर्माण हेतु दान प्रदाता श्री माणिकचंद उगरचंद शाह, वाराणसी को भी आशीर्वाद दिया।

हरिदुववणढिल्लीए, णवणउदि-वासम्मि वस्साजोगो।
करिदो सूरिणा तदा, सगप्प-साहणा-विड्ढीए।।785।।

पुनः अपनी आत्म-साधना की वृद्धि के लिए आचार्यश्री ने 1999 का वर्षायोग ग्रीनपार्क दिल्ली में किया।

सोलसजूण-णवणउदि-वासे पणहत्तरवासे पुण्णे।
सूरि-विज्जाणंदेण, गहिदा णियमसल्लेहणा दु।।786।।
दिक्खाए दु पणवण्ण-वास-पुण्णा तदा बडोद-णयरे।
वड्ढिदुं सग-साहणं, उत्तमसमाहिभावणाए।।787।। (जुम्मं)

1999 में आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज की आयु के 75 वर्ष और दीक्षा के 55 वर्ष पूर्ण हुए। 16 जून 1999 को (दोपहर 11:22 बजे) आचार्यश्री ने बड़ौत में अपनी साधना को वृद्धिगत करने के लिए उत्तम समाधि की भावना से नियम सल्लेखना ग्रहण की।

णिगामसरलभावेहि, णिद्देसा दायिदा सावगाणं।
संथा-भवणादी मम, णामे पडिमादी ण पच्छा।।788।।

आचार्यश्री ने तब अत्यन्त सरल भावों से श्रावकों के लिए निर्देश दिए कि 'मेरे पश्चात् मेरे नाम से किसी संस्था, भवनादि का निर्माण न किया जाए और न ही मेरी किसी प्रकार की प्रतिमा आदि स्थापित की जाए।'

बेसहस्स-ईसवीइ, कातंत-वागरणस्सायोजिदा।

रट्ठीय-गोट्ठी पव्व-सुदपणमीए भारदीए॥789॥
अणेग-सोह-णिबंधा, वाइदा विहिण्ण-विसयेसु विदूहि।
सूरिवर-विज्जाणंद-सण्णिहीए णाण-विड्ढीइ॥790॥ (जुम्मं)

6-7 जून सन् 2000 में आचार्यश्री के मंगल सान्निध्य में ज्ञान वृद्धि हेतु श्री कुंदकुंदभारती में श्रुतपंचमी पर्व के दिन कातंत्र-व्याकरण ग्रंथ पर राष्ट्रीय गोष्ठी आयोजित की गई। विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विषयों पर अनेक शोधनिबंधों का वाचन किया।

भारदीए तीस-इग-तीस-दिणंके बेसहस्स-वासे।
भारदीय-दंसण-परिसदस्स संठावणाए चिय॥791॥
हीरग-जयंतीए दु, विस्स-दंसणिग-महासहा तादा हि।
बारस-सय-पण्णासा, आगदा विदू दंसणिगा दु॥792॥ (जुम्मं)

(श्री रवीन्द्रनाथ जी टैगोर व डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् जैसे महापुरुषों द्वारा स्थापित) भारतीय दर्शन परिषद् की स्थापना के सन् 2000 में 75 वर्ष पूर्ण हुए। उस परिषद की हीरक ज यंती पर 30 व 31 दिसंबर को 'विश्व दार्शनिक महाधिवेशन' का आयोजन दिल्ली में किया गया। उस समारोह में लगभग 1250 दार्शनिक विद्वान् पधारे थे।

तीसदिसंबरम्मि चिय, अग्गिस्स जीवत्त-सत्ति-विसयम्मि।
उब्बोहणं दायिदं, सूरि-सिरी-विज्जाणंदेण॥793॥

30 दिसंबर, 2000 को आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने 'अग्नि की जीवत्व शक्ति' विषय पर ज्ञानपूर्ण विस्मयकारी उद्बोधन दिया।

विशेषार्थ–आचार्यश्री का यह शोधपरक व्याख्यान 'अग्नि की जीवत्वशक्ति' नामक लघु पुस्तक में निबद्ध किया गया। आचार्यश्री ने बताया कि प्राणवायु और जल की तरह अग्नि भी प्राणियों के जीवन का अविभाज्य अंग है।

जइण-बाल-अस्समम्मि, ढिल्लीए वस्साजोगो हु तदा।
वासम्मि बेसहस्से, पुव्वोव्व अइ-पहावणाए।।794।।

सन् 2000 में आचार्यश्री का चातुर्मास जैन बालाश्रम, दिल्ली में पूर्व के समान ही अति धर्म प्रभावना के साथ संपन्न हुआ।

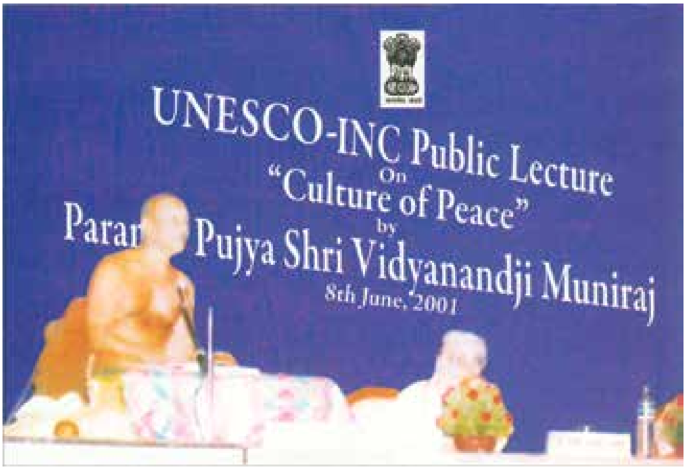

यूणेक्केणं दु विस्स-वावी कज्जकमो संचालिदो दु।
संति-पेम्म-पसारस्स, तम्मि सूरि-विज्जाणंदस्स।।795।।
मंगल-वक्खाणं चिय, माणव-संसाधण-मंतालयेण।
आयोजिदं सहाइ च, सुक्कवासरे सहागारे।।796।।

यूनेस्को द्वारा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति व प्रेम के प्रसार के लिए विश्वव्यापी कार्यक्रम संचालित किया जा रहा था। उसमें ही मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज का मंगल व्याख्यान (8 जून 2001) शुक्रवार को 'नेशनल म्यूजियम सभागार' नई दिल्ली में आयोजित किया गया।

विशेषार्थ–इस समारोह की अध्यक्षता मानव संसाधन विकास मंत्री श्रीमान् मुरली मनोहर जोशी ने की।

अग्गिम-वस्साजोगो, संपुण्णो अहिंसा-थल-ढिल्लीइ।
दो-अहिय-बेसहस्से, मुणीरगा-मंदिरम्मि तस्स॥797॥

आचार्यश्री का अग्रिम (सन् 2001) का वर्षायोग अहिंसा स्थल, दिल्ली में पूर्ण हुआ और उनका सन् 2002 का वर्षायोग दिल्ली आर.के. पुरम् मुनीरका मंदिर में संपन्न हुआ।

दोसहस्सेगवासे, महामत्थगहिसेगो भत्तीइ।
सूरिसंघ-संणिज्झे, अहिंसाथले पहावणाइ॥798॥

सन् 2001 में अहिंसास्थल दिल्ली में आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज ससंघ सान्निध्य में धर्मप्रभावना के साथ भक्तिपूर्वक श्री महावीर जिनप्रतिमा का महामस्तकाभिषेक हुआ।

गुरु-आणाए हं पि, पहुच्चीअ संघेण सह गुरुपदेसु।
अणेगविदू सेट्ठी य, सहस्सा भत्ता तत्थ॥799॥

गुरु आज्ञा से हम भी गुरु चरणों में संघ सहित पहुँचे। वहाँ अनेक विद्वान्, श्रेष्ठी व हजारों भक्त उत्सव में सम्मिलित हुए थे।

अहो णिण्णय-सायरो, तित्थयर-पहावणा परिलीएज्ज।
उच्छाहेण एवंविह, कहीअ सूरी वच्छल्लेण॥800॥

तब आचार्य गुरुदेव ने वात्सल्यपूर्वक कहा-अहो निर्णय सागर महाराज! तीर्थंकर प्रभु की प्रभावना में इस प्रकार उत्साहपूर्वक सदैव लीन रहना।

सगजम्माइ-उच्छवं, करावंति साहू संपइयाले।
वरं कल्लाणुच्छवं, तित्थाण करावेज्ज सुहस्स॥801॥

आज वर्तमानकाल में साधुजन अपने जन्मादि महोत्सव मनवाते हैं किंतु शुभ के लिए तीर्थंकरों के कल्याणकों पर उत्सव कराना चाहिए।

पहुच्चंते चदुविहा, देवा तित्थयरजम्महिसेगे।
लहंति किदकारिदाणुमोदणेहि सिव-मप्पभवेसु॥802॥

उन्होंने कहा कि तीर्थंकर प्रभु के जन्माभिषेक में चारों निकाय के देव पहुँचते हैं एवं कृत, कारित व अनुमोदना से अल्पभवों में मोक्ष प्राप्त करते हैं।

बेसहस्सबेवासे, सूरी आहवीअ पणकल्लाणे।
अच्चंतवच्छलेणं, विस्सासणयरे ढिल्लीए॥803॥
देज्ज उवज्झायपदं, कहीअ तव अज्झयणरुई विसिट्ठा।
णाणपयासं कुणसु, जीवणे णाणत्थि सिस्साण॥804॥

सन् 2002 में आचार्यश्री विद्यानंद जी मुनिराज ने हमें विश्वास नगर दिल्ली के पंचकल्याणक में अत्यंत वात्सल्यपूर्वक बुलाया। वहाँ उन्होंने (मुनि श्री निर्णयसागर जी को) उपाध्याय पद दिया और कहा कि आपकी अध्ययन में रुचि अत्यंत विशिष्ट है। ज्ञानार्थी व शिष्यों के जीवन में सदैव सम्यग्ज्ञान का प्रकाश करें।

विशेषार्थ–सन् 2002 में जब मुनि श्रीनिर्णयसागर जी महाराज वर्तमाल में आचार्य श्री वसुनंदी जी खेकड़ा में विराजमान थे तब कुंदकुंद भारती की कमेटी एवं विश्वास नगर दिल्ली की कमेटी उनके पास पहुँची एवं विश्वास नगर दिल्ली पंचकल्याणक में पधारने का निवेदन किया और कहा गुरुदेव! ऐसी आपके गुरुदेव की आज्ञा है। तब गुरु की आज्ञा पालन करते हुए वे पंचकल्याणक में उपस्थित हुए एवं आचार्यश्री ने वहाँ 21वीं सदी के प्रथम उपाध्याय के रूप में उन्हें संस्कारित किया।

ति-अहिय-बेसहस्स-वारिसादो सत्तहिय-बेसहस्संतं।
पंच-वस्साजोगा य, कुंदकुंदभारदीए चिय।।805।।

सन् 2003 से सन् 2007 तक आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के पाँच चातुर्मास श्री कुंदकुंदभारती दिल्ली में संपन्न हुए।

चरिय-चक्कि-सूरि-संतिसिंधुस्स जम्मजयंदि-उवलक्खे।
सयहियिगतीसइमस्स, सूरिवर-विज्जाणंदेण।।806।।
उणवीस-जुलाईदो, तिअहियबेसहस्स-वासादु तेण।
एगवस्सपज्जंतं, उग्घोसिदो संजमवरिसो।।807।। (जुम्मं)

चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागरजी मुनिराज की 131वीं जन्म जयंती के उपलक्ष्य में आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने 19 जुलाई, 2003 से एक वर्ष पर्यंत वह वर्ष संयम वर्ष के रूप में उद्घोषित किया।

गिह-गिहे संतिसिंधू, मणे मणे संतिसायरो य।
संतिसिंधुं पडि किदण्हु-भावेण दायिदो घोसो।।808।।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागरजी मुनिराज के प्रति कृतज्ञ भाव से आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने देश को एक नारा दिया **"घर-घर में हो शान्तिसागर, मन-मन में हो शांतिसागर"**।

णेव तिरक्करेज्जा य, आलिंगेज्ज धम्मं सिक्खावेज्ज।
भासिदो मूलमंतो, जइण-समाय-एगत्तस्स दु।।809।।

'मत ठुकराओ, गले लगाओ, धर्म सिखाओ' यह मूलमंत्र आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने जैन समाज की एकता के लिए दिया।

तिउत्तरबेसहस्से, इगतीसुत्तर-सयम-जम्मवासे।
कारिदुच्छवेसुं चरिय-चक्कि सूरी-संतिसायरस्स।।810।।
अणेगधम्म कज्जाइं, विदु-गोट्ठी सेट्ठ-अणुट्ठाणादी।
कहिदं लिहिदुं गंथं, ममं संतिसायर-चरित्ते।।811।।

सन् 2003 में चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री विद्यानंद जी मुनिराज के 131वें जन्म वर्ष के अंतर्गत कराए गए उत्सवों में अनेक धर्मकार्य, विद्वानों की गोष्ठी व श्रेष्ठ अनुष्ठानादि सम्मिलित थे। उस समय आचार्यश्री ने मुझे आचार्य श्री शांतिसागर जी के चरित्र पर एक ग्रंथ लिखने को कहा।

गुरु-आणाए लिहिदं, अम्हाण आयंसो गुरुकिवाए।
गुरु-वच्छल वरिसं हं, अणुभवीअ कहिदुं असक्को।।812।।

गुरु की आज्ञा व कृपा से हमने 'हमारे आदर्श' नामक कृति का सृजन किया। उस समय गुरु के वात्सल्य की वर्षा का जो अनुभव मैंने किया वो मैं यहाँ कहने में अशक्य हूँ।

मेरठाणंदपुरीइ, समाय-पमुहा भारदिं गच्छीअ।
मुणिभवणुग्घाडणस्स, लहिदु-मासिं णिवेदीअ पुण।।813।।
संतभवणणामो वयं, कंखेज्ज सूरी-विज्जाणंदो।
भासीअ णिसेहंतो, उवज्झाय-णिण्णयसिंधू हि।।814।।
सुहणामो भवणस्स, णिम्मिदं पि तं तस्स पेरणाए।
मेरठ-णिवासीण हं, अइभत्ती जाणेमि पडि तं।।815।। (तिअं)

2003 में मेरठ आनंदपुरी समाज के प्रमुख लोग नवनिर्मित संत भवन के उद्घाटन के लिए आचार्यश्री के चरणों में कुंदकुंदभारती पहुँचे। पुनः निवेदन किया कि आचार्यश्री हमें आशीर्वाद दें, हम अपने संतभवन का नाम 'आचार्य विद्यानंद संत भवन' रखना चाहते हैं। तब उन्होंने इसका निषेध करते हुए कहा–नहीं, आप अपने संतभवन का नाम 'उपाध्याय निर्णय सागर संत भवन' रखें, वह उनकी प्रेरणा से निर्मित भी है। आचार्यश्री पुनः मुस्कुराते हुए कहने लगे–मेरठ वालों की उनके प्रति अत्यंत भक्ति को मैं जानता हूँ।

तिउत्तरबेसहस्से, समायारो पत्तो गुरुस्स मए।
बद्दिणाह-जत्ताए, उसहजिण-णिव्वाणभूमीइ॥816॥
सिद्धभूमिवंदणेण, सत्थलाहो मणविसुद्धो णिच्चं।
गच्छेज्ज पहावणाइ, सक्किदि-रक्खाइ णिमित्तं पि॥817॥

सन् 2003 में मुझे आचार्य श्री विद्यानंद जी गुरुदेव का समाचार प्राप्त हुआ कि आप प्रथम तीर्थंकर श्री वृषभनाथ जिनेंद्रदेव की निर्वाणभूमि बद्रिनाथ की यात्रा के लिए जाएँ। उन्होंने कहा कि सिद्धभूमि के वंदन से स्वास्थ्य लाभ होता है, चित्त नित्य विशुद्ध होता है। संस्कृति की रक्षा के निमित्त व धर्म प्रभावना के लिए भी यात्रा के लिए जाना चाहिए।

गुरु-आसीवायेणं, होज्ज सुहतित्थवंदणा अम्हाण।
वंदण-मणुसंधाणं, करीअ ठाइय सत्तगेगं॥818॥

गुरु की आज्ञा प्राप्त कर सन् 2003 में हम बद्रीनाथ यात्रा के लिए गए। गुरुदेव के आशीर्वाद से हमारी वह शुभ तीर्थवंदना हुई। वहाँ एक सप्ताह रुककर हमने वंदना व अनुसंधान किया।

पावण-तित्थवंदणा, पावखयकारगा पुण्णवड्ढगा।
णिरीहवित्ति-पोसगा, करेज्जा तित्थवंदणं तं॥819॥

अहो! यह पावन तीर्थवंदना पापों का क्षय करने वाली, पुण्य को बढ़ाने वाली व निरीहवृत्ति का पोषण करने वाली है इसलिए तीर्थवंदना करनी चाहिए।

एगुत्तरबेसहस्से, हेममउडेण कराविदं माणं।

सोणियागंधीए दु, तदा ताए सुहकज्जाणं।।820।।

आचार्यश्री ने सन् 2001 में दिल्ली में माननीया सोनिया गांधी जी का सम्मान सोने का मुकुट पहनवाकर उनके शुभ कार्यों के लिए कराया।

श्रीमती सोनिया गांधी का सम्मान

देज्ज अस्सासणं सा, धम्मरक्खाइ देस-पया-हिदस्स।

लहिदो आसीवायो, पुण सूरी-विज्जाणंदेण।।821।।

उन्होंने धर्म की रक्षा एवं देश व प्रजा के हित का आश्वासन दिया। पुनः उन्होंने आचार्य श्री विद्यानंदजी मुनिराज से आशीर्वाद प्राप्त किया।

विशेषार्थ–10 जून सन् 2001 में सिरी फोर्ट ऑडिटोरियम, दिल्ली में आयोजित कार्यक्रम में आचार्य श्रीविद्यानंद जी मुनिराज के सान्निध्य में माननीया श्रीमती सोनिया गांधीजी का सम्मान स्वर्ण मुकुट पहनाकर किया

गया। उस समय राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत जी भी उपस्थित थे। उस कार्यक्रम में अहिंसा पुरस्कार निर्मला ताई देशपांडे गांधीवादी समाजसेवकी के लिए प्रदान किया गया और अहिंसा प्रसारक ट्रस्ट मुंबई द्वारा प्रवर्तित ब्राह्मी पुरस्कार ब्राह्मी लिपि के श्रेष्ठ विद्वान् प्रो. किरण कुमार थपलियार, लखनऊ के लिए दिया गया।

सीरीफोर्ट ऑडोरियम श्रीमती सोनिया गांधी के साथ चर्चा

श्रीमती सोनिया गांधी आशीर्वाद लेते हुए

चदुत्तरबेसहस्से, बसंतकुंजे पंचकल्लाणम्मि।
गुरु-आणाइ तत्थ हं, पहुच्चीअ पाणीपदादो॥822॥

गुरुणा कराविदं मम, पवयणं णिय-उवएसपुव्वम्मि।
दायिदा सइद्धंतिग-उवएसा तत्थ छलेस्सासु।।823।।
गुरु-विज्जाणंदेणं, संवेगाइ-भाव-उप्पायगा य।
जीवाणं मणोवित्ति-दंसायगा णाणकारगा।।824।।
भो णिण्णयसायरो, लेस्सं पस्सित्ता जाणेज्ज जणा।
साहम्मीण ण असुहा, सुहा उत्तरोत्तरा वदीण।।825।।

सन् 2004 में बसंतकुंज दिल्ली के पंचकल्याणक आचार्य श्री के सान्निध्य में हुए। आचार्यश्री का संकेत पंचकल्याणक में सम्मिलित होने के लिए हुआ। तब गुरु की आज्ञा से हम पानीपत से वहाँ पहुँचे। आचार्यश्री ने वहाँ अपने प्रवचन से पूर्व हमारे प्रवचन कराये। एवं स्वयं आचार्यश्री ने छह लेश्याओं पर सैद्धांतिक उपदेश दिया। आचार्यश्री के वे उपदेश संवेगादि भावों को उत्पन्न करने वाले, जीवों की मनोवृत्ति को दिखाने वाले एवं सम्यग्ज्ञान के कारक थे।

उन्होंने कहा निर्णय सागर जी महाराज! लेश्या देखकर व्यक्तियों को जान लेना चाहिए। साधर्मियों की अशुभ लेश्या नहीं होती और व्रतियों की लेश्या उत्तरोत्तर शुभ ही होती है।

किण्हाणयरसमायो, आवीअ वस्साजोग-पत्थणाइ।
पस्सिय भत्तिं कहीअ, तत्थ कुव्वेदुं चउमासं।।826।।

उसी समय कृष्णानगर समाज वहाँ वर्षायोग की प्रार्थना के लिए आयी। उनकी भक्ति देखकर आचार्यश्री ने वहीं चातुर्मास करने को कहा।

चदु-उत्तर-बेसहस्स-वासम्मि-किण्हाणयर-चउमासे।
दुसावणमासा तदा, इगमासे भारदीए हं।।827।।

सन् 2004 में हमारा (आचार्यश्री वसुनंदी जी मुनिराज ससंघ) का चातुर्मास कृष्णानगर, दिल्ली में हुआ था। तब 2004 में कृष्णानगर चातुर्मास में दो सावन के महिने थे।

अज्झयणं कराविदुं, आयारीअ भारदीए हि तदा।
रहस्साइ-गंथाणं, देज्ज सग-पोत्थआणि वि मज्झ॥828॥

उस समय उस एक माह में आचार्यश्री ने रहस्य आदि ग्रंथों का अध्ययन कराने के लिए हमें कुंदकुद भारती में बुलाया, तब उन्होंने अपनी बहुत सी डायरियाँ भी हमको दीं।

ठाएज्ज गुरु-अण्णाइ, अइवच्छलाइरियेण पडिदिवसे।
आहारो कराविदो, खीरण्णस्स सत्थलाहस्स॥829॥

तब मैं गुरु आज्ञा से सावन के एक महिने कुंदकुंदभारती में ठहरा। आचार्यश्री ने बहुत वात्सल्य से स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रतिदिन क्षीरान्न (खीर) का आहार कराया।

अह चंदणयरं तेण, सह गच्छीअ गुरु-आणाए।
सिरिबाहुबलिसामिस्स, महामत्थगाहिसेगस्स दु॥830॥

अथानंतर सन् 2005 में गुरु आज्ञा से उनके साथ ही हम श्री बाहुबली भगवान् के महामस्तकाभिषेक के लिए चंद्रनगर- फिरोजाबाद पहुँचे।

अणेगविदुसेट्ठीणं, अपार-जण-णिअर-मज्झे णंदेण।
अइधम्मपहावणाइ, संपण्णो सो उच्छाहेण॥831॥

वहाँ अनेक विद्वान्, श्रेष्ठी व अपार जनसमूह के मध्य आनंद व उत्साहपूर्वक अत्यंत धर्मप्रभावना के साथ कार्यक्रम संपन्न हुआ।

अणंतरं पहुच्चीअ, सउरिपुर-बडेसार-वंदणं कडुअ।
सहस्सचंददंसणुच्छवायरणं करिद-मागरं॥832॥

अनंतर हम सिद्धक्षेत्र शौरीपुर, बटेश्वर की वंदना करके आगरा पहुँचे। वहाँ सहस्रचंद्रदर्शन उत्सव मनाया गया।

विशेषार्थ–आचार्यश्री के जन्म को लगभग 80 वर्ष पूर्ण होने पर अथवा 1000 पूर्णमासी होने से उत्सव का नाम सहस्रचंद्रदर्शन रखा गया, जिसके अंतर्गत गोष्ठी, विद्वत्सम्मान आदि किया गया।

एयदा भारदीए, मुक्खदारं पहुच्चीअ चंपंतो।
गुरुदेवेणं सह हं, पस्सिदूण गवमेगं तत्थ॥833॥
कहीअ भो गोमादू!, अणुवज्जह पच्छिमभागे विविणे।
दाएज्ज को वि कट्ठं, जं अत्थ अहो गुरु-वच्छलं॥834॥

एक बार आचार्यश्री के साथ वार्ता करते हुए हम कुंदकुंदभारती के मुख्यद्वार तक पहुँच गए। (वहाँ एक गाय घूम रही थी और उस दिन कुछ वाहन वहाँ तेजी से निकल रहे थे।) उस गाय को देखकर आचार्यश्री ने कहा–हे गौमाता! पीछे जंगल में चली जाओ क्योंकि यहाँ कोई भी तुम्हें कष्ट दे सकता है। तब उसी समय वह गाय पीछे चली गई। अहो! गुरुदेव का वात्सल्य।

वच्छल्लेण इगदिणे, कहीअ हरिसेण पसण्णमुद्दाइ।

अहो णिण्णयसायरो, जदि तुज्झ सत्थं अणुऊलं॥835॥

सवणबेलगोलं बे-सहस्स-छ-वस्से महाहिसेगस्स।

मम पडिणिहि-रूवे अवि, गच्छेज्ज आयोजगा अत्थ॥836॥ (जुम्मं)

तब एक दिन हर्ष व वात्सल्य से प्रसन्नमुद्रा में आचार्यश्री ने कहा निर्णयसागर महाराज, यदि आपका स्वास्थ्य अनुकूल हो तो सन् 2006 में होने वाले महामस्तकाभिषेक के लिए मेरे प्रतिनिधि के रूप में आप श्रवणबेलगोल चले जाइए। अभी यहाँ आयोजक भी उपस्थित हैं।

कंखेमि तुज्झ देदुं, पवट्टगाइरिय-पदं चिय सेट्ठं।

गच्छेज्ज अहिसेगस्स, सूरिवड्ढमाण-सण्णिहीइ॥837॥

मैं आपको श्रेष्ठ प्रवर्तकाचार्य पद देना चाहता हूँ आचार्यश्री वर्धमानसागर जी मुनिराज के सान्निध्य में अभिषेक के लिए चले जाइये।

कहिदं मए तदा अइ-विणयेण गुरुदेवो ण सक्को हं।

गच्छेदुं तुमं विणा, अजोग्गो सूरि-पदं गहिदुं॥838॥

तब अतिविनयपूर्वक मैंने कहा हे गुरुदेव ! मैं आपके बिना जाने में समर्थ नहीं हूँ। मैं आचार्य पद ग्रहण करने में अयोग्य हूँ।

पण-अहिय-बेसहस्से, वासम्मि कत्तिगे णवढिल्लीए।

आरब्भिदो य सयद्दि-वासो सिरि-देसभूसणस्स॥839॥

अक्टूबर 2005 में कुंदकुंदभारती दिल्ली में भारत गौरव आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज का 'शताब्दी वर्ष' का शुभारंभ आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के माध्यम से हुआ।

पणुत्तरबेसहस्से, समसाबादम्मि सत्थ-पडिऊलं।

पहुच्चाविदा आसी, अइचिंतित्ता गुरुदेवेण॥840॥

दिसंबर सन् 2005 में शमशाबाद में (खूनी पेचिश होने से) हमारा स्वास्थ्य अत्यंत प्रतिकूल था तब गुरुवर ने अत्यंत चिंतित होकर अपना आशीर्वाद पहुँचाया जिससे मुझे शीघ्र स्वास्थ्य लाभ हुआ।

बेसहस्सट्ठवासे, असहणीय-पीडा मज्झं दंते।
अक्कलदाढेण तदा, हरिदोववण-जिणमंदिरं दु।।841।।
आगच्छीअ गुरुवरो, दायित्ता आसिं च कुसलखेमं।
पुच्छित्तु संबोहणं, दाएज्ज अच्चंतणेहेण।।842।।

सन् 2008 में जब हम ग्रीनपार्क में ठहरे हुए थे उस समय अक्कलदाढ़ के कारण मेरे दाँत में असहनीय पीड़ा थी। कुछ दिन आहार लेने में भी असमर्थता रही। तब गुरुवर आचार्य श्रीविद्यानंद जी मुनिराज ग्रीनपार्क जिनमंदिर आये। उन्होंने कुशलक्षेम पूछकर आशीर्वाद देकर अत्यंत स्नेहपूर्वक संबोधन दिया।

णवुत्तर-बेसहस्से, होज्ज पदिट्ठा तिजाराखेत्तम्मि।
पेसीअ पडिमा मुणी, चदू पदिट्ठाइ भारदीइ।।843।।

फरवरी सन् 2009 में अतिशय क्षेत्र देहरा तिजारा में चंद्रगिरी में नवनिर्मित चौबीसी की भव्य प्रतिष्ठा हुई थी। उस समय आचार्यश्री विद्यानंद जी मुनिराज ने कुंदकुंद भारती के मानस्तंभ की चार प्रतिमाएँ भी प्रतिष्ठा हेतु वहाँ भेजीं।

गुरु-संदेसो वि णेव, उक्किण्णो मम णामो पसत्थीइ।
किण्णु असंभवो इमो, तं लिहावीअ जिणपडिमासु।।844।।

तब गुरुदेव का संदेश भी आया कि 'मेरा नाम प्रशस्ति पर नहीं लिखवाना'। किंतु यह मेरे लिए तो संभव नहीं था अतः जिनप्रतिमाओं पर नाम लिखवा दिया।

पच्छा भारदिं वयं, रीअ तत्थ गुरु-पुच्छणे कहीअ।
विणयेण गुरुदेवो!, कहं चिय संभवो एरिसो॥845॥
तए हि मे अत्थित्तं, तव णामेण विणा असक्को मम वि।
वच्छल्ल-हसंतेणं, तदा मज्झं दायिदा आसी॥846॥

पश्चात् जब हम कुंदकुंदभारती पहुँचे तब आचार्यश्री ने कुछ गंभीरतापूर्वक पूछा कि– आपने हमारा नाम प्रशस्ति में क्यों लिखवाया? तब गुरु के पूछने पर मैंने विनयपूर्वक कहा–आचार्य श्री! ये कैसे संभव हो सकता है कि मैं आपका नाम ना लिखवाऊँ। आपसे ही मेरा अस्तित्व है। आपके नाम के बिना मेरा नाम आना अशक्य है। तब वे वात्सल्यपूर्वक मुस्कुराये और हमें आशीर्वाद दिया।

तिजारादो अहिंसा-थलं पहुच्चीअ दु गुरु-संदेसो।
तदा मए पाविदो य, सेट्ठि-मुणीसर-पसादेणं॥847॥
फरीदाबादे जिणालय-सिलण्णासं आवेज्ज कराविंत्तु।
तुज्झ पुरक्कारं हं, कंखेमि पदायिदुं सिग्घं॥848॥

जब तिजारा पंचकल्याणक के पश्चात् हम अहिंसास्थल पहुँचे तब श्रेष्ठी श्री मुनीश्वर प्रसाद जी गुरुदेव का संदेश लेकर हमारे पास आए और कहा कि आचार्यश्री ने कहा है ''आप फरीदाबाद में जिनमंदिर का शिलान्यास कराकर कुंदकुंद भारती आयें। मैं शीघ्र आपको एक पुरस्कार देना चाहता हूँ।''

दायिद-मप्पेलेगे, एलाइरियपद-मइवच्छलेणं।
वसुणंदि-णामेण तदा, वच्छल्ल-मासिं अणुभवीअ॥849॥

तब आचार्यश्री ने 1 अप्रैल को (उपाध्याय निर्णयसागर जी को) वात्सल्यपूर्वक एलाचार्य पद प्रदान किया एवं 'वसुनंदी' शुभ नाम दिया। तब इस नाम से मैंने गुरु के असीम वात्सल्य व आशीर्वाद का अनुभव किया।

णव-समहिद-बेसहस्स-वासे दसमईइ सूरिणा तेण।

पारब्भिदो दु सयद्दि-वासो महावीरकित्तिस्स।।850।।

सूरि-विज्जाणंदेण, तदा गाइदा णिय-गुरु-गुण-गाहा।

संखेवेणं कहिदं, णियगुरु-जीवणवत्ततं दु।।851।।

10 मई, 2009 में कुंदकुंद भारती दिल्ली में आचार्यश्री के द्वारा पूज्य आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज का शताब्दी वर्ष का प्रारंभ किया गया। आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने तब अपने गुरु गुण-गाथा का बखान किया। और संक्षेप में अपने गुरु के जीवन वृत्तांत का वर्णन किया।

अट्ठ-णव-दस-वासेसु, पुण उसहविहारे हरिदुववणम्मि।

कुंदकुंदभारदीइ, ढिल्लीए वस्साजोगा य।।852।।

सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज का सन् 2008 का चातुर्मास ऋषभ विहार दिल्ली, सन् 2009 का चातुर्मास ग्रीनपार्क दिल्ली और सन् 2010 का चातुर्मास श्री कुंदकुंदभारती दिल्ली में संपन्न हुआ।

खारवेल-भवणस्स दु, कातंत-कलाव-पोत्थगालयस्स।

उग्घाडणस्स मच्चे, आवीअ दु सोणिया-गंधी।।853।।

7 मार्च 2010 श्री कुंदकुंदभारती दिल्ली में खारवेल भवन और कातंत्र कलाप पुस्तकालय के उद्घाटन के लिए माननीया श्रीमती सोनियागाँधी जी पधारीं।

कातन्त्र-पुस्तकालय में देवी सरस्वती की मूर्ति के आगे दीप प्रज्ज्वलन करती हुई श्रीमती सोनिया गांधी

खारवेल भवन का उद्घाटन करती हुई श्रीमती सोनिया गांधी एवं शीला दीक्षित

तदा गुरुवरो कहीअ, चिट्ठह मम णिअडे सीहासणम्मि।
अइपसण्णभावेणं, संघसंचालणजोग्गो जं॥854॥

उस समय आचार्य गुरुवर ने अति प्रसन्न भाव से मुझसे कहा कि आप मेरे निकट सिंहासन पर ही बैठेंगे क्योंकि आप योग्य संघसंचालक भी हैं।

दायिदो पुरक्कारो, णादालियाइ समयसार-गंथं।
रूसी-भासाए तं, अणुवदेदुं पाढवेदुं च॥855॥
पणलक्खरासी तहा, समयसारचंदिगा-सेट्ठुवाही।
पदायिदा चिय पसत्थि-पत्त-पदगादीहिं सहिदा॥856॥ (जुम्मं)

आचार्यश्री की प्रेरणा से उस समय श्रीमती सोनियागांधी जी ने प्रो. नातालिया झेलेझनोवा को समयसार ग्रंथ को रशियन भाषा में अनुवाद करने व मास्को स्टेट यूनिवर्सिटी में एम.ए. कोर्स में पढ़ाने के लिए 5 लाख रुपये की सम्मानित राशि व प्रशस्ति-पत्र, मेडल आदि के साथ समयसार चंद्रिका की श्रेष्ठ उपाधि भी प्रदान की।

श्रीमती सोनिया गांधी को कमण्डलु भेंट करते हुए

मॉस्को स्टेट युनिवर्सिटी (रूस) की नातालिया झेलेझनोवा प्रशस्ति-पत्र भेंट करती हुई सोनिया गांधी

पुणो ताए रूसीइ, सूरी-कुंदकुंद-सामि-गंथाण।
सेट्ठणुवायो करिदो, विज्जाणंद-मुणि-पेरणाइ॥857॥

पुनः प्रो. नातालिया ने आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज की प्रेरणा से आचार्यश्री कुंदकुंद स्वामी के ग्रंथों का रूसी भाषा में अनुवाद किया।

दस-समहिद-बे-सहस्स-वासम्मि बेमइम्मि सासणेणं।
दियंबर-साहु-चिण्हं, पडिबंधिदो मोरकलावो॥858॥

2 मई, 2010 को एक संकट का सामना संपूर्ण दिगंबर जैन संत व समाज ने किया। सरकार ने दिगंबर साधु के चिह्न (पिच्छिका) मोर पंखों पर प्रतिबंध लगा दिया।

साहूण संगडमिदं, हरिदं आइरिय-विज्जाणंदेण।
बहुपमाणजुदपत्तं, पेसीअ सासणस्स तदा हि।।859।।

तब आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने साधुओं का यह संकट हरा। आचार्यश्री ने सरकार को बहुत प्रमाणों से युक्त पत्र भेजा।

पस्सिय सासणेण तं, कुणिदं पडिबंध-णिरासणं तदा।
विदेसि-जइण-भत्तेहि, संपेसिदा सिदकलावा दु।।860।।

सरकार ने वह पत्र व प्रमाण देखकर उस प्रतिबंध को वापिस ले लिया। क्योंकि किसी भी धार्मिक चिह्न पर प्रतिबंध लगाना असंवैधानिक है। जब मयूर पंख पर प्रतिबंध की यह जानकारी विदेश में रहने वाले जैन भक्तों को मिली तो उन्होंने श्वेत मयूरपंख भारत भिजवाये।

तेहिं विणिम्मिदं सिद-पिच्छं दायिदं विज्जाणंदस्स।
विस्सम्मि पसिद्धो सिदपिच्छाइरिय-णामेण तदा।।861।।

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज को उनसे बनी श्वेतपिच्छी प्रदान की गई और वे श्वेतपिच्छाचार्य के नाम से विश्व में प्रसिद्ध हुए।

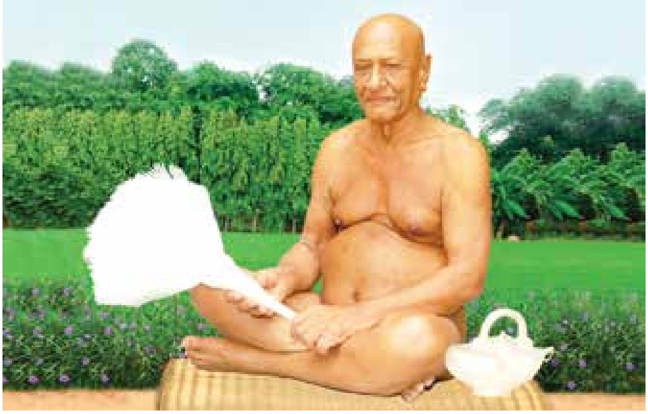

दुमुणिदिक्खं दायिदुं, एयारसुत्तर-दुसहस्स-वासे।
णिवेदीअ गुरुदेवं, तदा तेणं अइवच्छलेणं।।862।।
कहिदं भो वसुणंदी!, तुमं दाएज्ज मुणिदिक्खं मज्झं।
सण्णिहीए सुहासिं, सुहकामणं देमि दिक्खाइ।।863।।

सन् 2011 में हमने आचार्यश्री से दो मुनिदीक्षा देने के लिए निवेदन किया। तब उन्होंने अतिवात्सल्यपूर्वक कहा वसुनंदी महाराज! ये मुनिदीक्षाएँ मेरे सान्निध्य में आप प्रदान करेंगे। दीक्षा के लिए मैं शुभाशीष व शुभकामना देता हूँ।

बारसुत्तर-दुसहस्स-वासे संकरणयरे ढिल्लीए।
समाहियालोव्व णिअर-सत्थ-पडिऊलो गुरुवरेण।।864।।
णिद्देसिदो समायो, तदा समुइदाहारोसहीणं च।
बोहीअ गुरुवरो पुण, वच्छल-संजुद-ताडणेणं।।865।।

सन् 2012 शंकरनगर दिल्ली में हमारा स्वास्थ्य इतना अधिक प्रतिकूल हुआ ऐसा लगा जैसे समाधिकाल ही निकट आ गया हो। तब गुरुवर ने समाज को समुचित आहार व औषधि के लिए निर्देश दिया। (आ. श्री ने

तब आदेशित भी किया कि तीन दिन न तो किसी से चरण स्पर्श कराने हैं, न किसी श्रावक के संपर्क में आना है) पुनः कुछ स्वास्थ्य लाभ होने पर आचार्यश्री ने वात्सल्य युक्त डाँट से समझाया।

अह एयारस-बारस-वासेसु हरिदुववणे ढिल्लीए।
सव्वा वस्साजोगा, पुण कुंदकुंदभारदीए॥866॥

अनंतर सन् 2011 व 2012 में आचार्यश्री का चातुर्मास ग्रीनपार्क दिल्ली में हुआ। उसके पश्चात् आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के सभी चातुर्मास श्री कुंदकुंदभारती दिल्ली में ही संपन्न हुए।

हत्थिणायपुरे तदा, तित्थखेत्ते चउमासो अम्हाण।
संदेसो लहिदो मइ, गुरुदेवस्स दु लिहिदं तम्मि॥867॥
रत्त-जिणालय-कलसारोहणवसरे आगच्छेसु तुज्झ।
कंखेमि देदुं सूरि-पदं णिराउल-साहणाए॥868॥ (जुम्मं)

सन् 2011 में उस समय हमारा चातुर्मास तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुर में हुआ। वहाँ मैंने गुरु का संदेश प्राप्त किया। उसमें लिखा था—महाराजजी! लालमंदिर के कलशारोहण के अवसर पर आपको हमारे पास आना है। मैं अपनी निराकुल साधना के लिए आपको आचार्य पद देना चाहता हूँ।

गुरु-अण्णाइ मग्गसिर-सुदि-दसमीइ पहुच्चीअ हं किण्णु।
सिस्साण पडिऊल-ववहारादो अग्गे गदो सो॥869॥

गुरु की आज्ञा से मंगसिर सुदी दशमी के दिन हम वहाँ पहुँचे किन्तु शिष्यों का प्रतिकूल व्यवहार होने से कार्यक्रम को आगे स्थगित कर दिया गया।

बेसहस्स-पणरस-वासे सव्वाणुऊलदाणुसारेण।
पदायिदं सूरि-पदं, तए मज्झं तिजणवरीए।।870।।

पुन: आचार्यश्री ने सभी अनुकूलता के अनुसार कुंदकुंदभारती में 3 जनवरी 2015 में मुझे (आचार्य वसुनंदी जी को) आचार्य पद प्रदान किया।

परिसद-भवण-दियंबर-जिण-मंदिरस्स कालगा-ढिल्लीइ।
तेण संघेण सह पण-कल्लाणुच्छवो संपण्णो।।871।।
मईम्मि चिय एगारस-वासम्मि अच्चंत-उच्छाहेणं।
मूलणायगो वीरो, पसिद्ध-जइण-रत्त-मंदिरे।।872।।

आचार्यश्री विद्यानंदजी के द्वारा संघ के साथ 9 मई से 15 मई 2011 में परिषद भवन दिगंबर जैन मंदिर कालकाजी दिल्ली का पंचकल्याणक महोत्सव अति उत्साह के साथ संपन्न हुआ। वहाँ प्रसिद्ध जैन लाल मंदिर में मूलनायक भगवान् श्री महावीर स्वामी हैं।

सुहजम्मजयंदीए, दाणवीर-सेट्ठि-माणिग-चंदस्स।
सट्ठि-समहिद-सदइमे, विसाल-सहा हु भारदीए।।873।।
कत्तिगम्मि एयारस-वासे दायिदा सूरि-सण्णिहीइ।
तित्थमंदिरणेगाण, पेरणा विगासुद्धाराण।।874।। (जुम्मं)

आचार्यश्री के पावन सान्निध्य में दानवीर सेठ माणिकचंद जी की 160वीं शुभ जन्म जयंती के अवसर पर श्री कुंदकुंद भारती में 23 अक्टूबर, 2011 को महासभा आयोजित की गई। तब आचार्यश्री ने अनेक तीर्थों, मंदिरों के विकास और जीर्णोद्धार के लिए प्रेरणा प्रदान की।

बेसहस्सबारसवासे मुणिदिक्खा-सुवण्ण-जयंदी दु।
आयोइदा सूरिस्स, चागराय-सहागारम्मि य।।875।।

सन् 2012 में आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज का दीक्षा स्वर्ण जयंती समारोह त्यागराज स्टेडियम, दिल्ली में आयोजित किया गया।

णाणवड्ढण-उच्छवे, आदिणाह-वंसजा वयं कहिदं।
तेण धम्म-सक्किदीहि, गिह-समाय-रट्ठाण णाणं।।876।।

उस ज्ञानवर्धन महोत्सव पर आचार्यश्री ने कहा हम तीर्थंकर श्री आदिनाथ के वंशज हैं। किसी भी घर, समाज और राष्ट्र की पहचान धर्म व संस्कृति से ही है।

मुक्ख-आदिहीइ तस्सिं, वीरेंदहेगडेण कहिदं तत्थ।

संजम-सज्झाय-चाग-तव-णाण-मुत्ती आइरियो।।877।।

उस महोत्सव में मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे–धर्मस्थली धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र जी हेगड़े। उन्होंने वहाँ कहा कि आचार्यश्री संयम, स्वाध्याय, त्याग, तप व ज्ञान की प्रतिमूर्ति हैं।

भारदीए ठाएज्ज, सल्लेहणा-साहणा-विड्ढीए।

तेरसहिय-बेसहस्स-वासादो ऊणवीसंतं।।878।।

वर्ष 2013 से 2014 तक आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज सल्लेखना की साधना की वृद्धि के लिए श्री कुंदकुंदभारती दिल्ली में रहे।

झाण-णाण-तव-संजम-विड्ढीए सह तच्चचिंतणेणं।

मोण-साहणाइ सगप्पे थिरिमाइ ण विहरीअ पुण।।879।।

तत्वचिंतन सहित ध्यान, ज्ञान, तप व संयम की वृद्धि के लिए मौन साधना की वृद्धि व स्वात्मा में स्थिरता के लिए आचार्यश्री ने पुनः विहार नहीं किया।

आयोजिदा उससहा, पण्णासम-मुणिदिक्खा-वासम्मि य।

कुंदकुंदभारदीइ, जुग-जेट्ठ-सेट्ठ-आइरियस्स।।880।।

युगज्येष्ठ व युगश्रेष्ठ आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के 50वें मुनि दीक्षा दिवस पर कुंदकुंदभारती में एक धर्मसभा सन् 2013 में आयोजित की गई।

सहसा आवित्तु गुरू, एयदा मम कक्खे भारदीए।

कहीअ देज्जा वयणं, कराविस्सेसि मम समाहिं।।881।।

सन् 2015 में एक बार जब मैं कुंदकुंदभारती में ही था तब आचार्यश्री अचानक मेरे (आ. वसुनंदी जी के) कक्ष में आए और कहने लगे कि वसुनंदी महाराज! आप मुझे वचन दो कि आप मेरी समाधि कराओगे।

अइविणयेण गुरुपदं, फासंतेण-मवरुद्धकंठेणं।
कहिदं मइ सोहग्गो, णो चिंतह तुमं गुरुदेवो॥882॥

तब गुरु की बात सुनकर मेरा कंठ अवरुद्ध हो गया। मैंने अति विनम्रतापूर्वक गुरु के चरण स्पर्श करते हुए कहा कि हे गुरुदेव! आप चिंता न करें, यह मेरा सौभाग्य होगा।

चेयणाचेयण-किदी

(चेतन व अचेतन कृतियाँ)

चेयण-अचेयणकिदी, कालजयी अवि कालजइपुरिसस्स।
जुगदंसग-सजगस्स य, सुधम्ममुत्ति-पहावगस्स दु॥883॥

उन युगदर्शक, सजग, सद्धर्ममूर्ति, धर्मप्रभावक कालजयी पुरुष की चेतन व अचेतन कृति भी कालजयी है।

मुणि-गुत्तिसायरस्स दु, कणगोज्जलणंदिस्स मुणिस्स तहा।
मुणि-णिण्णय-सायरस्स, मुणिवर-विकस्स-सायरस्स य॥884॥
सेट्ठ-उवज्झाय-पदं, दायिदं कमसो जिणमदसत्थाणि।
सयं च भव्वुल्लाणं, अज्झयिदुं अज्झयावेदुं॥885॥

आचार्यश्री ने मुनि गुप्तिसागर, मुनि कनकोज्ज्वलनंदी, मुनि निर्णयसागर व मुनि विकर्षसागर के लिए भव्यों को जिनमत के शास्त्रों का अध्ययन करने व कराने के लिए क्रमशः श्रेष्ठ उपाध्याय का पद प्रदान किया।

कणगोजलस्स दत्तं, सुदसायरो य णिण्णयसायरस्स।
वसुणंदि-णामो विकस्स-सिंधुस्स पण्णासायरो॥886॥

उन्होंने मुनि कनकोज्ज्वलनंदि जी को श्रुतसागर, श्री निर्णयसागर जी को वसुनंदी एवं श्री विकर्षसागर जी को प्रज्ञसागर नाम दिया।

पुण तिण्णि-पाढगाणं, एलाइरिय-पद-माइरियपदं पि।
पस्सिय ताण जोग्गत्त-मकारणं किवं करीअ॥887॥

उनकी योग्यता देखकर उन पर अकारण कृपादृष्टि की। पुनः इन तीनों उपाध्यायों को एलाचार्य पद व पुनः आचार्य पद प्रदान किया।

अज्जा-बाहुबलीए, विज्जासिरीए गणिपदं देज्जा।
विसेस-धम्मसहाए, जिणसासणपहावणाए दु॥888॥

आचार्यश्री ने जिनशासन की प्रभावना पूर्वक विशेष धर्म सभा में आर्यिका बाहुबली माताजी व आर्यिका विद्याश्री माताजी को गणिनी पद दिया।

अज्जिगा-बाहुबलीइ, देज्ज गणी पण्णमदी सुह-णामो।
बे-खुल्लय-दिक्खा वि, णाणाणंद-धम्माणंदा॥889॥

उन्होंने आर्यिका बाहुबली माताजी को गणिनी प्रज्ञमती नाम दिया। आचार्यश्री ने दो क्षुल्लक दीक्षा भी प्रदान की थीं और नाम रखा था क्षुल्लक ज्ञानानंद व क्षुल्लक धर्मानंद।

दायिय वदं तेहि सह, ठविदा अणेगसावय-सावियाण।
सुधम्मे आइरियेण सव्व-कल्लाण-भावणाए।।890।।

उनके साथ सर्वकल्याण की भावना से आचार्यश्री ने अनेक श्राविकाओं को व्रत देकर उन्हें सद्धर्म में स्थिर किया।

कराविदा बहुपणकल्लाण-पदिट्ठा तेण आइरियेण।
अणेग-जिणालयाइं, णिम्माणेदुं पेरिदं खलु।।891।।

उन आचार्यश्री ने बहुत सी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करायीं। अनेक जिनालयों के निर्माण के लिए प्रेरणा दी।

सिद्धचक्किंदधया य, कप्पद्दुम-सव्वदोभद्द-पहुदी।
अणेग-महाविहाणं, हवेज्ज रिसिवर-सण्णिहीए।।892।।

ऋषिवर के सान्निध्य में श्री सिद्धचक्र विधान, इंद्रध्वज विधान, कल्पद्रुम विधान, सर्वतोभद्र विधान आदि अनेक महाविधान हुए।

सूरि-पेरणाइ तदा, पदायिदा णाणा-पुरक्कारा य।
भिण्ण-भिण्ण-खेत्तेसुं, विहिण्ण-कज्जाण पडिहाणं।।893।।

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज की प्रेरणा से पृथक्-पृथक् क्षेत्रों में विभि ान्न कार्यों के लिए प्रतिभाशालियों को नाना पुरस्कार दिये गए।

जिणसासण-सेवाए, धम्म-समप्पिदाण पोच्छाहणस्स।
दायिदा पुरक्कारा, वच्छलेणं गुरु-आसीए।।894।।

जिनशासन की सेवा और धर्म के प्रति समर्पित लोगों के लिए आचार्यश्री विद्यानंदजी गुरुदेव के आशीर्वाद से उन्हें प्रोत्साहन देने के लिए वात्सल्यपूर्वक पुरस्कार प्रदान किए गए।

आइरिय-उमासामी-कुंदकुंदमियचंद-चरियचक्की।
सिद्धंत-चक्कवट्टी, णेमिचंद-पुरक्कारो तह।।895।।

बंभी-संगीद-समयसारो उसहदेवसंगीदादी।

पेरणाए दायिदा, तस्स अहिंसा-पुरक्कारा॥896॥ (जुम्मं)

आचार्यश्री की प्रेरणा से आचार्य उमास्वामी पुरस्कार, आचार्य कुंदकुंद पुरस्कार, आचार्य अमृतचंद्र पुरस्कार, चारित्र चक्रवर्ती पुरस्कार, सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य नेमिचंद्र पुरस्कार, ब्राह्मी पुरस्कार, संगीत समयसार पुरस्कार, वृषभदेव संगीत पुरस्कार, अहिंसा आदि पुरस्कार प्रदान किए गए।

भमं णिवारिदु-मणेग-विसयेसु जिणसुदपमाणेहि सह।

लिहिदाणि बहु-पुत्थाणि, संपइ पण्ह-समाहाणस्स॥897॥

वर्तमानकाल में लोगों के मन में उठ रहे प्रश्नों के समाधान के लिए और अनेक विषयों में भ्रमित जनों के भ्रम के निवारण के लिए आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने जिनागम के प्रमाणों से सहित अनेक पुस्तकें लिखीं।

पिच्छिकमंडलु-णामय-पोत्थे अच्चंत-सेट्ठ-उवएसो।

भिण्ण-भिण्ण-विसयेसुं, जणकल्लाणोवजोगीसुं॥898॥

आचार्यश्री ने अपनी सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्य के सौंदर्य को प्रकट करने वाली **पिच्छी-कमंडलु** नामक पुस्तक में जन कल्याण के लिए उपयोगी भिन्न-भिन्न विषयों पर अत्यंत श्रेष्ठ उपदेश दिया।

अणेग-णिबंधा तम्मि, साहित्तिय-भासाइ माणणीया।

विदूहि णाणवड्ढगा, जम-णियम-कत्तव्व-पेरगा॥899॥

उस पुस्तक में साहित्यिक भाषा में शब्द माधुर्य से युक्त अनेक निबंध हैं। वे सभी निबंध ज्ञानवर्द्धक, विद्वानों के द्वारा माननीय एवं यम, नियम व निज कर्त्तव्य के प्रेरक हैं।

जिणसासणे णिमित्तं, जे ते पहाणा कज्जसिद्धीए।
भग्गं पुरिसत्थो सय, तेहि विणा कज्जसिद्धी णो॥900॥

जिनशासन में जो कार्यसिद्धि के निमित्त हैं वे भाग्य और पुरुषार्थ सर्वदा प्रधान हैं। उनके बिना कार्य की सिद्धि संभव नहीं है।

दइव-पुरिसत्थ-णामय-पोत्थे अइ-बोहप्पद-वक्खाणं।
अणेगंत-भाव-जुदं, संकाण णिराकरणेण सह॥901॥

आचार्यश्री की **''दैव और पुरुषार्थ''** नामक पुस्तक में शंकाओं के निराकरण के साथ अनेकांतभाव से युक्त अति बोधप्रद व्याख्यान है।

णियोजिदं दइव-भग्ग-सद्देहि वा पुव्वकिदकम्मफलं।
संपइयाले किद-उज्जमो पुरिसत्थो तिजोगेहि॥902॥

पूर्वकृत् कर्म के फल को दैव या भाग्य कहा गया है। वर्तमान काल में योगत्रय से किया जा रहा उद्यम पुरुषार्थ है।

सिव-हेदू जिणसमये, सुधम्मस्स अयल-सद्धाए जुदा।
जिणवर-सुदणिग्गंथाणं भत्ती चउविह-संघस्स॥903॥

चतुर्विध संघ, जिनेन्द्रदेव, जिनश्रुत, निर्ग्रन्थगुरु और सद्धर्म की अचल श्रद्धा से युक्त भक्ति जिनशासन में मोक्ष का हेतु कही जाती है।

भत्तिरस-अंगूरो दु, मुणिंदस्स अणुवम-सुकिदी जस्सिं।
चित्तविसुद्धीए अघ-खालगा बहु-थुदि-पूयादी॥904॥

भक्तिरस से परिपूरित **'भक्ति रस के अंगूर'** नामक पुस्तक मुनिश्री की अनुपम कृति है। जिसमें चित्त की विशुद्धि हेतु पापों का नाश करने वाली बहुत सी स्तुतियाँ और पूजा आदि हैं।

काल-सत्थ-मदप्पा य, जीवणिच्चादी समयसद्दत्था।
भारदीय-सक्किदीइ, पसंगाणुसारेण गहेज्ज॥905॥

भारतीय संस्कृति में 'समय' शब्द के कई अर्थ हैं जैसे-काल, समय, शास्त्र, मत, आत्मा, जीवन आदि। जहाँ जैसा प्रसंग हो वहाँ उसी प्रकार का अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

समय-मुल्लो लहुकाय-किदी णवरि विसिट्ठत्थ-संजुत्ता।
समत्था सम्म-दिसाइ, णर-चिंतणं परिवट्टेदुं॥906॥

आचार्यश्री की **'समय का मूल्य'** नामक लघुकाय कृति विशिष्ट अर्थ से संयुक्त है। यह कृति मनुष्य का चिंतन समीचीन दिशा में परिवर्तित करने में समर्थ है।

जेहि वसणेहि जीवा, दुग्गइ-दुह-अणिट्ठाणि पावंते।
ताण सरूव-फलाणं भासग-सत्तवसण-सुकिदी य॥907॥

जिन व्यसनों से जीव दुर्गति, दुःख व अनिष्ट प्राप्त करते हैं उनके स्वरूप और उनके फलों को कहने वाली आचार्यश्री की **'सप्तव्यसन'** नामक कृति है।

मंस-मज्ज-सेवणं च, जूअकेली चोरिअं आहेडं।
पर-थी-वेस्सागमणं, सत्तवसणाणि सय हेयाणि॥908॥

माँस सेवन, मदिरा सेवन, द्यूतक्रीड़ा (जूआ खेलना), शिकार करना, चोरी करना, परस्त्री गमन व वेश्यागमन ये सात व्यसन सदैव हेय हैं।

अभिक्खण-णाणुवजोग-भावणा वरा सोलस-कारणेसु।
चित्तविसोहगा सया, तित्थप्पइडि-बंध-कारगा॥909॥

सोलहकारण भावनाओं में अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग नामक श्रेष्ठ भावना है जो सदैव चित का शोधन करने वाली और तीर्थंकर प्रकृति का बंध कराने वाली है।

णाण-महत्तं कहिदं, सरलसद्देहि लहुकायकिदीए॥
अच्चंतुवजोगी सा, पढेज्जा अप्पहिदाकंखी॥910॥

इस लघुकाय कृति में आचार्यश्री ने ज्ञान की महत्ता का वर्णन दिया है। वह **'अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग'** नामक कृति अत्यंत उपयोगी है। प्रत्येक आत्म-हित के आकांक्षी को यह पढ़नी चाहिए।

णिरंतरं सण्णाणे, वट्टेदि अभिक्खण-णाणुवजोगी।
णाणभावणाए णिय-चित्तं सोहेदि सण्णाणी।।911।।

जो निरंतर सम्यग्ज्ञान में वर्तन करता है वह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी जानना चाहिए। वह सम्यग्ज्ञानी ज्ञान-भावना से निज चित्त का शोधन करता है।

गुरु-संथा-महत्तं दु, किदी उवजोगी सगप्पहिदत्थं।
जं विणा गुरु-मसक्को, उसपहावणा परप्पहिदं।।912।।

आचार्यश्री की **'गुरु संस्था का महत्व'** नामक कृति भी स्वात्महित के लिए बहुत उपयोगी है क्योंकि गुरु के बिना आत्महित, परहित और धर्म की प्रभावना अशक्य है।

विस्से विज्जंतणेग-विहा मद-संपदाय-धारणा वा।
किण्णु दयाधम्मजुदो, सव्वदा चिय माणवधम्मो।।913।।

विश्व में अनेक प्रकार के मत, संप्रदाय अथवा धारणा हैं। किन्तु मानव धर्म सर्वदा ही दयाधर्म से युक्त है।

सव्वजणाण-मुवओगि-माणवधम्मणामय-पोत्थे।
आगम-सारो पहावि-दिट्ठंत-सहिद-वक्खाणं दु।।914।।

'मानवधर्म' नामक यह पुस्तक सभी लोगों के लिए उपयोगी है। इसमें आगम का सार समाहित है। प्रभावी दृष्टांतों से सहित अनुपम व्याख्यान है।

तित्थयर-वड्ढमाणे, पुण्णवड्ढग-वीरजीवण-चरियं।
तस्स सव्वोदयी सुह-देसणा दु सव्वहिदयरा य।।915।।

'तीर्थंकर वर्द्धमान' नामक पुस्तक में संक्षेप में महावीरस्वामी का पुण्यवर्द्धक जीवन चरित्र और उनकी सर्वोदयी, सर्वहितंकर शुभदेशना वर्णित है।

अहिंसा विस्सजणणी, अहिंसा-विस्सधम्म-किदीइ तस्स।
अहिंसाइ पदंसगं, सव्वुवजोगी वक्खाणं दु।।916।।

अहिंसा विश्व की जननी है। आचार्यश्री की **'अहिंसा-विश्वधर्म'** नामक कृति में अहिंसा को प्रदर्शित करने वाला सर्वोपयोगी व्याख्यान है।

परिग्गहो दु बीअं व, सव्व-अघाण णवरि अपरिग्गहेण।
खयंति सव्वपावाणि, पयासेणं अंधयारं व।।917।।

परिग्रह सर्व पापों के बीज के समान है। विशेषता यह है कि अपरिग्रह से सर्व पाप इस प्रकार क्षय को प्राप्त हो जाते हैं जैसे प्रकाश से अंधकार नष्ट हो जाता है।

परिग्गहो अहमूलं, परिग्गहस्स कुणदि बहु-पावं जं।
भट्टायारुम्मूलण-मपरिग्गहादो संभवो हि।।918।।

परिग्रह पाप का मूल है। क्योंकि जीव परिग्रह के लिए बहुत से पाप करता है। देश में बढ़ रहे भ्रष्टाचार का उन्मूलन अपरिग्रह से ही संभव है।

किदीइ अपरिग्गहादु, भट्टायारुम्मूलणे जदिणा दु।
अपरिग्गह-माहच्चं, वण्णिदं णर-जीवणम्मि सय।।919।।

'अपरिग्रह से भ्रष्टाचार उन्मूलन' नामक कृति में यतिवर ने मनुष्य के जीवन में अपरिग्रह के माहात्म्य का वर्णन किया है।

रायदोसमलिणप्पा, विक्किदो णिम्मलप्पा समयसारो।
तं करेज्ज पुरिसत्थं, सगभावं णिम्मलं करिदुं।।920।।

राग व द्वेष से मलिन आत्मा विकृत है और निर्मल आत्मा समयसार है। अतः अपने भावों को निर्मल करने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए।

रयणत्तय-फलरूवं, बारसंगसारं णिम्मलप्पं दु।।
लहिदुं समेज्ज मोहं, णिम्मलवदं सया पालेज्ज।।921।।

द्वादशांग का सार व रत्नत्रय के फल रूप निर्मलात्मा को प्राप्त करने के लिए मोह का शमन करना चाहिए एवं सदैव निर्मलव्रत का पालन करना चाहिए।

णारि-ठाण-कत्तव्वे, किदीइ वण्णिदं णामणुसारेण।
जं भारद-सक्किदीइ, मेरुदंडोव्व सुणारी सय।।922।।

'नारी का स्थान और कर्त्तव्य' नामक कृति में नाम के अनुसार ही विषय का वर्णन किया गया है क्योंकि भारतीय-संस्कृति में नारी सदैव मेरुदंड के समान है।

जा सुसक्कार-जुत्ता, कत्तव्वसीला वच्छला णारी।
सुधम्मपणोल्लया सा, धम्मभज्जा कहिज्जेदि सय।।923।।

जो नारी सुसंस्कार से युक्त, कर्त्तव्यशील, वात्सल्य से परिपूरित और सदा सद्धर्म की प्रेरणा देने वाली है वह धर्मपत्नी कही जाती है।

णारीइ धवलपक्खो, परूविदो दूरदिट्ठीइ मुणिणा।
कलह-पदण-दुहाणि तत्थ जत्थ उवेक्खा णारीणं।।924।।

आचार्यश्री ने दूरदृष्टि से नारी का धवल पक्ष निरूपित किया, जहाँ नारियों की उपेक्षा होती है वहाँ कलह, पतन व दुःख होता है।

विस्सधम्म-दसलक्खण-किदीइ णिद्दिट्ठा सरलसद्देसु।
उत्तमखमाइ-धम्मा, णिव्वाणदुग्ग-सोवाणं व।।925।।

''**विश्वधर्म-दसलक्षण**'' नामक कृति में सरल शब्दों में उत्तम क्षमादि धर्मों को कहा गया है। वे धर्म मोक्षमहल के सोपान के समान हैं।

धम्मदसलक्खणा सय, पसत्था सुहदा संतिदायगा य।

विदूहि आयरणीया, पमाणिग-जीवण-पद्धती हु।।926।।

धर्म के ये दस लक्षण प्रशस्त, सुखद और शांतिदायक हैं। उत्तमक्षमादि धर्म विद्वानों के द्वारा आदरणीय हैं। धर्म के दस लक्षण प्रमाणिक जीवन पद्धति है।

विस्सधम्मस्स मंगल-पाढ-किदी मंगल्ला तिलोएसु।

पढंति सुणंति जे तं, चिंतंते लहंते संतिं।।927।।

'**विश्वधर्म के मंगल पाठ**' नामक कृति तीनों लोकों में मंगल करने वाली है। जो कोई भी उसे पढ़ते हैं, सुनते हैं व चिंतन करते हैं वे शांति प्राप्त करते हैं।

अणेगंत-सत्तभंगि-सिआवाय-णामय-लहु-किदी तस्स।

णादुं जिणसिद्धंतं, णिमित्तं हु जिणमद-पाणोव्व।।928।।

''**अनेकांत-सप्तभंगी-स्याद्वाद**'' आचार्यश्री की लघुकृति है। यह जिनसिद्धांत को जानने में निमित्त है। यह पुस्तक जिनमत के प्राण के समान है।

सिद्धंतचक्की सिआवायकेसरी विज्जाणंद-जदी।

धम्मणेगंत-णिउणो, खमो खयिदुं सव्वविवायं।।929।।

सिद्धांतचक्रवर्ती, स्याद्वादकेसरी, अनेकांत धर्म में निपुण आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज सर्वविवादों को क्षय करने में समर्थ थे।

पजलेदु णाणदीवो, किदीए पेरिदं हु सण्णाणस्स।

जं अण्णाणं जणाण, लोए गहण-अंधयारं व।।930।।

‘‘ज्ञानदीप जले’ इस कृति में आचार्यश्री ने लोगों को सम्यग्ज्ञान के लिए प्रेरित किया। क्योंकि अज्ञान लोक में लोगों के लिए घोर अंधकार के समान है।

कत्थ ईसरो किदी हु, इमा अवि समत्था णत्थिगेसुं दु।

रहस्स-मुग्घाडंतो, जणिदुं ईसरं पडि सद्धं॥931॥

‘‘ईश्वर कहाँ है’’ यह कृति रहस्यों को उद्‌घाटित करते हुए नास्तिक लोगों में ईश्वर के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने में समर्थ है।

वण्णिदं लहुकिदीए, पावणपव्व-रक्खा-बंधणम्मि य।

रक्खाबंधणविसये, कहं पव्वायरणं करेज्ज॥932॥

‘पावन पर्व रक्षाबंधन’ नामक लघुकृति में रक्षाबंधन के विषय में वर्णन किया है कि रक्षाबंधन पर्व क्यों और कैसे मनाना चाहिए।

वच्छलपव्वो वि विण्हुकुमार-मुणि-वच्छल-दंसगत्तादु।

वच्छलंगो भावणा, हेदू तित्थयर-पइडीए॥933॥

मुनिश्री विष्णुकुमार के वात्सल्य का प्रदर्शक होने से यह पर्व वात्सल्यपर्व भी कहलाता है। यह वात्सल्य सम्यग्दृष्टि का एक अंग है। यह वात्सल्य भावना तीर्थंकर प्रकृति का हेतु है।

रयणत्तय-णिमित्तं दु, मंतो मुत्ती सज्झाओ णिच्चं।

रयणत्तयं मोक्खस्स-मग्गो णिय-अप्पसरूवो य॥934॥

‘मंत्र, मूर्ति और स्वाध्याय’ ये तीनों नित्य ही रत्नत्रय के निमित्त हैं। रत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है और निज आत्मा का स्वरूप है। (इस कृति में आचार्यश्री ने इनकी महत्ता को दर्शाया है।)

वयणसुद्धीइ हेदू, मंतो तहा चित्तसुइस्स मुत्ती।

चरिय-सुद्धीइ सज्झाओ तिण्णि य अप्पसुद्धीए॥935॥

मंत्र वचनशुद्धि का हेतु है, मूर्ति चित्तशुद्धि का हेतु है और स्वाध्याय चारित्र की शुद्धि का हेतु है और ये तीनों ही आत्म-शुद्धि का हेतु हैं।

दिणे अक्कोव्व महीइ, रयणीए चंदोव्व उहय-कुलाण।
कुलवंता णारीव दु, सक्कारि-पुत्तो कुलदीवो॥936॥

पृथ्वी पर दिन में सूर्य के समान, रात्रि में चंद्रमा के समान और दोनों कुलों की कुलवंता नारी के समान ही संस्कारी सुपुत्र कुल का दीपक कहा जाता है।

धम्मं रक्खेदुं लहु-कायकिदी सुसक्कार-पेरणं च।
दायिदुं लिहिदा वट्टमाणे सूरिणा बालाणं॥937॥

वर्तमान में धर्म की रक्षा के लिए और बालकों को सुसंस्कारों की प्रेरणा देने के लिए आचार्यश्री के द्वारा **'सुपुत्र कुलदीपक'** नामक लघु कृति का लेखन किया गया।

सव्वुदय-तित्थभूदो, जिणधम्मो सय मण्णदे तिलोए।
णेव एगंतवादी, समत्था चिय खंडेदुं तं॥938॥

तीनों लोकों में सदैव यह जिनधर्म सर्वोदय-तीर्थभूत माना जाता है। उस जिनधर्म का खंडन करने में कोई एकांतवादी समर्थ नहीं है।

तित्थ-मिद-महदुल्लहं, एगंतवादि-मिच्छादिट्ठीणं।
सव्वोदयी हिदयरो, धम्मो अणेगंतजुत्तो य॥939॥

यह सर्वोदय तीर्थ एकांतवादी और मिथ्यादृष्टियों के लिए अति दुर्लभ है। यह जिनधर्म सर्वोदयी, हितकारी और अनेकांत से युक्त है।

विसालदिट्ठीइ सम्म-चिंतणेण लिहिदं आइरियेणं।
किदी सव्व-मण्णा खलु, विस्सधम्मस्स रूवरेहा॥940॥

'विश्वधर्म की रूपरेखा' नामक यह कृति सर्वमान्य है। आचार्यश्री ने विशालदृष्टि व समीचीन चिंतन से इस लघु कृति का लेखन किया।

भारत के मुख्य न्यायाधीश श्री पी.एन. भगवती जी को
श्रीफल समर्पित करते हुए

मिलाविदो मिच्छासिद्धंतो सम्म-पहपोसगगंथेसु।
कहाण-पहुदि-एगंतवादीहि सव्व-अहिदयरो हु।।941।।

कहान-एकांतवादियों आदि ने सम्यक्पथ के पोषक ग्रंथों में मिथ्यासिद्धांतों की मिलावट की। जो सबके लिए सर्व प्रकार अहितकर है।

दियंबरजइणसाहित्ते वियारो णामय-किदी तेणं।
लिहिदा संरक्खेदुं, एगंतमदादु भव्वुल्ला।।942।।

''**दिगंबर जैन साहित्य में विकार**'' नामक उनकी यह श्रेष्ठ कृति है। आचार्यश्री द्वारा यह कृति लिखी गई जिससे भव्यजनों की एकांतमत से रक्षा की जा सके।

सेट्ठ-भवतरणी-कला, चेयणा-विज्जा अज्झप्पणाणं।
मोक्ख-सिद्धी असक्का, तेणं विणा कत्थ वि कया वि।।943।।

अध्यात्म-ज्ञान श्रेष्ठ भवतरणी कला और चेतना की विद्या है। उसके बिना कहीं भी और कभी भी मोक्ष की सिद्धि अशक्य है।

अज्झप्पिय-सुत्तीओ, चित्तविसुद्धीइ कसायसमणस्स।
कारणं तं विरइदं, अयारण-बंधुणा धम्मीण।।944।।

आध्यात्मिक सूक्तियाँ चित्तविशुद्धि और कषाय-शमन का कारण हैं। अकारण-बंधु आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने धार्मिक जनों के लिए **'आध्यात्मिक सूक्तियाँ'** नामक पुस्तक की रचना की।

पवयणकिदी अग्गी य, जीवत्त-सत्ती सुपसिद्धा तस्स।
अग्गिम्मि वि पाणो खलु, सिद्ध-मागमाइ-पमाणेण॥945॥

''अग्नि और जीवत्व शक्ति'' नामक आचार्यश्री की प्रसिद्ध प्रवचन कृति में आगमादि के प्रमाण से आचार्यश्री के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि अग्नि में भी प्राण हैं।

जे णो मणंति थावर-कायेसु जीवत्त-सत्ती खादा।
ते जणाविदुं सिद्धंत-समण्णिद-किदि-सारभूदा॥946॥

जो स्थावरकाय जीवों में जीवत्व शक्ति नहीं मानते उन्हें यह ज्ञान कराने के लिए सिद्धान्त से समन्वित यह कृति विख्यात और सारभूत है।

महप्पीसा-खादस्स, ईसावच्छरो जस्स णामेणं।
तस्स णामेण लिहिदं, खमाइ-गुणाण पगासणाइ॥947॥

जिनके नाम से ईसा वर्ष प्रारंभ हुआ उन विख्यात महात्मा ईसा के नाम से उनके क्षमादि गुणों के प्रकटीकरण के लिए **'महात्मा ईसा'** नामक पुस्तक आचार्यश्री के द्वारा लिखी गई।

सम्मत्त-सहिदा परम-जिणभत्ता जिणसासण-रक्खगा य।
देवी पउमावदी य तित्थयर-भत्त-सहायी सय॥948॥

देवी पद्मावती सम्यक्त्व से युक्त,परम जिनभक्ता, जिनशासन की रक्षिका एवं सदैव तीर्थंकर के भक्तों की सहायिका है।

ताए विसये लिहिदा, सुकिदी महादेवी पउमावदी।
भमाइं णिवारेदुं, जणाण भमिदाण संसारे॥949॥

उन देवी के विषय में आचार्यश्री के द्वारा संसार में भ्रमित लोगों के भ्रम के निवारण के लिए **'महादेवी पद्मावती'** नामक श्रेष्ठ लघुकाय कृति लिखी गई।

बे-इंदिय-जीवादो, सण्णि-पणिंदिय-पज्जंतं सव्वा।
वदिदुं समत्था वरं, कहं किं वदेज्ज ण जाणंति।।950।।

दो इंद्रिय जीव से संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यंत सभी जीव बोलने में समर्थ हैं किन्तु कब और क्या बोलना चाहिए, ये नहीं जानते।

तं जणाविदुं लिहिदा, सद्दसाहणा अइपहावगकिदी।
भावसुदस्स कारणं, सद्देहि विणा ण सम्मत्तं।।951।।

उसी का ज्ञान कराने के लिए आचार्यश्री ने **'शब्द साधना'** नामक अति प्रभावक कृति का लेखन किया। शब्द भावश्रुत का भी कारण हैं। शब्दों के बिना सम्यक्त्व भी नहीं होता।

पढम-कामदेव-बाहुबलि-पसिद्धो गोम्मडेसणामेण।
चामुंडरायस्स गोम्मडस्स ईसो गोम्मडेसो।।952।।

प्रथम कामदेव भगवान् बाहुबली श्रीगोम्मटेश नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। चामुंडराय का एक नाम गोम्मट भी आता है। उन गोम्मट के ईश गोम्मटेश कहलाते हैं।

गोम्मडेस-जिणो सिरी-बाहुबलीसामी णामय-किदी हु।
लिहिदा परिचायगा य, तं पडि सूरिस्स भत्तीए।।953।।

आचार्यश्री के द्वारा **गोम्मटेश जिन श्रीबाहुबली स्वामी** नामक पुस्तक लिखी गई। वह कृति श्री गोम्मटेश बाहुबली स्वामी के प्रति उनकी भक्ति की परिचायिका है।

कहं उच्छुवायरणं, करेज्ज पणवीससययम-मोक्खस्स।
वीरस्स इदं लिहिदं, लहुकिदीए आइरियेणं॥954॥

महावीर स्वामी का **''2500वाँ निर्वाण उत्सव कैसे मनायें''** नामक लघुकृति में आचार्यश्री ने लोगों को उत्सव मानाने के निर्देश दिए।

आदि-किसि-सिक्खग-तित्थयर-आदिणाहो-णामय-लहु-किदी।
लिहिदा सव्वुवजोगी, आइरिय-विज्जाणंदेणं॥955॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने **'आदि-कृषि-शिक्षक तीर्थंकर आदिनाथ'** नामक सर्वोपयोगी लघुकृति का लेखन किया।

लिहिदा किदी य सातंतं, समायवादो अणुसासणं च।
समाय-विआस-हेदू, अज्झप्प-विज्जासिद्धीए॥956॥

'स्वतंत्रता, समाजवाद और अनुशासन' इस कृति का लेखन आचार्यश्री ने अध्यात्म विद्या की सिद्धि के लिए किया। यह कृति समाज विकास का हेतु भी है।

समणसक्किदी दीवावली णामय-किदी लिहिदा मुणिणा।
तस्स पव्वकारणं च, सेट्ठमहिमा वण्णिदा तम्मि॥957॥

मुनिश्री के द्वारा **''श्रमण संस्कृति और दीपावली''** नामक कृति का लेखन हुआ। उस पुस्तक में उस पर्व का कारण और उसकी श्रेष्ठ महिमा का वर्णन किया।

णेव धम्मणिरवेक्खो, संपदायणिरवेक्खो भारदं च।
इमा वियार-धारा हु, सव्वुदयी सव्व-हिदयरा य॥958॥

भारत देश **'धर्मनिरपेक्ष नहीं, संप्रदाय निरपेक्ष'** है। यह विचारधारा सर्वहितकारी व सर्वोदयी है। (इस कृति का सृजन भी आचार्यश्री के द्वारा किया गया।)

मोहणजोदडो जइण-परंपरा पमाणं णाम-किदी दु।
लिहिदा बहु-भासासुं, अणुवादिदा बहु-मणीसीहि।।959।।

'मोहनजोदड़ो-जैन परंपरा और प्रमाण' नामक कृति भी आचार्यश्री के द्वारा लिखी गई। यह बहुत मनीषियों के द्वारा बहुत भाषाओं (हिन्दी, मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी) में अनुवादित है।

विस्सस्स पाईण-सब्भदासु एगा मोहणजोडदस्स।
जइण-पडिमादीणं च, अवसेसा लहिदा खणणम्मि।।960।।

विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में मोहनजोदड़ो की सभ्यता एक है। मोहनजोदड़ो की खुदाई में जैन प्रतिमा आदि के अवशेष भी प्राप्त हुए।

पुरातच्चविदूहि उग्घाडिद-जइणधम्म-पाईणत्तं।
पोत्थिअं पदंसेदुं, लिहिदं अणेगपमाणजुदं।।961।।

पुरातत्त्वविदों के द्वारा उद्‌घाटित जैनधर्म की प्राचीनता को प्रदर्शित करने के लिए आचार्यश्री ने अनेक प्रमाणों से युक्त यह पुस्तक लिखी।

कल्लाणमुणी राओ-सिगंदरो णामो इदिवत्त-जुदा।
लिहिदा तेण लहुकिदी, खण-भंगुरत्त-पडिपादिगा।।962।।

''कल्याण मुनि और सम्राट सिकंदर'' नामक इतिहास से युक्त यह लघुकृति आचार्यश्री के द्वारा लिखी गई। यह कृति संसार की क्षणभंगुरता का प्रतिपादन करने वाली है।

मंगलस्स भव्वाणं, मंगल-कुमकुमपाढ-णामय-किदी।
सद्धम्म-संवड्ढगा, लिहिदा विसयविरत्ति-हेदू।।963।।

भव्यों के मंगल के लिए सद्‌धर्म का संवर्द्धन करने वाली विषय-विरक्ति का हेतु **''मंगल कुमकुम पाठ''** नामक कृति आचार्यश्री ने लिखी।

जइण-सक्किदीइ दाण-पूयाहि अच्चंत-महच्चजुदाहि।

विणा ण संभवो पुण्ण-वड्ढण-मह-खओ गेहीणं।।964।।

जैन संस्कृति में दान व पूजा अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उनके बिना गृहस्थों का पुण्यवर्धन और पापों का क्षय संभव नहीं है।

गुरु-परिवाय-वियारो, णामय-किदी लिहिदा महरट्ठीइ।

समाहाण-पदायगा, बहुपसिद्धा सव्वुवजोगी।।965।।

'गुरु-परिवाद विचार' नामक यह कृति आचार्यश्री ने मराठी भाषा में लिखी। यह कृति समाधानों को देने वाली, बहुप्रसिद्ध व सर्वोपयोगी है।

आइरियेण मुणिभत्त-खेत्तवालाण सत्थुत्त-सरूवो।

णामय-किदी लिहिदा दु, सम्म-सरूव-वण्णगा ताण।।966।।

''मुनिभक्त क्षेत्रपालों का शास्त्रोक्त स्वरूप'' नामक आचार्यश्री द्वारा लिखित कृति उन क्षेत्रपालों के सम्यक् स्वरूप का वर्णन करने वाली है।

जिणसासणपहावगा, धम्मरक्खगा सम्मत्तवड्ढगा।

भव्व-हिदयरा ते चिय, सुभत्ता तित्थयरादीणं।।967।।

वे क्षेत्रपाल जिनशासन प्रभावक, धर्मरक्षक, सम्यक्त्व-वर्द्धक, भव्यों के हितकर और तीर्थंकर आदि के भक्त होते हैं।

वियडिं णिराकरेदुं करिदु-मणेगसंकासमाहाणं।

सम्मत्त-सुइस्स मिच्छ-मण्णदं लुंपिदुं समत्था।।968।।

यह कृति विकृति के निराकरण में, अनेक शंकाओं के समाधान करने में, मिथ्या मान्यताओं का लोप करने में और सम्यक्त्व की पवित्रता के लिए समर्थ है।

वीर-पहु-किदीए चिय, अंत-तित्थयरस्स भरदखेत्तस्स।

परिययो दायिदो संखेवेणं जणसामण्णस्स।।969।।

'वीर प्रभु' नामक कृति में आचार्यश्री ने जनसामान्य के लिए संक्षेप से भरतक्षेत्र के अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीरस्वामी का परिचय दिया।

णर-देहो पंचिंदिय-विसय-भोत्ता अवि हेमपिंजरं व।
दुहमूलपारतंतं पावपुण्णुहया भव-हेदू।।970।।

मनुष्य का शरीर पंचेन्द्रिय विषयों का भोक्ता है और स्वर्ण के पिंजरे के समान है। (जिसमें आत्मा रूपी पक्षी फड़फड़ाता है) यह परतंत्रता ही दु:ख का मूल है। पाप और पुण्य दोनों ही संसार का कारण हैं।

सायत्तं कराविदं, जइणधम्मसिद्धंत-अहिंसाए।
भारदं मोहणदास-कम्मचंद-महप्प-गंधिणा।।971।।

श्री मोहनदास कर्मचंद महात्मागांधी ने जैनधर्म के सिद्धांत अहिंसा के बल से भारत को स्वतंत्र कराया।

जइणधम्मो अहिंसा, महप्पा-गंधी किदी चिय लिहिदा।
अहिंसाइ समा णेव, अण्णाइं अत्थ-सत्थाइं।।972।।

आचार्यश्री ने **''जैनधर्म, अहिंसा एवं महात्मागांधी''** नामक यह कृति लिखी। अहिंसा के समान कोई अन्य अस्त्र-शस्त्र नहीं है।

बाहुबलि-रायहाणी, तक्खसिला इमाइ किदीइ तेणं।
वण्णिदं इदिवत्तं पि, सब्भदादी पमाणेहि सह।।973।।

'बाहुबलिस्स रायहाणी तक्खसिला'' इस कृति में आचार्यश्री ने प्रमाणों के साथ सभ्यतादि इतिहास का वर्णन किया।

सूदग-पादग-विही दु, अणादीदो वण्णिदा जिणसमये।
मिच्छादिट्ठी सो जो, णेव मण्णेदि दु विहिं तस्स।।974।।

जिनशासन में अनादिकाल से सूतक-पातक विधि का वर्णन किया गया है। जो उस सूतक-पातक की विधि को नहीं मानता वह मिथ्यादृष्टि

है। **‘सूतक-पातक न मानने वाला मिथ्यादृष्टि’** इस कृति का लेखन आचार्यश्री द्वारा किया गया।

आइरियेणं लिहिदा, किदी पयातंतस्स मूलमंतो।
तं पढित्ता विवेगी, करेज्ज पवित्ति-मुच्छाहेण॥975॥

आचार्यश्री ने **‘प्रजातंत्र के मूलमंत्र’** नामक कृति का लेखन किया। उसे पढ़कर विवेकीजन उत्साहपूर्वक सम्यक् प्रवृत्ति कर सकेंगे।

धम्मखेत्तम्मि मुत्ती, पसत्थालंबणं उवासगाणं।
मुत्तिमंत-झाणं खलु, कारणं सिवपदपत्तीए॥976॥

धर्मक्षेत्र में उपासकों के लिए मूर्ति प्रशस्त आलंबन है। मूर्तिमान का ध्यान मोक्षपद की प्राप्ति का कारण है।

अस्स-परंपराए दु, अज्जिगा-दिक्खा सुहकिदी लिहिदा।
तेण संबंधिदणेग-भंतिं णिराकरिदुं मुणिणा॥977॥

आचार्यश्री ने **‘‘आर्ष परंपरा में आर्यिका दीक्षा’’** नामक श्रेष्ठ कृति लिखी। मुनिश्री ने उनसे संबंधित अनेक भ्रान्तियों का निराकरण करने के लिए इस कृति को लिखा।

सद्दिट्ठि-खेत्तवालो, लहुपोत्थअं लिहिदं आइरियेण।
ताण कज्ज-अत्थित्तं, इच्चादी वण्णिदा इमम्मि॥978॥

आचार्यश्री ने **‘सम्यग्दृष्टि क्षेत्रपाल’** नामक लघुपुस्तिका लिखी। उन क्षेत्रपाल के कार्य, अस्तित्व इत्यादि इसमें वर्णित किए गए।

णेव ताण सम्माणं, मिच्छत्तं धम्मपहावग-किदाण।
सरलसद्देसु कहिदं, जिणागमस्स पमाणेहि सह॥979॥

क्षेत्रपालों के धर्मप्रभावक कृत्यों के लिए उनका सम्मान करना मिथ्यात्व नहीं है। जिनागम के प्रमाणों के साथ सरल शब्दों में आचार्यश्री ने कहा।

दाणं च विस्सपसिद्ध-पउमावदीइ बहुचच्चिदा-किदी।
पत्तकेसरि-आदीण, पसंगेहिं सह वण्णिदं दु॥980॥

''विश्वप्रसिद्ध पद्मावती की देन'' आचार्यश्री की बहु चर्चित कृति है। वह पात्रकेसरी आदि के प्रसंगों के साथ वर्णित है।

तेवीसइम-तित्थयर-पासणाह-महोवसग्गो हरिदो।
ताइ धरणिंदेण सह, किदमुवयारं ण विम्हरेज्ज॥981॥

देवी पद्मावती ने धरणेंद्र के साथ 23वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ स्वामी का महा उपसर्ग दूर किया। क्योंकि शिष्टजन अपने ऊपर किए गए उपकार को कभी नहीं भूलते।

रुक्खेसु जीवत्थित्त-पगासग-किदी वणपदि-वणप्फदी।
पज्जावरण-रक्खगा, गणि-विज्जाणंदेण लिहिदा॥982॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज द्वारा लिखित **''वन का पति वनस्पति''** नामक यह कृति वृक्षों में जीव के अस्तित्व को दिखाती है। यह कृति पर्यावरण की संरक्षिका है।

जिणसासणे पसिद्धा, पंचवण्णी दु धया अणादीदो।
पणपरमेट्ठि-वायगा, पण-परावट्टण-णासगा य॥983॥

जिनशासन में यह पंचवर्णी ध्वजा अनादिकाल से प्रसिद्ध है। यह ध्वजा पंचपरमेष्ठी की वाचक और पंच परावर्तन की नाशक है।

आइरिय-पेरणाए, अच्चंतुवजोगी अणेग-गंथा।
वा आसीवायेणं, पगासिदा अणेगसंथाहि॥984॥

इनके अतिरिक्त आचार्यश्री की प्रेरणा से वा आशीर्वाद से अत्यंत उपयोगी अनेक ग्रंथ अनेक संस्थाओं द्वारा प्रकाशित किए गए।

सूरि-आसीवायेण, ठविदं धम्म-जागरिअ-संठाणं।
पंचसयद्ध-साहा दु, पणवीस-पंतेसु चिय तस्स॥985॥

आचार्यश्री के आशीर्वाद से धर्म जागृति संस्थान की स्थापना की गई। पच्चीस प्रांतों में उसकी 250 शाखाएँ हैं।

णिग्गंथ-गंथ-माला-समिदी ठविदा गुरुवर-आसीए।
जाइ पयासिदा तिसय-गंथा कल्लाणकारगा दु॥986॥

आचार्य गुरुदेव के आशीर्वाद से निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति की स्थापना की गई जिसके द्वारा भव्यों का कल्याण करने वाले ग्रंथ प्रकाशित किए गए।

पण्णासाहिय-पागद-गंथा पढमाणुओगगंथा अवि।
करण-चरणाणुओगं, तह तित्थयराणं विहाणं॥987॥
गज्ज-पज्ज-संजुत्तं, माणवुवजोगी विउल-साहित्तं।
पयासिदं संथाए, इमाए दु सरलभासाए॥988॥ (जुम्मं)

पचास से अधिक प्राकृत ग्रंथ, प्रथमानुयोग ग्रंथ, करणानुयोग, चरणानुयोग के ग्रंथ, तीर्थंकरों के विधान, गद्य और पद्य से संयुक्त मानवोपयोगी विपुल साहित्य इस संस्था के द्वारा सरलभाषा में प्रकाशित किया गया।

गुरु-आसीए जंबूसामी-तवत्थली-जिण्णुद्धारो।
होज्ज धम्मज्झाणस्स, वर-तव-ठाणं वट्टमाणे॥989॥

गुरुदेव के आशीर्वाद से श्री जंबूस्वामी तपोस्थली का जीर्णोद्धार हुआ। वर्तमान में वह धर्मध्यान के लिए श्रेष्ठ तप-स्थान है।

गुरुकिवाफलं सव्वं, इदं करिदुं सक्केज्ज हं जेणं
परमभत्तीइ वंदे, विज्जाणंदगुरुमुवयारिं॥990॥

यह सब गुरु कृपा का ही प्रतिफल है जिससे मैं यह सब कार्य करने में समर्थ हो सका। मैं अपने उपकारी आचार्य श्री विद्यानंद जी गुरुवर को परमभक्तिपूर्वक वंदन करता हूँ।

इमाए अदिरित्ता दु, जिणसासण-पहावणाए अण्णा।

संथा वि ठविदा तेण, महासाहा महासमिदी य।।991।।

विदुपरिसदो परिसदो, तित्थरक्खासमिदी जइणसंघो।

पागदपीढं ठविदं, पागद-भासा-उण्णदीए।।992।। (जुम्मं)

इसके अतिरिक्त जिनशासन की प्रभावना के लिए आचार्यश्री के द्वारा अन्य महाशाखा, महासमिति, विद्वत्-परिषद, परिषद, तीर्थरक्षा समिति व जैन संघादि अन्य संस्थाओं की स्थापना भी की गई। प्राकृत भाषा की उन्नति के लिए प्राकृतपीठ की स्थापना की गई।

अप्पसुहयरसिक्खा
(आत्मसुखकारी शिक्षाएँ)

याले याले दायिदा, अणेग-सिक्खा सिरी-आइरियेण।
सुहमग्गं पदंसिदुं, सगसिस्साण सावगाणं च।।993।।

शुभ मार्ग प्रदर्शित करने के लिए आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने समय-समय अपने शिष्यों व श्रावकों को अनेक शिक्षाएँ दीं।

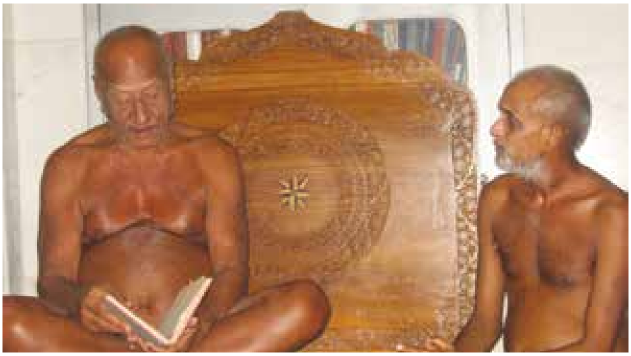

ववहार-पहावणादुवरि णिच्छयधम्मपहावणा-रदो।
करीअ पहाविदप्पं, जिणधम्म-सस्सद-सुत्तेहिं।।994।।

व्यवहार प्रभावना से ऊपर वे निश्चयधर्म की प्रभावना करते थे। जिनधर्म के शाश्वत सूत्रों से वे अपनी आत्मा को प्रभावित किया करते थे।

सिक्खावीअ सिस्साण, संघसंचालणं चउअणुजोगं।
जिणसासण-पहावणा-विही उवसग्गाइ-सहणस्स।।995।।

उन्होंने अपने शिष्यों को संघसंचालन, चार अनुयोग, जिनशासन प्रभावना और उपसर्गादि के सहने की विधि भी सिखायी।

को चिय संजम-जोग्गो, का इत्थी अज्जा-दिक्खा-जोग्गा।
सावय-साविया तहा, अणुव्वदं गहेदुं जोग्गा।।996।।

उन्होंने बताया कि कौन पुरुष संयम धारण करने के योग्य है, कौन स्त्री आर्यिका दीक्षा ग्रहण करने के योग्य है और कौन श्रावक-श्राविका अणुव्रत ग्रहण करने के योग्य हैं।

दाएज्ज वच्छलं चउ-विहसंघस्स अणुसासणं दिढं च।
करेज्ज खमाइ-भावं, धरिय णो कक्कस-ववहारं॥997॥

उन्होंने सिखाया कि चतुर्विध संघ के लिए सदैव वात्सल्य देना चाहिए। क्षमादि भावों को धारण कर संघ पर दृढ़ अनुशासन करना चाहिए। कभी किसी के साथ कटु व्यवहार नहीं करना चाहिए।

पमाद-पोसगो विसय-पोसगो णो भववड्ढगकज्जाण।
धम्म-णासग-कज्जाण, णेव सीदणं आयारम्मि॥998॥

कभी प्रमाद के पोषक, विषयों के पोषक नहीं होना। संसारवर्द्धक कार्यों और धर्मनाशक कार्यों के भी पोषक नहीं होना और कभी आचरण में शिथिल नहीं होना।

णिंदं वंचणं पराभवं धम्मीण णो करेज्ज कया वि।
णेव सुणेज्जा णिंदं, जिणधम्मस्स अवमाणं वा॥999॥

धर्मात्माओं की निंदा, वंचना और पराभव कदापि नहीं करना चाहिए। जिनधर्म का अपमान कदापि नहीं करना चाहिए और जिनधर्म की निंदा भी कभी नहीं सुननी चाहिए।

अज्जाणं दाएज्ज ण, अइ- कक्कस-पायच्छित्तं कया वि।
ताइ संगदिं करेज्ज, ण सवर-संजमं रक्खेदुं॥1000॥

उन्होंने बताया कि आर्यिकाओं को कभी अति कठोर प्रायश्चित्त नहीं देना चाहिए। स्वपर संयम की रक्षा के लिए उनकी संगति नहीं करनी चाहिए।

चउविहसंघो सक्को, जिणसासणपहावणं कुव्वेदुं।
एगागी जदी अप्प-धम्म-जिणसासणणासगो दु॥1001॥

जिनशासन की प्रभावना करने में चतुर्विध संघ ही समर्थ है। एकाकी यति (एकल विहारी) आत्मधर्म और जिनशासन का नाशक है।

अणुसासण-मावसियं, मज्जादापालणाए णिच्चं हि।
जिणधम्मपहावणाइ, णेव अइवत्तदि मज्जादं॥1002॥

मर्यादा के पालन के लिए नित्य ही अनुशासन आवश्यक है। जिनधर्म की प्रभावना के लिए कभी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

करेज्ज वेज्जावच्चं, संजमरक्खाइ वच्छल्लेण सय।
तदा णेव चिंतेज्जा, लहु-दिग्घयाल-दिक्खिदो वा॥1003॥

संयम की रक्षा के लिए वात्सल्यपूर्वक सदैव वैय्यावृत्ति करनी चाहिए तब यह विचार नहीं करना चाहिए कि यति कम काल का दीक्षित है या अधिक काल का।

धम्मसहाए कयावि, ण णिंदं करेज्ज पहाणपुरिसाण।
धम्मीण सय विहीए, उवदिसेज्ज पिय-हिद-वयणेहि॥1004॥

धर्मसभा में कभी भी प्रधान पुरुषों की निंदा नहीं करनी चाहिए। धर्मात्माओं के लिए सदैव प्रिय व हित वचनों से विधिपूर्वक उपदेश देना चाहिए।

मज्जादं अइवत्तिय, किद-पहावणा य धम्मणिंदाए।
हेदू तं पहावणा, करेज्ज सय संजमेणं सह॥1005॥

मर्यादा का उल्लंघन करके की गई प्रभावना धर्मनिंदा का हेतु है। अतः प्रभावना सदैव संयम के साथ करनी चाहिए।

धम्म-सहाए णिच्चं, तण-मण-वयणाणि अणुसासिदाणि य।
सुधम्मरक्खाए जं, पद्धंसगोव्व जण-समूहो॥1006॥

सद्धर्म की रक्षा के लिए धर्मसभा में तन, मन और वचन नित्य ही अनुशासित होने चाहिए क्योंकि लोगों का समूह बारूद के ढेर की तरह है।

णेव लंघेज्ज कया वि, लोयायारं सत्थं व लोयम्मि।
ण मुणदि लोयायारं, घाददि सवरधम्मं जो सो।।1007।।

लोक में शास्त्र के समान लोकाचार का भी उल्लंघन कदापि नहीं करना चाहिए। जो लोकाचार को नहीं जानता वह स्वपर धर्म का घात कर देता है।

जस्सिं संघे वुड्ढा, तवस्सी साहू णो सो असक्को।
जिणसासणपहावणं, कुव्विदुं अणुभवणाणी जं।।1008।।

जिस संघ में वृद्ध तपस्वी साधु नहीं होते वह संघ जिनशासन की प्रभावना करने में अशक्य है। क्योंकि वे (संयम वृद्ध) अनुभवज्ञानी हैं।

संघाहार-गणहरो, सण्णाण-वड्ढगो य उवज्झाओ।
सेक्खो णाण-णिमित्तं, गणो संघ-संरक्खगो तह।।1009।।

संघ का आधार गणधर हैं, उपाध्याय सम्यग्ज्ञान के वर्द्धक हैं, शैक्ष्य ज्ञान में निमित्त होते है, संघ का संरक्षक गण है।

ठविरो हु संघंठिरं, कुणदि कल्लाण-पेरगो मणुण्णो।
चउविह-संघवट्टणे, पवट्टगो णिउणो मण्णेज्ज।।1010।।

स्थविर संघ को स्थिर करते हैं, मनोज्ञ कल्याण के प्रेरक होते हैं, चतुर्विध संघ के प्रवर्तन में प्रवर्तक निपुण मानने चाहिए।

दिग्घयालीणणुभवी, कुलो वेरग्गवड्ढगो गिलाणो।
संजमे अणुसासणे, वेज्जावच्चे तहा णिउणो।।1011।।

संगहणुग्गह-कुसलो, पंचायार-परायणो सूरी य।
चउविह-संघो णिच्चं, जिणसासणस्स चउथंभोव्व॥1012॥

दीर्घकालीन अनुभवी साधक कुल तथा वैराग्यवर्द्धक ग्लान है। जो संयम, अनुशासन और वैय्यावृत्ति में निपुण हैं, शिष्यों के संग्रह और अनुग्रह में कुशल हैं और पंचाचार-परायण हैं, वे आचार्य हैं। चतुर्विध संघ जिनशासन के चार स्तंभ के समान है।

संजमं विणा साहू, रायमुद्दाए विणा दु पत्तं व।
पाणं विणा सरीरं, उण्हत्तेणं विणा अग्गी॥1013॥

संयम के बिना साधु वैसे ही है जैसे राजमुद्रा के बिना पत्र, प्राण के बिना शरीर और ऊष्णता के बिना अग्नि।

मुणिपाणोव्व संजमो, संजमो महाधणं व साहूणं।
संजमो साहु-कवयो, संजमो सय कल्लाण-पहो॥1014॥

संयम मुनि के प्राण के समान है। संयम साधुओं के महाधन के समान है। संयम साधु का कवच है और संयम ही सदैव कल्याण का पथ है।

तवसी उज्जमसीलो, तच्चचिंतणरदो पमादरहिदो।
भव्वाण परिपालगो, तित्थयरोव्व धम्ममुत्ती दु॥1015॥

आचार्य भगवन् तपस्वी, उद्यमशील, तत्त्वचिंतन में रत, प्रमाद से रहित, भव्यजनों के परिपालक और तीर्थंकर के समान धर्ममूर्ति होते हैं।

रायद्दोसं खयिदुं, तप्परो य मोहणिज्जकम्मादिं।
अक्किदुव्व पमाणिग-सूरि-वंदणीयो तित्थोव्व॥1016॥

जो रागद्वेष को क्षय करने में और मोहनीय कर्मादि को क्षय करने में तत्पर हैं वे सूर्य-चंद्र के समान प्रमाणिक आचार्य, तीर्थंकर के समान वंदनीय हैं।

णो परिहरेज्ज धम्मं, तुमं मज्झं अंतेवासी अहो।
देहं उज्झेज्ज किण्णु, ण कयावि संजम-तव-धम्मं॥1017॥

आचार्यश्री ने एक बार हमसे कहा–अहो! मेरे अंतेवासी! तुम कभी धर्म का परिहार नहीं करना। देह छूटे तो छूट जाए किन्तु संयम, तप व धर्म कदापि नहीं छोड़ना।

सूरी धम्मविड्ढीइ, पालेज्जा चउविहसंघं सेट्ठं।
पिदरोव्व वच्छलेणं, सव्वदा खलु सगसंताणा॥1018॥

जिस प्रकार माता-पिता वात्सल्यपूर्वक अपनी संतानों का पालन करते हैं उसी प्रकार आचार्य भगवन् को धर्मवृद्धि के लिए श्रेष्ठ चतुर्विध संघ का पालन करना चाहिए।

देज्ज सव्वसिस्साणं, सिक्खं ववहार-कज्जुवरि होच्चा।
उज्झिय सगप्प-लीणो, धम्मे य पाविदुं समाहिं॥1019॥

आचार्यश्री ने अपने सभी शिष्यों के लिए शिक्षा दी कि व्यवहार कार्यों से ऊपर होकर पुनः समाधि को प्राप्त करने के लिए धर्म में, स्वात्मा में लीन होना।

चिंतेज्ज पुव्वाइरिय-चरियं बहुवारं बहुपयारेण।
काइ विहीइ पाविदा, तेहिं चिय उत्तमसमाही॥1020॥

अहो! पूर्वाचार्यों के चरित्र का बहुत प्रकार से बहुत बार चिंतन करना चाहिए कि उन्होंने किस विधि से उत्तम समाधि को प्राप्त किया।

आइरिय-संति-सायर-चरणेसु ठाइय बहुकालंतं।
तस्स चरियं जाणित्तु, पयासेमि आयरेदुं हं॥1021॥

आ. श्री विद्यानंदजी ने बताया कि चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागरजी मुनिराज के चरणों में बहुत समय तक रहकर, उनके चारित्र वा समीचीन शुभ प्रवृत्तियों को जानकर मैं उन जैसा ही आचरण करने का प्रयास करता हूँ।

भारदगोरवं गुरुं, सिरिदेसभूसणाइरियं सरलं।
जिणधम्मपहावगं च, जुगपवट्टगं अइविरत्तं।।1022।।
आदिसायरं च महा-वीरकित्तिं वीरं चंदसिंधुं।
पायं जयकित्तिं सिरि-विमलं संतिसायर-सूरिं।।1023।।
सुमरंतो कहीअ सो, सुमरणेण जंपणेण गाहाणं।
गंथाण कुणसु चित्तं, अइसरलं णिम्मलं सहजं।।1024।। (तिगं)

जिनधर्मप्रभावक, सरल, युगप्रवर्तक, अतिविरक्त, भारत गौरव गुरु आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज, आचार्यश्री आदिसागरजी मुनिराज, आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी आचार्यश्री वीरसागरजी, आचार्यश्री चंद्रसागरजी, आचार्यश्री पायसागरजी, आचार्यश्री जयकीर्तिजी, आचार्यश्री विमलसागरजी, चा.च. आचार्यश्री शांतिसागरजी मुनिराज का स्मरण करते हुए उन्होंने कहा कि ग्रंथों की गाथाओं के स्मरण से, बोलने से चित्त को अतिसरल, निर्मल व सहज करना चाहिए।

विज्जाणंद-सूरी वि, चिंतीअ जंपीअ सुमरीअ सया।
गंथ-गाहाओ तहा, उग्घाडेज्ज गंथरहस्सं।।1025।।

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज सदैव ग्रंथ की गाथाओं का चिंतन किया करते थे, उन्हें बोलते और याद किया करते थे। उन्होंने अनेक ग्रंथों के रहस्यों का उद्घाटन किया।

पुव्वाणं भद्दबाहु-धरसेण-पुप्फदंत-भूदबलीण।
कोंडकुंडादीण गुण-चिंतणं विसुद्धीइ करेज्ज।।1026।।

वे कहते थे कि आचार्यश्री भद्रबाहु स्वामी, आचार्यश्री धरसेन स्वामी, आचार्यश्री पुष्पदंत स्वामी, आचार्यश्री भूतबली स्वामी, आचार्यश्री कुंदकुंद स्वामी आदि पूर्वाचार्यों के गुणों का चिंतन विशुद्धिपूर्वक करना चाहिए।

णो करेज्ज जयगारं, मज्झ सहासु विज्जाणंदसूरी।
भासेज्ज सुभत्तीए, महावीराइ-तित्थयराण॥1027॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज कहते थे कि सभाओं में मेरी जयकार नहीं अपितु तीर्थंकर महावीरस्वामी आदि की भक्तिपूर्वक जयकार करनी चाहिए।

तित्थयराण सव्वाण, जम्म-मोक्ख-कल्लाणुच्छवाणं च।
आयरणं कराविदुं, इग-संथा ठाविदा जदिणा॥1028॥

सभी तीर्थंकरों के जन्म व मोक्ष कल्याणोत्सव मनवाने के लिए उन्होंने एक संस्था की स्थापना की।

णिराकरीअ समाये, विज्जंत-कुरीदि-मिच्छाधारणा।
सो उराल-दिट्ठि-जुदो, तप्परो समायेगत्तस्स॥1029॥

आचार्यश्री ने सदैव समाज में विद्यमान कुरीतियों और मिथ्या धारणाओं का निराकरण किया। वे उदार दृष्टि से युक्त और समाज की एकता के लिए तत्पर थे।

णिब्भच्छेज्ज ण धम्मी, वच्छलेण थिरं कुणह धम्मपहे।
णो को वि जणो हेयो, पावविट्टी दु उज्झणीया॥1030॥

वे कहते थे धर्मात्माओं का कभी तिरस्कार नहीं करना। वात्सल्यपूर्वक लोगों को धर्म के मार्ग पर स्थिर करें। कोई भी व्यक्ति कभी हेय नहीं है, पापप्रवृत्ति ही सदैव त्याज्य है।

दाएज्ज परामस्सं, उवएसं णिद्देसं णो वयणं।
विवाद-णिवत्तीए दु, विअक्केज्ज सिआवायेणं॥1031॥

साधु परामर्श, उपदेश व निर्देश तो दे किन्तु वचन नहीं। विवाद निवृत्ति के लिए स्याद्वादरीति से विचार-विमर्श करना चाहिए।

णो खंडेज्ज समायं, कया वि तस्स संगठणमावसियं।
पेम्मेण जुज्जेज्ज सय, खंडरसं व अणेग-कणाण॥1032॥

कभी भी समाज को तोड़ना नहीं चाहिए क्योंकि उसका संगठन, एकता अति आवश्यक है। समाज को प्रेमपूर्वक सदैव वैसे ही जोड़ना चाहिए जैसे चाशनी अनेक अन्न के कणों को जोड़ देती है।

भो अंतेवासी! मम, चेयणचेयणतित्थं रक्खंतो।
कुणह संजम-साहणा-विड्ढिं तत्थ विसुद्धीए दु॥1033॥

अहो मेरे अंतेवासी! चेतन-अचेतन तीर्थ की रक्षा करते हुए वहाँ विशुद्धिपूर्वक संयम-साधना की वृद्धि करें।

कुसक्कारं कुसिक्खं, दाएज्ज णेव अणीदि-मण्णायं।
णो करेज्ज जं जीवो, जह कुणदि तह भुंजदि णियमा॥1034॥

आचार्यश्री कहा करते थे कि कभी किसी को कुसंस्कार व कुशिक्षा नहीं देना चाहिए एवं अनीति व अन्याय नहीं करना चाहिए क्योंकि जीव जैसा करता है वह नियम से वैसा ही भोगता है।

सुहरुक्खस्स फलं सुह-मसुहरुक्खस्स असुहफलं णियमा।
तं ण पस्सेज्ज कुणेज्ज, सुणेज्ज बोल्लेज्ज तह असुहं॥1035॥

अच्छे वृक्ष का फल अच्छा और अप्रशस्त वृक्ष का फल अप्रशस्त ही होता है। अतः कभी भी अशुभ, अप्रशस्त को न देखें, न करें, न सुनें और न अशुभ बोलें।

अहियाहिय-अज्झयणं, करिदुं कहीअ सया विदु-जणाणं।
आगमाणुसारेणं, गवेसेज्जा समाहाणं दु॥1036॥

वे सदैव विद्वानों से अधिक से अधिक अध्ययन करने के लिए कहा करते थे और कहते थे कि आगमानुसार ही समाधान खोजें।

महाविलासिअम्मि तह, भोयपहाणणयरे वसदि जोगी।
जो सो सिहिलो हवदे, संजम-विराय-तव-झाणेसु।।1037।।

वे (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज) कहते थे कि जो योगी महाविलासी भोगप्रधान नगरी में रहता है वह संयम, वैराग्य, तप व ध्यान में शिथिल हो जाता है।

णेव समाय-विवाये, कलहे णो वदेज्ज साहू कया वि।
उवदिसित्तु समत्तेण, धम्म-पहावणं करेज्ज सय।।1038।।

वे सदैव कहते थे कि साधु को कभी भी समाज के विवाद व झगड़े में नहीं पड़ना चाहिए। समत्व भाव से उपदेश देकर सदैव धर्म की प्रभावना करनी चाहिए।

पदं पदिट्ठं पूयं, खादिं लाहादिं णेव कंखेज्ज।
णिक्कंखतवं करेज्ज, अप्पझाणं खयिदुं कम्मं।।1039।।

साधु को कभी पद-प्रतिष्ठा, पूजा, ख्याति व लाभ आदि की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। कर्मक्षय के लिए सदैव निष्कांक्ष तप व आत्मध्यान करना चाहिए।

जदि तुमं पप्पोसि अइ-सम्माण-पूयं जसं सक्कारं।
तो विम्हरेज्ज णो सग-सरूवं अइपुण्णोदयम्मि।।1040।।

यदि तुम अति सम्मान, पूजा, यश, संस्कार प्राप्त करते हो तो उस तीव्र पुण्य के उदय में अपना स्वरूप कभी नहीं भूलना।

पुव्वपावोदयादो, कयाइ उवसग्गे णेव बीहेज्ज।
सव्वदा धम्ममग्गे, हवेज्ज थिरो दिढ-भावेहिं।।1041।।

पूर्व पाप के उदय से कदाचित् उपसर्ग होने पर कभी डरना नहीं चाहिए। दृढ़भावों से सदैव धर्म मार्ग पर स्थिर रहना चाहिए।

समाया पणोल्लेज्जा, जुगे जुगे धम्ममहुच्छवादीहि।

अण्णहा सुदीहयाल-पच्छा उसं लुंपेज्ज तत्थ॥1042॥

समाजों को धर्ममहोत्सव आदि के द्वारा युग-युग में धर्म के लिए प्रेरित करना चाहिए। अन्यथा दीर्घकाल पश्चात् उस क्षेत्र में धर्म लुप्त हो जाएगा।

सुहभावेहि आगदं, सद्धालु-जइणिदरं पि जिणधम्मे।

णो उविक्खेज्ज कया वि, दाएज्ज तस्स सुसक्कारं॥1043॥

जिनधर्म में शुभ भावों से आए हुए श्रद्धालु जैनेतर लोगों की भी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए बल्कि उन्हें सुसंस्कार देने चाहिए।

संजमं तवं धम्मं, वड्ढेज्जा णिद्दोस-साहणाए।

बहुसाहण-सामग्गी, सुद्धसाहणं सय खंडेदि॥1044॥

अपनी निर्दोष साधना से संयम, तप व धर्म को वृद्धिगत करना चाहिए। बहुत साधन-सामग्री सदैव शुद्ध साधना को खंडित कर देती है।

जदि पडिऊल-दसाए, बद्धो तुमं अहो अंतेवासी।

करेज्ज काउस्सग्गं, तदा चिंतणं परमेट्ठीण॥1045॥

अहो अंतेवासी! यदि कभी प्रतिकूल दशा में फँसे हो तो कायोत्सर्ग करना चाहिए और परमेष्ठियों का चिंतन करना चाहिए।

परमेट्ठि-रक्खगो जिणसासणं सव्वदा परमसरणं हि।

सेट्ठ-धम्मी अवि होज्ज, धम्म-साहगो सगपुण्णेण॥1046॥

परमेष्ठी सदैव ही रक्षक होते हैं। जिनशासन ही परमशरण है। श्रेष्ठ धर्मात्मा ही अपने पुण्य से धर्म के साधक होते हैं।

दिढं अज्झप्पणाणे, होज्ज पडिसमयम्मि सव्वत्थ तुमं।

अप्पं रक्खेदुं तं, सगजीवण-अहिरक्खा इव दु॥1047॥

आचार्यश्री कहते थे कि तुम्हें सर्वत्र प्रतिसमय अध्यात्म ध्यान में दृढ़ होना चाहिए। वह अध्यात्मध्यान आत्मा की रक्षा के लिए जीवनबीमा के समान है।

जिणसत्थाणुसारेण, वदेज्जा सया हि पवयणादीसुं।
दिट्ठंतं सव्वपियं, सुगमं जुत्तिजुत्तं संसं।।1048।।

प्रवचन आदि में सदैव ही जिनशास्त्रों के अनुसार बोलना चाहिए। प्रवचनादि में सर्वप्रिय, सुगम, युक्तियुक्त, प्रशंसनीय दृष्टांत बोलने चाहिए।

सगपय-अणुसारेणं, कण्णपिया पसंसणीया वदेज्ज।
बोहवड्ढगा लोगुत्ती णो णिंदणीया कया वि।।1049।।

अपने पद के अनुसार कर्णप्रिय, प्रशंसनीय व बोधवर्धक लोकोक्ति व मुहावरे ही बोलने चाहिए। कभी निंदनीय लोकोक्तियाँ नहीं बोलनी चाहिए।

सगहंतु वि णो हणदि, सया धम्मवासो जस्स चित्तम्मि।
पावदूसिदं चित्तं, घादेदि य सगरक्खगं अवि।।1050।।

जिसके चित्त में सदैव धर्म का वास है तो वह अपने मारने वाले को भी नहीं मारता। जबकि पाप से दूषित चित्त अपनी रक्षा करने वाले का भी घात कर देता है।

सुद्धसमय-अणुभूदिं, कुव्वेदुं णिम्मलप्पा समत्थो।
कहं समलप्पा होदि, णिम्मलप्पा हि समयसारो।।1051।।

निर्मला आत्मा ही शुद्ध समय की अनुभूति करने में समर्थ है। मलिन आत्मा शुद्ध समय का अनुभव कैसे कर सकता है? निर्मल आत्मा ही समयसार है।

जाणेसि अहो सिस्सो, सगपण्णं विणा णिरत्थग-गंथो।
जह तह सक्को अंधो, ण स-मुहं दप्पणे पस्सिदुं ण।।1052।।

अहो शिष्य! जानते हो कि अपनी प्रज्ञा (बुद्धि) के बिना ग्रंथ उस प्रकार निरर्थक है जिस प्रकार एक अंधा दर्पण में अपना मुख देखने में असमर्थ होता है।

गुरू दायदि सिस्साण, दिक्खं सुव्वदं गुणा सक्कारं।
णेव दायिदुं सक्को, किण्णु गुणट्ठाणं हु कयावि॥1053॥

गुरु, शिष्यों के लिए दीक्षा, सुव्रत, गुण व संस्कार प्रदान करते हैं किन्तु वे गुणस्थान देने में कभी समर्थ नहीं हैं।

दिक्खथीणं करेज्जा, परिक्खं सव्वपयारेण जम्हा।
ण होज्ज अप्पहावणा, वेरग्गस्स पाहण्णेणं॥1054॥

वैराग्य की प्रधानता से सर्व प्रकार से दीक्षार्थी की परीक्षा कर लेनी चाहिए जिससे कि धर्म की अप्रभावना न हो।

सुहसिक्खं सक्कारं, दाएज्ज तह संजम-थिरिमाए दु।
वच्छलजुदणुसासणं, कुलालोव्व घड-णिम्माणम्मि॥1055॥

संयम में स्थिरता के लिए शिष्यों के लिए सदैव शुभ शिक्षा और संस्कार देने चाहिए। वात्सल्य युक्त अनुशासन ऐसे ही रखना चाहिए जैसे एक कुंभकार घड़ा बनाते हुए अंदर में प्यार का हाथ लगाता है और बाहर से चोट मारता है।

जदा पदायिदं मज्झ, उवज्झाय-पदं मम गुरुणा।
तदा कहीअ वसेज्जा, जिणवयणंबसरणे सया हि॥1056॥

जब मुझे (आ. श्री वसुनंदी जी को) मेरे गुरुवर ने उपाध्याय पद प्रदान किया तब उन्होंने कहा अहो! सदैव जिनवाणी माँ की शरण में ही वास करना।

सत्थं वण्णवत्तिगा, लिवि-आसणं रत्तीइ वि स-णियडे।
होज्ज जं मादुं विणा, बालो दूहदि वीहदि रुददि॥1057॥

शास्त्र, पैन, डायरी रात्रि में भी अपने निकट ही रखना क्योंकि माँ के बिना बालक दुखी होता है, डरता है और रोता है।

जदि सोहजुदो कयाइ, तदो पढेज्ज लिहेज्ज विसुद्धीए।
सण्णाणं सज्झायं, सासय-णंदा-दीवोव्व खलु॥1058॥

यदि कभी चित्त क्षुभित हो तो विशुद्धिपूर्वक अध्ययन करना व लिखना। सम्यग्ज्ञान व स्वाध्याय शाश्वत नंदादीप के समान है।

हीणकुलसंबंधिदो, अंगुवंगणूणहियो अवराही।
अजोग्गो मुणि-दिक्खाइ, णिंदो तह लोयववहारे॥1059॥

जो हीन (नीच) कुल से संबंधित हो, अंगोपांग न्यूनाधिक हों, अपराधी हो और लोकव्यवहार में निंद्य हो वह मुनिदीक्षा के अयोग्य जानना चाहिए।

विरागी मोक्खकंखी, अप्पकल्लाण-भावजुदो जोग्गो।
दिक्खाए ववहारे, उइद-देह-जुदो कोलीणो॥1060॥

जो व्यवहार में उचित देह से युक्त, कुलीन, आत्मकल्याण की भावना से युक्त वैरागी, दीक्षा व मोक्ष का आकांक्षी हो वह दीक्षा के योग्य जानना चाहिए।

भो सिस्सो पालेज्जा, दिक्खाइ-सडकालं जहक्कमेण।
अंतम्मि समाहीए, साहणं करेज्ज विरत्तीइ॥1061॥

अहो शिष्य! दीक्षादि षट्काल का यथाक्रम से पालन करना चाहिए। अंत में समाधि के लिए विरक्तिपूर्वक साधना करनी चाहिए।

सव्वहिदं कंखदि जो, तस्स हिदं अवि हवेदि णियमादो।
चिंतदि दियंबर-मुणी, णेव पर-अहिदं सुमिणम्मि वि॥1062॥

जो सबका हित चाहता है उसका हित भी नियम से होता है। दिगंबर मुनिराज स्वप्न में भी कभी दूसरों का अहित नहीं सोचते।

संजमं तवं झाणं, कुव्विदुं सक्को तो करेज्ज सया।
ण सक्को तो भावेज्ज, तवं तवस्सिं णो णिंदेज्ज॥1063॥

आचार्यश्री कहते थे कि यदि संयम, तप व ध्यान करने में समर्थ हैं तो करना चाहिए और यदि समर्थ नहीं हैं तो भावना भानी चाहिए। किन्तु कभी भी तप और तपस्वी की निंदा व उपहास नहीं करना चाहिए।

पडिवेसिओव्व देहो, साहणं व मण्णेज्जा आइरियो।
कंखेदि अप्परक्खं, आरक्खगोव्व जागरिओ दु॥1064॥

आचार्यश्री कहते थे कि शरीर पड़ोसी की तरह या साधन के समान मानना चाहिए। जो आत्मा की रक्षा चाहता है उसे सिपाही के समान जागृत रहना चाहिए।

ववहार-रयणत्तयं, णिच्छय-धम्म-कारणं णियमेणं।
तं पावदि णिग्गंथो, भरह-खेत्ते दुस्समयाले॥1065॥

व्यवहार रत्नत्रय नियम से निश्चयधर्म वा रत्नत्रय का कारण है। इस भरतक्षेत्र में दुस्समकाल में निर्ग्रन्थदेव उस निश्चय रत्नत्रय को प्राप्त करते हैं।

उत्तम-खमाइ-धम्मं, चिंतेज्जा बारसाणुवेक्खं अवि।
अप्प-विसोहि-कारणं, सुह-सोलस-कारण-भावणा॥1066॥

उत्तम क्षमादि धर्म, द्वादश अनुप्रेक्षा और शुभ सोलहकारण-भावना आत्मविशुद्धि के कारण हैं। इनका सदैव चिंतन करना चाहिए।

पत्तेयं साहू णो, समत्थो सिस्सालोयणं सुणिदुं।
चित्त-सुद्धीए ताणं, पदायिदुं पायच्छित्तं च॥1067॥

पंचायार-परायण-सूरी-आयाराइ-वसुगुणजुदो।
संगहणुग्गहकुसलो, पायच्छित्त-गंथ सुपढिदो।।1068।।
गुरुमुहेण गंभीरो, दूरदिट्ठो वच्छलो सहिण्हू वि।
तच्चुवदेसगो अक्ख-जेदू य कामजयी सक्को।।1069।। (तिअं)

प्रत्येक साधु शिष्यों की आलोचना सुनने में, उनके चित्त की शुद्धि के लिए प्रायश्चित देने में समर्थ नहीं है। जो आचार्य भगवन् आचारादि आठ गुणों से युक्त हैं, पंचाचार परायण व शिष्यों के स्नेह व अनुग्रह में कुशल हैं, जिन्होंने गुरुमुख से प्रायश्चित्त ग्रंथ भलीभाँति पढ़ा हो, जो गंभीर, दूरदृष्टा, वात्सल्य से युक्त, सहिष्णु, तत्त्वोपदेशक, इंद्रियविजेता और कामजयी हैं वे ही प्रायश्चित्त देने में समर्थ हैं।

एगुत्तर-बेसहस्स-वासे पढाविदा रहस्स-गंथा।
मज्झं तेण दायिदा, बेगंथा अवि भारदीए।।1070।।

आचार्यश्री ने सन् 2001 में कुंदकुंदभारती में मुझे रहस्य ग्रंथों का अध्ययन कराया और मुझे दो प्रायश्चित्त ग्रंथ भी प्रदान करे।

णाणज्झाण-तव-रदो, सयं कुव्वदि सिस्साणं वि तेसुं।
लोयववहार-णिउणो, अचंचलो अज्जाण-सूरी।।1071।।

जो स्वयं ज्ञान, ध्यान व तप में रत हैं और शिष्यों को भी उन्हीं में लगाते हैं, लोकव्यवहार में निपुण हैं, चंचल नहीं हैं, वे ही आर्यिकाओं के आचार्य होने में समर्थ हैं।

अज्जिगा अज्जिगा उवयारेण महव्वदी साविगा णो।
ता समूह-मज्झम्मि हि, वसेज्जा सव्वदा सव्वत्थ।।1072।।

आर्यिका आर्यिका ही हैं, वे उपचार से महाव्रती हैं, श्राविका नहीं। उन्हें सर्वदा और सर्वत्र समूह के मध्य ही रहना चाहिए।

जा का वि अज्जिगा चिय, एयला वियला अहवा विहरंति।
धम्मणिंदा-णिमित्तं, वदसंजमघादगा अवि ता॥1073॥

जो कोई भी आर्यिका अकेली या दुकेली विहार करती हैं, वे धर्म की निन्दा में निमित्त और व्रत संयम की घातक भी होती हैं।

जहण्णेण अज्जिगा दु, तिण्णि होज्ज तावइय-अहियाहिया।
जावइया सत्तीए, संभालिदुं समत्था गणी॥1074॥

आर्यिकायें कम से कम तीन होनी चाहिए। मुख्य आर्यिका शक्ति के अनुसार जितनी आर्यिकाओं को संभालने में समर्थ हो, उतनी होनी चाहिए।

गणि-अज्जाए णिद्देसेण धम्मसाहणं वदरक्खणं।
धम्मपहावणं सया, करेज्ज सव्वा समप्पणेण॥1075॥

सभी आर्यिकाओं को गणिनी आर्यिका के निर्देश से ही सदैव समर्पण के साथ धर्मसाधना, व्रत की रक्षा और धर्म प्रभावना करनी चाहिए।

जहवि आइरियो गुरू, जेट्ठो सेट्ठो लोयववहारादु।
तहवि वीहदि ण कया वि, अइच्छदि अइच्छावेदि तं॥1076॥

यद्यपि आचार्य ज्येष्ठ व श्रेष्ठ गुरु हैं तथापि उन्हें लोकव्यवहार से डरना चाहिए। उन्हें कभी भी उस लोकव्यवहार का उल्लंघन न तो करना चाहिए और न कराना चाहिए।

परणिंदाए जीवो, विसट्टदि धम्मादु तं वच्छलेण।
पालंतो उवगूहण-मंगं धम्मे करेज्ज थिरं॥1077॥

परनिंदा से जीव धर्म से च्युत हो जाता है अतः उपगूहन अंग का पालन करते हुए वात्सल्यपूर्वक उन्हें धर्म में स्थिर करना चाहिए।

एलगो खुल्लयो वा, ण परमेट्ठी तहेव जहाजोग्गं।
ताणं करेज्ज भत्तिं, अदिरेगेण दूसदि धम्मो॥1078॥

ऐलक व क्षुल्लक परमेष्ठी नहीं हैं अतः उनकी यथायोग्य भक्ति करनी चाहिए, क्योंकि अतिरेक करने से धर्म दूषित होता है।

एलगं खुल्लयं वा, परमेट्ठिं मण्णिदूण जो करेदि।
भत्तिं तस्स जीवस्स, दूसिदं हवेदि सम्मत्तं॥1079॥

जो ऐलकजी व क्षुल्लकजी को परमेष्ठी मानकर उनकी भक्ति करता है उस जीव का सम्यक्त्व दूषित होता है।

सूदग-पादग-विहिं च, पालेज्ज करेज्ज धम्मि-सहजोगं।
करेज्ज पवित्तिं दाण-पूयासीलुववासेसु च॥1080॥

श्रावकों को सदैव सूतक व पातक विधि का पालन करना चाहिए, साधर्मियों का सहयोग करना चाहिए एवं दान, पूजा, शील व उपवास में प्रवृत्ति करना चाहिए।

जेहिं धम्म-रक्खिदा, ते भट्टारया माणेज्ज जम्हा।
सज्जणा विम्हरंते, णेव किदमुवयारं कयावि॥1081॥

जिन्होंने धर्म की रक्षा की उन भट्टारकों का भी सम्मान करना चाहिए, क्योंकि सज्जन किसी के किये गए उपकार को कभी नहीं भूलते।

संघस्सं सहंताण, उवयारेण जिणसासणं अज्जं।
अवि जीवंतं दु सव्व-कल्लाण-कारगं सव्वदा॥1082॥

जिन्होंने अनेक संघर्षों को सहन किया उन भट्टारकों के उपकार से सदा सभी का कल्याण करने वाला जिनशासन आज भी जीवंत है।

जइणाण मूलभासं, पागदं सक्किदिं सया रक्खेज्ज।
मयूरपिच्छाइ-मण्ण-उवयरणं दियंबरमुद्दं॥1083॥

जैनों की मूलभाषा प्राकृत, जैन संस्कृति, मयूर पिच्छिका आदि अन्य उपकरण और दिगंबर मुद्रा की सदा रक्षा करनी चाहिए।

अंत-तित्थयरो महावीर-जम्मभूमी विहारपंते।

वइसाली विक्खादा, कुव्विदा खलु आइरियेणं॥1084॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने बिहार प्रान्त में अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीरस्वामी की जन्मभूमि वैशाली को ख्याति प्रदान की।

इदिवित्त-परिपेक्खम्मि, पमाणिगा तित्थयर-जम्मभूमी।

णो उविक्खेज्ज कयावि, जिण-सासण-पहावणाए दु॥1085॥

इतिहास के परिपेक्ष में तीर्थंकरों की जन्मभूमि प्रमाणिक हैं। जिनशासन की प्रभावना के लिए उनकी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

अजुद्धा-चंदपुरी य, कोसंबी भद्दलपुर-सीहपुरी।

चंपापुरो कंपिला, सावत्थी हत्थिणायपुरो॥1086॥

रयणपुरी सउरीपुर-रायग्गही वाराणसी णयरी।

तित्थ-जम्मभूमीणं, करावेज्जा समुद्धारं दु॥1087॥ (जुम्मं)

अयोध्या, चन्द्रपुरी, कौशाम्बी, भद्दलपुल, सिंहपुरी, चंपापुर, कंपिला, श्रावस्ती, हस्तिनापुर, रत्नपुरी, शौरीपुर, राजगृही तथा वाराणसी ये तीर्थंकरों की जन्मभूमि हैं। तीर्थंकरों की जन्मभूमियों का समुद्धार कराना चाहिए।

अट्ठापदो-सम्मेद-गिरी-उज्जंतगिरी पावापुरी।

मंदारगिरी कुंडलपुराहारो रेसिंदिगिरी॥1088॥

दोणगिरी सउरीपुर-मथुरा मंगीतुंगी गजपंथा।

चूलगिरि-मुत्तागिरी, पावागढ-तारंगा तहा॥1089॥

णेमावरो गुणावा, सिद्धवरकूडो तह सुवण्णगिरी।

पडणा य रायग्गही, इमाण बहु-सिद्ध-खेत्ताणं॥1090॥

वंदणाए पेरणं, दाएज्ज खेत्ताणि संरक्खिदुं वि।

ताणं रक्खाए जं, संरक्खिदं जिणसासणं दु॥1091॥ (चउक्कं)

अष्टापद, सम्मेदशिखर, ऊर्जयंतगिरी, पावापुरी, मंदारगिरी, कुण्डलपुर, रेसिंदीगिरी, द्रोणगिरी, शौरीपुर, मथुरा, मांगीतुंगी, गजपंथा, चूलगिरी, मुक्तागिरी, पावागढ़, तारंगाजी तथा नेमावर, गुणावा, सिद्धवरकूट, सोनागिरी, पटना और राजगृही इन बहुत से सिद्धक्षेत्रों की वंदना करनी चाहिए तथा उन क्षेत्रों के संरक्षण की भी प्रेरणा देनी चाहिए। क्योंकि उनकी रक्षा से ही जैनशासन सुरक्षित है।

णिब्भच्छेज्ज विदू णो, णवरि माणेज्ज सया वच्छलेणं।
जम्हा सण्णाणस्स दु, सुहुम-तच्चं सिक्खावेज्जा।।1092।।

आचार्यश्री कहा करते थे कि विद्वानों का कभी अपमान नहीं करना चाहिए अपितु वात्सल्यपूर्वक सदैव उनका सम्मान करना चाहिए क्योंकि वे सम्यग्ज्ञान के सूक्ष्मतत्त्वों का ज्ञान कराते हैं।

अस्सिं दुस्समयाले, धणी धम्मविमुहा कालदोसेण।
बहुहा तं धम्म-थिरं, कुणिय पोच्छाहणं दाएज्ज।।1093।।

इस दुषमाकाल में कालदोष से धनी लोग बहुधा धर्म से विमुख हैं अतः उन्हें धर्म में स्थिर करके प्रोत्साहन देना चाहिए।

सद्धम्मपहावणाइ, विदू सासगा पसासगा सेट्ठी।
सेट्ठकज्जकत्ता अवि, माणेज्जा दु याले याले।।1094।।

सद्धर्म की प्रभावना के लिए विद्वान, शासक, प्रशासक, श्रेष्ठी और श्रेष्ठ कार्यकर्ताओं का भी समय-समय पर सम्मान करना चाहिए।

साहम्मिं साहुं पडि, णो करेज्जा विसंवादं कया वि।
सिआवायेण समेज्ज, विवायं कहित्तु कत्तव्वं।।1095।।

साधर्मी और साधुओं के प्रति कभी भी विसंवाद नहीं करना चाहिए। कर्त्तव्यों को कहकर स्याद्वाद के द्वारा विवाद का शमन करना चाहिए।

जावइयो सरलो जण-णिअर-जुज्जणं तावइय-दुद्धरं।
ताण सुमग्ग-दंसणं, तं सया सजगो होज्ज तुमं॥1096॥

लोगों की भीड़ को जोड़ना जितना सरल है, उतना ही मुश्किल उनको समीचीन मार्ग दिखाना है। इसीलिए आपको सदैव सजग रहना चाहिए।

मित्ति-पमोद-कारुण्ण-मज्झत्थ-भावणा वि भावेज्ज सय।
जं इमाहि विणा सवर-धम्म-रक्खा असंभवो इह॥1097॥

मैत्री, प्रमोद, कारुण्य एवं माध्यस्थ भावना भी सदा भानी चाहिए क्योंकि इनके बिना इस लोक में स्व-पर धर्म की रक्षा असंभव है।

धम्म-पेम्माणुरायं, अत्थिमज्जं भावाणुरायं तह।
जाणित्तु जहाजोग्गं, जिणधम्मं रक्खेज्ज हिदाय॥1098॥

धर्मानुराग, प्रेमानुराग, अस्थिमज्जानुराग और भावानुराग को यथायोग्य जानकर सर्वहित के लिए जिनधर्म की रक्षा करनी चाहिए।

मुणिव्वदं जाणित्ता, पढेज्जा आरोग्ग-सत्थं साहू।
मुणिदिक्खं गहेज्ज पुण, तच्चणाणेण फलदि दिक्खा॥1099॥

मुनियों के व्रतों को जानकर साधुओं को आरोग्य शास्त्र पढ़ना चाहिए, अनंतर मुनिदीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अहो! तत्वज्ञान से ही दीक्षा फलित होती है।

एयदा कहीअ गुरू, अच्चंत-सरलो तह सहजो तुमं।
ण अण्णहा मे सद्दा, किण्णु सरलत्तं दुल्लहं दु॥1100॥

एक बार आचार्य गुरुदेव ने मुझसे कहा कि महाराज जी! आप अत्यंत सरल व सहज हैं, मेरे शब्दों को अन्यथा नहीं लेना किन्तु आप जैसी सरलता बहुत दुर्लभ है।

अइसरल-जीवणे बहु-संघस्सो वंचिदुं खमो सरलं।
सरलत्तं णो सरलं, तं हिदयरं दु महामुणिस्स॥1101॥

अति सरल व्यक्ति के जीवन में बहुत संघर्ष होते हैं। सरल व्यक्ति को ठगने में व्यक्ति समर्थ हो जाता है किन्तु ये सरलता भी सरल नहीं है। महामुनिराज के लिए वह हितकर है।

समयाणुसारेण अणुसासणं च चउविहसंघम्मि तुज्झ।
सव्वदा संसणीयं, वर-हेदू सवर-उण्णदीइ॥1102॥

आचार्यश्री ने हमसे एक बार कहा–महाराज जी! समय के अनुसार चतुर्विध संघ पर आपका अनुशासन सदैव प्रशंसनीय है। यह अनुशासन स्व-पर उन्नति का उत्तम हेतु है।

पालेज्ज खमाभावं, धरिय चउविहसंघं णेउण्णेण।
चिंतामुत्तो णिच्चं, होज्ज तव कल्लाणं सिस्सो!॥1103॥

क्षमाभाव को धारण करके निपुणतापूर्वक चतुर्विध संघ का पालन करना चाहिए। अहो शिष्य! आप नित्य चिंतामुक्त रहें और आपका कल्याण हो।

पस्स णिण्णयसायरो, चदुत्थयालम्मि मुणि-पहावेणं।
वणे हिंसग-जंतू वि, णेही अम्हे समायेगो॥1104॥

देखो निर्णयसागर जी, चतुर्थकाल में मुनि के प्रभाव से वन में हिंसक जन्तु भी स्नेही हो जाते थे, (आज इस पंचमकाल में) हमारे द्वारा समाज तो एक हो ही जानी चाहिए॥

समयसाराइ-गंथा, पढिदा मइ अट्ठुत्तर-सयवारं।
तुमं वि पढेज्ज तावदु, जावदु होज्ज हिअयंगमो ण॥1105॥

मैंने (आ. श्री विद्यानंद जी ने) समयसार आदि ग्रन्थों को 108 बार पढ़ा। आपको भी यह ग्रंथ तब तक पढ़ना चाहिए जब तक वह हृदयंगम न हो जाये।

विम्हरेज्ज किदं सुहं, असुहं जणेहि जं को वि ण सक्को।
करिदुं सुहमसुहं सग-कम्मफलं भुंजंति जीवा॥1106॥

अहो! लोगों के द्वारा किए गए शुभ व अशुभ को भूल जाना चाहिए क्योंकि कोई भी किसी का शुभ या अशुभ करने में समर्थ नहीं है। जीव अपने कर्मों का फल स्वयं भोगते हैं।

सव्वजण-हिदकारगं, कज्जं महत्तं दाएज्ज करेज्ज।
सत्थभाव-मुज्झित्ता, भाव-विसुद्धीइ सज्झायं॥1107॥

जो कार्य सभी लोगों के लिए हितकारक है, निजी स्वार्थ भाव का त्याग कर उस कार्य को महत्व देना चाहिए और करना चाहिए। भावों की विशुद्धि के लिए स्वाध्याय करना चाहिए।

अट्ठमंगलदव्वाणि, पाडिहेराणि मंगलकारगाणि।
जावइय-जिणालयो दु, समिद्धो तावइया गिहा वि॥1108॥

अष्ट मंगलद्रव्य, अष्ट प्रातिहार्य ये सभी मंगलकारक माने जाते हैं। जिनालय जितने समृद्ध होते हैं, वहाँ घर भी उतने समृद्ध होते हैं।

समयेगे उवओगो, एगो सिक्खावीअ दिट्ठंतेण।
दायिय छिद्दकागदं, गुरू विज्जाणंदाइरियो॥1109॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी गुरुदेव ने छिद्रयुक्त कागज देकर दृष्टांत के माध्यम से सिखाया कि जीव के एक समय में एक ही उपयोग होता है।

विशेषार्थ–आचार्यश्री विभिन्न दृष्टांतादि के माध्यम से जैनागम के गूढ़ रहस्यों को बड़ी सरलता से समझा देते थे। जीव का एक समय में उपयोग एक ही ओर रहता है। पापड़ खाता हुआ व्यक्ति उसकी आवाज भी सुन रहा है, स्वाद भी ले रहा है आदि ऐसा लगता है जैसे सारे काम एक ही साथ-साथ हो रहे हैं किन्तु ऐसा नहीं है, एक समय में एक ही काम हो सकता है। तब आचार्यश्री ने practical के लिए एक कागज दिया जिसके दोनों छोर पर एक-एक छेद था और दोनों हाथों की तर्जनी

अंगुली में डालने को दिया एवं कहा उसे ऐसे खींचो कि दोनों छेद एक साथ ही फटें। तब दोनों अंगुलियों पर बराबर force लगाने पर भी एक ही छेद कटता है। अत: सिद्ध होता है कि जीव का उपयोग एक समय में एक ही ओर होता है।

विंतर-बाहा-पीडिद-अज्जाए पीडा कोंडकुंडेण।
सिद्धचक्कविहाणेण, संतिमंतजवेणं हरिदा॥1110॥

आचार्यश्री बताते थे कि आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद स्वामी के संघ में एक आर्यिका व्यंतर बाधा से पीड़ित थी। आचार्यश्री ने सिद्धचक्र विधान और शांतिमंत्र की जाप से उनकी पीड़ा दूर की।

चिंतामुत्तीइ धम्म-विड्ढीइ संगीदं महाविज्जा।
पज्जावरण-सोहगं, करावेज्ज मंदिरे झुणिं तं॥1111॥

चिंतामुक्ति और धर्मवृद्धि के लिए संगीत महाविद्या है। यह संगीत पर्यावरण का शोधक भी है अत: मंदिर में संगीत-ध्वनि करनी चाहिए।

जइण-णायो जिणागमसिद्धंतो सव्वलोगोवयारी।
पक्खवायहीणो सच्चट्ठिदो णरत्त-रक्खगो तहा॥1112॥

जैन न्याय व जिनागम सिद्धांत सर्व लोकोपकारी, पक्षपात से रहित, सत्य पर स्थित और मानवता का रक्षक है।

दहविहं सम्मत्तं दु, धम्मज्झाणं तहा समणधम्मो।
दहदिसि-वत्थधारगा, सुपुज्जा भयवदोव्व लोए॥1113॥

सम्यक्त्व दस प्रकार का है, धर्मध्यान एवं श्रमणधर्म के भी दस भेद हैं। इस दस दिशा रूप वस्त्र के धारण करने वाले दिगंबर मुनिराज लोक में भगवान् के समान पूज्य हैं।

परमेट्ठीसुं गुणाणुरायो सगसरूवाणुसंधाणं।
भत्ती भयवद-हेदू, संभवो आसण्णभव्वेहि॥1114॥

परमेष्ठियों में, उनके गुणों में अनुराग भक्ति है अथवा अपने स्वरूप की खोज ही भक्ति है। भक्ति भगवत्ता का हेतु है। यह भक्ति आसन्न भव्यों के द्वारा ही संभव है।

अइक्कमादि-दोसाण, परिहारस्स गहदु पायच्छित्तं।
असमाहि-कारणं चिय, उज्झेज्ज परणिंदं णिच्चं॥1115॥

अतिक्रमादि दोषों के परिहार के लिए नित्य प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिए। जो परनिंदा असमाधि का कारण है उसे छोड़ ही देना चाहिए।

कहं पि विहवं लहित्तु, जो णेव कया वि अहंकार-जुदो।
सो खलु महाणुभावो, कज्ज-साहगो तह विणीदो॥1116॥

जो किसी भी प्रकार के वैभव को प्राप्त कर अहंकार से युक्त नहीं होता वह कार्य का साधक और विनम्र ही निश्चय से महानुभाव है।

चिंतेज्ज मणथिरिमाइ, मग्गणा-गुणट्ठाण-परूवणं दु।
अण्णाणतमं खयिदुं, जिणसुत्तं सय चिंतणीयं॥1117॥

मन की स्थिरता के लिए मार्गणा व गुणस्थान की प्ररूपणा का चिंतन करना चाहिए। अज्ञान रूपी अंधकार के क्षय के लिए जिनसूत्र सदैव चिंतनीय हैं।

समाहाण-दायगा दु, अणेग-गंथीणं तच्च-वत्ता य।
अपुव्वविसोहि-हेदू, णिमित्तं विअप्पसंतीए॥1118॥

आचार्यश्री की तत्त्ववार्ता अनेक ग्रंथियों का समाधान देने वाली होती थी। वह तत्त्वचर्चा विकल्पशांति में निमित्त और अपूर्व विशुद्धि का हेतु रही।

वयणादीदा णियमा, अप्पविसोही चिय णिग्गंथाणं।
सा णो सक्का समये, विस्सस्स कस्सिं वि जीवम्मि॥1119॥

निर्ग्रन्थ गुरुओं की आत्मविशुद्धि नियम से वचनातीत है। वह विशुद्धि किसी भी समय विश्व में किसी भी जीव में शक्य नहीं है।

आइरियस्स दु पसंत-रूवो य पच्चक्खमोक्खमग्गोव्व।
तं कहं ण आगरिसदि, जं गुणं जाणदि कंखदि तं॥1120॥

आचार्यों का प्रशांत रूप प्रत्यक्ष मोक्षमार्ग के समान है। वह रूप भव्यों को कैसे आकर्षित नहीं करता? क्योंकि जो जिस गुण को जानता है उसकी आकांक्षा करता है।

सल्लेहणा

(सल्लेखना)

सगसुद्धप्प-मणुभविदु-मक्खमा जे के वि पमाद-लीणा।
ववहार-रयणत्तयं, लहित्ता णिच्छयं पणमामि॥1121॥

जो कोई भी प्रमाद लीन हैं वे अपनी शुद्धात्मा का अनुभव करने में अक्षम हैं। व्यवहार रत्नत्रय को प्राप्त कर मैं निश्चय रत्नत्रय को नमस्कार करता हूँ।

लहिदुं विमलसमाहिं, समिदीहि सह महव्वदं पालेज्ज।
सगसत्तिं अणुगूहिय, जदी भवतणभोयविरत्तो॥1122॥

संसार-शरीर-भोगों से विरक्त यति निर्मल समाधि प्राप्त करने के लिए अपनी शक्ति को न छिपाकर समितियों के साथ महाव्रतों का पालन करते हैं।

सावया साविया अवि, सल्लेहणा-वदं सया पालंति।
लहिदु-मुत्तमसमाहिं, सगसत्तीए सुभत्तीए॥1123॥

उत्तम समाधि को प्राप्त करने के लिए श्रावक-श्राविका भी अपनी शक्ति अनुसार भक्तिपूर्वक सदैव सल्लेखना व्रत का पालन करते हैं।

सल्लेहणा-यालो य, अट्ठवरिसूण-कोडिवासपुव्वं।
अंतोमुहुत्तं जहण्णेण मज्झम-असंखं भेया॥1124॥

सल्लेखना का उत्कृष्ट काल आठ वर्ष कम कोटि वर्ष पूर्व है। जघन्य काल अंतर्मुहूर्त है और मध्यम असंख्यात भेद हैं।

बारसाणुवेक्खा सय, सल्लेहणा-वद-रुक्खस्स जलं व।
अक्कपयासोव्व तवो, संजमो उव्वराभूमीव॥1125॥

सल्लेखनाव्रत रूपी वृक्ष के लिए द्वादश अनुप्रेक्षा जल के समान, तप सूर्य के प्रकाश के समान और संयम उर्वरा भूमि के समान है।

जह विज्जत्थी विज्जा-अज्झयणं कुणिय वस्सपज्जंतं।
अह दायदे परिक्खं, सम्म-जदणेण सजगत्तेण॥1126॥
तह संजमी साहगा, अक्खं कसायं जिणित्तु कुव्वंति।
साहणं सुजदणेणं, पावेदुं परमसमाहिं दु॥1127॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार विद्यार्थी वर्षपर्यंत यत्नपूर्वक विद्या-अध्ययन करके पुनः यत्नपूर्वक परीक्षा देता है उसी प्रकार संयमी परम समाधि को प्राप्त करने के लिए इंद्रिय व कषायों को जीतकर सम्यक् यत्नपूर्वक साधना करते हैं।

समाहीइ अप्पविहव-पगासणाए सल्लेहणाविही।
हेदू तिविहं कम्मं, खयिदुं पमाणिगा पहाणा॥1128॥

सल्लेखनाविधि समाधि का और आत्म वैभव के प्रकटीकरण का कारण है। तीन प्रकार के कर्म को क्षय करने के लिए यह सल्लेखनाविधि प्रधान व प्रमाणिक है।

कुव्विदुं किसं कायं, पज्जत्तो अप्पयालब्भासा वि।
किण्णु खयिदुं कसायं, आवसियो दु दिग्घयालस्स॥1129॥

काय को कृश करने के लिए अल्पकाल का अभ्यास भी पर्याप्त है किन्तु कषायों को कृश करने वा क्षय करने के लिए दीर्घकालीन अभ्यास की आवश्यकता है।

संजमो पालिदो मुणि-विज्जाणंदेण दीहयालंतं।
णियम-सल्लेहणा पुण, पालिदा जमसल्लेहणा दु॥1130॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने दीर्घकाल तक संयम का पालन किया। नियम-सल्लेखना और पुनः यम-सल्लेखना का पालन किया।

देहो य किसो करिदो, तेणं णियमसल्लेहणा-याले।
ममत्तं खयेदुं रस-अण्णाइ-चागो अवि कमसो॥1131॥

नियम सल्लेखना के समय उन्होंने अपनी देह को कृश किया। ममत्व भाव के क्षय के लिए क्रमशः रस, अन्नादि का त्याग भी किया।

बोहि-समाहि-णिहाणं, पढीअ जोगी पढमाणुजोगं पि॥
पव्वदिणेसुं करीअ, उववास-मूणोदर-मादिं॥1132॥

प्रथमानुयोग बोधि व समाधि का निधान है। वे योगी उस प्रथमानुयोग का भी अध्ययन किया करते थे। पर्व के दिनों में वे उपवास, ऊनोदर आदि किया करते थे।

पारंभे सो करेज्ज, जिणवंदणं झाणं चउसंझासु।
अणंतरं बहुवारं, तच्चचिंतण-मप्पझाणं पि॥1133॥

प्रारंभ में वे चारों संध्याकालों में जिनवंदना व ध्यान किया करते थे। अनंतर वे बहुत बार तत्त्वचिंतन व आत्मध्यान करने लगे।

बारस-घडि-पज्जंतं, समये सेट्ठ-सल्लेहणा-वदस्स।
करीअ सो सज्झाणं, सुहचिंतणं बहुयालंतं॥1134॥

श्रेष्ठ सल्लेखनाव्रत के समय वे बारह घड़ी पर्यंत ध्यान किया करते थे। बहुत समय तक स्वाध्याय व शुभचिंतन किया करते थे।

तच्चचिंतणम्मि रदो, विरत्तो अवि ववहार-किरियादो।
णिच्छयझाणे लीणो, णेव तदा ववहार-धम्मे॥1135॥

वे तत्त्वचिंतन में रत रहते थे। कभी व्यवहार क्रिया से विरक्त निश्चय ध्यान में भी लीन होते थे। जब वे निश्चय में लीन होते थे तब व्यवहार धर्म में रत नहीं होते थे।

पिंडत्थाइ-चउविहं, झाणं ओं आइ-बीयक्खराणं।

जलाइ-पणधारणाण, करीअ सो मज्झरत्तीए॥1136॥

वे मध्यरात्रि में पिंडस्थ आदि (पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत) चार प्रकार का ध्यान, ऊँ आदि बीजाक्षरों का ध्यान और जल आदि पाँच धारणाओं का ध्यान किया करते थे।

पंचपरमेट्ठि-झाणं, सासय-सिद्धखेत्तस्स अवि करीअ।

समवसरणस्स छाया-चित्तस्स पदीगुवासणं च॥1137॥

वे पंचपरमेष्ठी का ध्यान, शाश्वत सिद्धक्षेत्र शिखरजी, समवसरण व छायाचित्र का ध्यान भी किया करते थे। वे प्रतीकोपासना भी किया करते थे।

पुव्वणुपुव्विं पच्छाणुपुव्विं खलु जहातहाणुपुव्विं।

बइखरि-आइ-चउ-विविह-जावं वि करेज्ज पणिहीए॥1138॥

वे पूर्वानुपूर्वी, पश्चातानुपूर्वी और याथातथ्यानुपूर्वी जाप किया करते थे। एकाग्रतापूर्वक बैखरी आदि चार-विविध प्रकार की जाप एकाग्रतापूर्वक किया करते थे।

अणुवेक्खा-तव-पदत्थ-णवदेव-णामेणं करीअ जवं।

सोडसट्ठ-दल-पउमं, कमसो धरिय णाहि-हिअयेसु॥1139॥

उण्हे वसदिगा-उवरि, कयाइ पाविडयाले रुक्खतले।

उज्जाणादिम्मि दु सो, सीदे करीअ सुहज्झाणं दु॥1140॥

वे अनुप्रेक्षा, तप, पदार्थ, नवदेवादि नाम से जाप किया करते थे। वे नाभि पर षोडशदल कमल व हृदय पर अष्टदल कमल धारण कर ध्यान किया करते थे। वे ऊष्णकाल में वसतिका के ऊपर, वर्षाकाल में कदाचित् वृक्ष के नीचे और शीतकाल में उद्यान में शुभ ध्यान किया करते थे।

देहादु णिप्पज्जीअ, सेदो कयाइ अग्गिधारणाए दु।
सो सुद्धप्पझाणेण, लहीअ सया परमाणंदं॥1141॥

अग्निधारणा रूप ध्यान से देह से कदाचित् पसीना भी निष्पन्न होता था। वे शुद्धात्म ध्यान से सदैव परमानंद प्राप्त करते थे।

मोण-साहणं जिणगुण-चिंतणं सुद्धप्पगुणचिंतणं च।
ण रज्जिय पज्जायेसु, सिद्धोव्व स-चिंतणं करीअ॥1142॥

वे मौन साधना, जिनेन्द्रदेव के गुणों का चिंतन और शुद्ध आत्मा के गुणों का चिंतन किया करते थे। वे पर्यायों में रंजायमान न होकर सिद्धों के समान अपनी आत्मा का चिंतन किया करते थे।

अरिहो वा सिद्धो हं, णिच्चणिरंजणो सुद्धगुणजुत्तो।
णो हं तिविहं कम्मं, सुद्धगुणजुद-असरीरी हं॥1143॥

वे चिंतन करते थे कि मैं अरिहंत अथवा सिद्धरूप हूँ। मैं नित्य हूँ, निरंजन हूँ, शुद्ध गुणों से युक्त हूँ। मैं तीन प्रकार के कर्म—भाव कर्म, द्रव्यकर्म व नोकर्म भी नहीं हूँ।

मोदगं खिल्लणं जह, लहिदुं तिव्वकंखा-जुदो बालो।
तह सिरी-आइरियो दु, लहिदुं परमसमाहिभावं॥1144॥

जिस प्रकार बालक लड्डू व खिलौने प्राप्त करने के लिए तीव्र आकांक्षा से युक्त होता है उसी प्रकार आचार्यश्री परम समाधिभाव को प्रकार करने में तीव्र आकांक्षा से युक्त थे।

णिरीह-वित्तीइ समिय, कोहाइ-सव्व-कसायं च जदिणा।
बीयं व खंति-भावो, पाविदो सगसिद्धिं लहिदुं॥1145॥

यतिराज ने निरीहवृत्ति से क्रोधादि सर्व कषायों का शमन कर निजात्म सिद्धि को प्राप्त करने के लिए बीज के समान क्षांति भाव को प्राप्त किया।

संकुचिय गमणागमण-मप्पसुद्धसहावम्मि रमंतस्स।
लहिदुं सुद्धसहावं, मग्गेगो समत्त-भावो दु॥1146॥

शुद्ध स्वभाव को प्राप्त करने के लिए गमन-आगमन को संकुचित कर आत्मा के शुद्ध स्वभाव में रमण करते हुए मुनिराज के लिए समत्व भाव ही एक मार्ग है।

बहुजणसंपक्कं सो, हासिय चिंतीअ स-सुद्धसहावं।
लहिदुं स-सुद्धभावं, पहाण-हेदू विआणेज्जा॥1147॥

बहुत जनों के संपर्क को कम कर वे निज शुद्ध स्वभाव का चिंतन किया करते थे। अपने शुद्धभावों की प्राप्ति के लिए यह प्रधान हेतु जानना चाहिए।

झाण-झेय-झादु-आइ-विअप्प-मुज्झिय णिव्विअप्पझाणं।
लहिदुं सगप्पे थिरं, होच्च कुणदि णिज्जरं विउलं॥1148॥

निर्विकल्प ध्यान को प्राप्त करने के लिए ध्यान, ध्येय, ध्याता आदि के विकल्प का त्यागकर अपनी आत्मा में स्थिर होकर योगी विपुल कर्मों की निर्जरा करते हैं।

सुद्धप्प-णिस्सिद-सहज-णंदं अणुभवदि अप्पमत्तो जं।
सो असंभवो महिंद-णरिंद-खगिंदिंदादीणं॥1149॥

अहो! शुद्धात्मा से निःसृत जिस सहज आनंद का अनुभव अप्रमत्त मुनिराज करते हैं वह महेंद्र, नरेंद्र व खगेन्द्र आदि के भी असंभव है।

सुद्धप्पज्झाण-रदा, अप्प-मणुभवंति भासंति जे ते।
भवो इमो हु दुक्खदा, खारसलिलपूरिद-सरिदाव॥1150॥

जो शुद्धात्मध्यान में रत श्रमण आत्मा का अनुभव करते हैं उन्हें यह संसार खारे जल से भरी नदी के समान दुःखदायक प्रतीत होता है।

संपुण्ण-तव-सारो दु, वेरग्गजुद-संजमो णादव्वो।
सल्लेहणा जाणेज्ज, पाणोव्व सय उहयकिरियाण॥1151॥

संपूर्ण तप का सार वैराग्ययुक्त संयम जानना चाहिए। व्यवहार व निश्चय दोनों क्रियाओं के लिए सल्लेखना प्राण के समान है।

भारदिं च पहुच्चीअ, हं गुरुचरणेसुं याले याले।
विणयेण विसुद्धीए, अप्पसंबोहणं दाएज्ज॥1152॥

हम समय-समय पर कुंदकुंदभारती में आचार्य गुरुवर के चरणों में पहुँचते रहे एवं विनय से विशुद्धिपूर्वक आत्मसंबोधन भी देते रहे।

भद्दपद-पुण्णिमाए, लद्धो णिय-गुरु-समायारो मए।
सिमरदि गुरू आवेज्ज, किं वसुणंदी महारायो॥1153॥
गुरुवयण-मिदं सुणिय, असंभवो थंभणं सिस्सेगस्स।
पारणुवरंत-मज्झंदिणे बारसवादणम्मि तं॥1154॥
णोयडा-मंदिरादो, पहुच्चीअ हु आइरिय-सेवाए।
कुंदकुंदभारदिं च, चलिदूणं सत्तरसमीलं॥1155॥

सन् 2019 में भाद्रपद पूर्णिमा के दिन मुझे अपने गुरु का समाचार प्राप्त हुआ। (राजू भैया का फोन ब्र. प्रभाशीष भैया के पास आया और उन्होंने

कहा कि) आचार्यश्री महाराज जी को याद कर रहे हैं और बार-बार पूछ रहे हैं कि वसुनंदी महाराज आ गए क्या? गुरु के इन वचनों को सुनकर एक शिष्य के लिए अब रुकना असंभव था इसीलिए पारणा के बाद दोपहर 12 बजे ही हम आचार्यश्री की सेवा के लिए नोएडा जिनमंदिर से 17 मील चलकर कुंदकुंद भारती पहुँचे।

आउअ-णाणं किच्चा, गहचाराइ-जोदिस-णिमित्तेणं।
संबोहिदा गुरू मइ, सल्लेहणाए थिरिमाए॥1156॥
जहवि पुण्णजागरिओ, स-परिणामं संभालिदुं करिदुं।
उत्तम-सल्लेहणं दु, तहवि स-कत्तव्वपालणस्स॥1157॥ (जुम्मं)

ज्योतिष ग्रहों के संचारादि के निमित्त से गुरु की आयु का परिज्ञान कर हमने सल्लेखना में स्थिरता हेतु गुरुवर को संबोधित किया। यद्यपि गुरुदेव अपने परिणामों को संभालने और उत्तम सल्लेखना करने के लिए पूर्ण जागरुक थे तथापि अपने कर्त्तव्यपालन के लिए संबोधन दिया।

अट्ठारस-सिदंबरं, सूरि-संतिसिंधुस्स वरसमाहिं।
सुमरित्तु होज्ज भावो, दुल्लह-जमसल्लेहणाए॥1158॥

18 सितंबर को चा.च. आचार्य श्री शांतिसागरजी की पुण्य तिथि पर आचार्यश्री की श्रेष्ठ समाधि का स्मरण कर उनके दुर्लभ यम-सल्लेखना के भाव हुए।

देहं सिहिलं पस्सिय, आउ-अवसाणं णियडं जाणित्तु।
सव्वविहावं मुंचिय, परिलीअ णिय-अप्पे जोगी॥1159॥

देह को शिथिल देखकर एवं आयु का अवसान निकट जानकर वे योगी सर्व विभाव को त्यागकर निजात्मा में लीन हुए।

सम्मत्ते संजमे य, पमाद-कसाय-अण्णाणादु जहवि।

जणिद-दोसाण गहंति, पायच्छित्तं सग-गुरुणा दु॥1160॥

तहवि समग्गजीवणे, दोसाण साहगो अंतसमयम्मि।

णिवत्तीए कुव्वंति, अउत्तमत्थिग-पडिक्कमणं॥1161॥ (जुम्मं)

यद्यपि साधक समय-समय पर प्रमाद, कषाय व अज्ञान से सम्यक्त्व व संयम में जनित दोषों के लिए अपने गुरु से प्रायश्चित्त ग्रहण करते हैं। तथापि अपने समग्र जीवन में हुए दोषों की निवृत्ति के लिए वे अंत समय में औत्तमार्थिक प्रतिक्रमण करते हैं।

उणवीस-सिदंबरम्मि, करीअ उत्तमट्ठिग-पडिक्कमणं।

बंभमुहुत्ते खमेज्ज, सव्वजीवाण विसुद्धीए॥1162॥

19 सितंबर को ब्रह्ममुहूर्त में आचार्य गुरुवर ने औत्तमार्थिक प्रतिक्रमण किया एवं विशुद्धिपूर्वक सभी जीवों को क्षमा किया।

जमसल्लेहणावयं, धरिदं तए सुणिम्मलचित्तेणं।

पुण्णजीवणयालस्स, उस्सिक्किदो सव्वाहारो॥1163॥

तत्पश्चात् आचार्यश्री ने श्रेष्ठ निर्मल चित्त से यम सल्लेखना व्रत को धारण किया। एवं जीवनभर के लिए सभी प्रकार के आहार का त्याग कर दिया।

सिद्धाइ-भत्तिं कडुअ, करीअ जिणिंद-वंदणं भावेहि।

माणत्थंभ-दंसणं, सूरी सगप्प-विसुद्धीए॥1164॥

पुनः आचार्यश्री ने सिद्धादि भक्ति करके अपनी आत्मविशुद्धि के लिए भावपूर्वक जिनेन्द्रप्रभु की वंदना की और मानस्तंभ के दर्शन किए।

सम्माइट्ठी सक्को, सल्लेहणाए कुव्विदुं मरणं।
परमसमाहिभावो दु, आहि-वाहि-उवाहि-रहिदस्स॥1165॥

सल्लेखनापूर्वक मरण करने के लिए सम्यग्दृष्टि शक्य है। जो आधि, व्याधि और उपाधि से रहित है उसके ही परमसमाधिभाव होता है।

गुणुत्तर-सेढीइ सग-विसुद्धिं वड्ढेज्ज उज्झिय धीए।
सयल-सग-पदोवाही, जिणस्स अप्पसक्खीए तह॥1166॥

आचार्यश्री ने श्री जिनदेव की आत्मसाक्षी में बुद्धिपूर्वक अपने पद व उपाधियों का त्यागकर गुणोत्तर श्रेणी से अपनी विशुद्धि बढ़ायी।

दायिदा तेण आसी, सिस्स-भत्तादीण सव्वसम्मुहे।
अइ-णिरीहभावेणं, उज्झेज्जा सगपद-मुवाहिं॥1167॥

उन्होंने अपने शिष्यों और भक्त आदिकों को आशीर्वाद दिया। पुनः निरीहभाव से सार्वजनिक रूप से सभी के सामने अपने पद व उपाधियों का भी त्याग कर दिया।

चिंतीअ खवगरायो, सगमूलोत्तर-गुणा ताण फलाणि।
सुप्पसंतभावेणं, ववहार-णिच्छय-धम्मं अवि॥1168॥

क्षपकराज ने अपने मूलगुण, उत्तरगुण और उनके फलों का चिंतन किया। उन्होंने सुप्रशांत भाव से व्यवहार व निश्चयधर्म का भी चिंतन किया।

दिवसे संझा-याले, झाणं कुव्वीअ परमसिद्धाणं।
णिरंतरं हि जवेज्जा, अरिहं अरिहं विसुद्धीए॥1169॥

वे दिन में, संध्याकाल में परमसिद्धों का ध्यान किया करते थे। उन्होंने निरंतर ही विशुद्धिपूर्वक अर्हं-अर्हं का जाप किया।

संझासु संतमणेण, सुणीअ पडिक्कमणं मुणिरायो दु।
दूरदंसणेण तदा, कुव्वीअ दंसणं सुभत्ता॥1170॥

मुनिराज ने संध्याकालों में शांतमन से प्रतिक्रमण किया। तब भक्तों ने दूरदर्शन से उनके दर्शन किए।

वीयराय-देवस्स दु, गुणा जम-सल्लेहणा-धारगेण।
चिंतिदा सुभावेहिं, मिच्चुमग्गे पवट्टंतेण॥1171॥

यम सल्लेखना के धारक, मृत्युमार्ग पर प्रवर्तन करते हुए आचार्यश्री ने शुभ भावों से श्री वीतरागी देव के गुणों का चिंतन किया।

मे अप्पा सिद्धोव्व हि, पुण पुण चिंतंतो अप्पलीणो दु।
अप्पलीणत्तं विणा, तिव्व-गदीए णिज्जरा णो॥1172॥

मेरी आत्मा सिद्धों के समान है। पुनः पुनः ऐसा चिंतन करते हुए वे आत्मलीन हुए। उचित ही है आत्मलीनता के बिना तीव्र गति से कर्मों की निर्जरा नहीं होती।।

सययं जवं कुणंतो, परमाणंदं चिय अणुभवीअ सो।
अइविसुद्धीए तहा, पढम-दिवसो गदो णंदेण॥1173॥

निरंतर जप करते हुए वे परमानंद का अनुभव कर रहे थे। अति- विशुद्धि और आनंद के साथ पहला दिन व्यतीत हुआ।

धम्मज्झाणेण णिसा, गदा चिय वीस-सिदंबरम्मि पुणो।
संबोहिदो कत्तव्व-पालणस्स मए विणयेणं॥1174॥

पूर्ण रात्रि भी धर्मध्यान के साथ व्यतीत हुई। 20 सितंबर को पुनः कर्त्तव्यपालन के लिए हमने विनयपूर्वक संबोधन दिया।

तुमं दीहयालंतं, णिद्दोस-संजम-साहणं करीअ।
होज्ज सय अप्पमादी, अधुणा दु परिक्खा-यालम्मि॥1175॥

आपने दीर्घकाल तक संयम की निर्दोष साधना की। आप सदैव अप्रमादी रहे और आज इस परीक्षाकाल में भी अप्रमादी रह रहे हैं।

जिण्णकुडीव सरीरं, वा इंदधणूव विणस्सदि णियमा।
णेव कया वि चिंतेज्ज, देह-सुहदुहाइं अप्पस्स॥1176॥

जीर्णकुटी और इंद्रधनुष के समान यह शरीर नियम से नष्ट हो जाता है। शरीर के सुख-दुःख को कभी आत्मा का सुख-दुःख नहीं सोचना चाहिए।

तुमं अप्प-परिणामं, समत्थो करिदुं णिम्मलं भयवो।
तुज्झ अप्पा सिद्धोव्व, किं ण जाणेसि महासत्तिं॥1177॥

हे भगवन्! आप आत्म-परिणामों को निर्मल करने में समर्थ हैं। आपकी आत्मा सिद्धों के समान है। क्या आप आत्मा की महाशक्ति को नहीं जानते? अर्थात् आत्मा महाशक्ति से युक्त है।

बावण्ण-पिच्छधारग-णिमित्तरूवा समाहिसाहणाइ।
वरं भावविसुद्धीइ, खमा तुज्झ उवादाणसत्ती॥1178॥

आपकी समाधि की साधना में 52 पिच्छीधारक साधु निमित्त रूप हैं। किन्तु आपकी भावों की विशुद्धि में आपकी उपादान शक्ति समर्थ है।

छुहाइ-परीसहा तव, णेव समत्था विणासिदुं अप्पं।
सरीरं ते खयंते, ण सरीरं तुज्झ सहावादु॥1179॥

क्षुधा आदि परीषह आपकी आत्मा का विनाश करने में समर्थ नहीं हैं। वे शरीर को ही नष्ट कर सकते हैं। स्वभाव से शरीर आपका नहीं है।

भो खवगरायो! तुमं, खमाइधम्म-अमियरसं पीएज्ज।
तेहि विणा णो समदे, अप्प-पिवासा आउलत्तं॥1180॥

हे क्षपकराज! आप क्षमादि धर्म रूप अमृत रस का पान करते हैं। उन धर्मों के बिना आत्मा की पिपासा व आकुलता शान्त नहीं होती।

अणुवेक्खा-चिंतणं दु, वरुव्वरग-मप्पविसुद्धिरुक्खस्स।
पुरिसट्ठ-मक्ककरोव्व, तच्चचिंतणं च सिंचणं व॥1181॥

आत्मविशुद्धि रूपी वृक्ष के लिए अनुप्रेक्षा का चिंतन श्रेष्ठ खाद के समान है, पुरुषार्थ सूर्य की किरणों के समान है और तत्त्वचिंतन जलसिंचन के समान है।

देस-विदेसेसु तव, बहु-भत्ता दु णवरि णेव समत्था।
दायिदुं अप्पसंतिं, अहो भयवदो खवगरायो॥1182॥

अहो क्षपकराज भगवन्! देश-विदेश में आपके बहुत भक्त हैं किन्तु वे आपको आत्मशान्ति देने में समर्थ नहीं हैं।

जिणभत्ती गुरुसेवा, णिमित्तं जिणवयण-मप्पसुद्धीइ।
दिग्घयाल-अब्भासी, संभालिदु-मप्पपरिणामं॥1183॥

जिनभक्ति, गुरुसेवा व जिनवचन आत्मशुद्धि में निमित्त हैं। आत्म-परिणामों को संभालने में आप दीर्घकाल से अभ्यासी हैं।

कसाय-पमाद-रहिदो, तप्परो पालिदुं मूलाइ-गुणा।
तवं तुमं वड्ढेज्जा, कंखं रोहंतो बुद्धीइ॥1184॥

हे स्वामी! कषाय व प्रमाद से रहित आप मूलगुण व उत्तरगुणों का पालन करने में तत्पर हैं। बुद्धिपूर्वक आकांक्षाओं का निरोध करते हुए आपने तप को वृद्धिंगत किया है।

पसम-संवेग-अत्थिग-अणुकंवा-भावेहिं सम्मत्तं।
विमलं करंतो विसोहीइ मित्ति-आदिं चिंतीअ॥1185॥

आपने प्रशम, संवेग, आस्तिक्य और अनुकंपा के भावों से सम्यक्त्व को निर्मल करते हुए विशुद्धिपूर्वक मैत्री आदि भावनाओं का चिंतन किया है।

उक्किट्ठ-सल्लेहणं, करेदुं धिदि-सुद-सत्त-तव-भावा।
एगत्तं च भावीअ, उज्झिय आसुरि-आइ-भावा॥1186॥

आपने उत्कृष्ट सल्लेखना करने के लिए आसुरी आदि भावों का त्यागकर धृति, श्रुत, सत्व, तप व एकत्व भावना को भाया है।

तव दंसणस्स बहुजण-णिअरो अत्थ किण्णु सगप्पगेहे।
तुमं णिवससि तं महा-सुभडो दु वियप्पणिरोहस्स॥1187॥

यहाँ आपके दर्शन के लिए बहुत लोगों का समूह है किन्तु आप अपने आत्मारूपी भवन में निवास कर रहे हो अतः विकल्पों के निरोध के लिए आप महायोद्धा हैं।

तव आणणस्स आभा, किलेसाइ-हारगा अइविसुद्धा।
देहस्स अमलकंती, सुविसुद्ध-परिणाम-पदीगा॥1188॥

आपके मुख की आभा अति विशुद्ध और सभी के क्लेशादि का हरण करने वाली है। आपकी देह की निर्मल कांति आपके विशुद्ध परिणामों का प्रतीक है।

भो खवगराओ तुमं, अप्पलीणो तुरिययाल-जोगीव।
जोगसाहणाए सग-सुद्धप्परदो अघं खयिदुं॥1189॥

हे क्षपकराज! आप चतुर्थकाल के योगी के समान आत्मलीन हैं। आप पाप-क्षय के लिए योग साधना के माध्यम से अपनी शुद्धात्मा में रत हैं।

तव पुण्णेण सहस्सा-जणा होंता परमाणुसासणं वि।
जं तव सल्लेहणा दु, पुण्ण-कारणं बहु-जणाणं॥1190॥

आपके पुण्य से हजारों लोगों के होते हुए भी यहाँ परम अनुशासन है। क्योंकि आपकी सल्लेखना बहुत लोगों के लिए पुण्य का कारण है।

समाहि-आयंसविही, पावणिज्जरा-कारणं भव्वाण।
असुहसंवरस्स सुहासवस्स अइपुण्ण-हेदू य॥1191॥

समाधि की आदर्श विधि भव्यों के लिए पापनिर्जरा का कारण है, अशुभ के संवर, शुभ आस्रव और अति पुण्य का कारण है।

तव समाहिं पस्संति, दूरदंसण-पसारेणं कोडी।
जणा अज्जिदुं पुण्णं, सग-सुहसमाहि-भावणाए॥1192॥

पुण्यार्जन के निमित्त एवं अपनी शुभ समाधि की भावना से करोड़ों लोग दूरदर्शन प्रसारण से आपकी समाधि को देख रहे हैं।

आगच्छेज्ज बहु-विदू, तव चरण-वंदणाए भो सामी!।
णो उग्घाडेज्ज तो वि, सगणेत्तं णियभाव-लीणो॥1193॥

हे स्वामी! आपकी चरणवंदना के लिए बहुत विद्वान् यहाँ आए हैं तो भी निजात्मभाव में लीन आप अपनी आँखों को नहीं खोलते।

सुविसुद्धि-बोहि-समाहि-मग्ग-पाथेयं तुमं जाणेज्जा।
पसंतभाव-मोणेहि, करीअ सिद्धट्ठगुण-झाणं॥1194॥

अहो भगवन्! आप विशुद्धि, बोधि व समाधि के मार्ग को जानते हैं इसलिए आपने सदैव प्रशांतभाव व मौन से सिद्धों के आठ गुणों का ध्यान किया है।

समयसार-अट्ठपाहुडाइ-गंथाण सुणिय बहुगाहाउ।
सग-चित्तं सुविसुद्धं, करीअ भयवो खवगरायो॥1195॥

समयसार, अष्टपाहुड़ आदि ग्रंथों की बहुत सी गाथाओं को सुनकर क्षपकराज भगवन् आचार्यश्री ने अपने चित्त को विशुद्ध किया।

बहु-अज्झप्प-गीदं दु, भावणं थुदि-मणुवेक्खं सुणित्ता।
सगपरिणामं करीअ, अइणिम्मल-मुज्जलं धवलं॥1196॥

बहुत से आध्यात्मिक भजन, भावना, स्तुति व अनुप्रेक्षा को सुनकर उन्होंने अपने परिणाम अति निर्मल, उज्ज्वल व धवल किए।

इगवीस-सिदंबरम्मि, उणवीसुत्तर-बेसहस्स-वस्से।
रोहिणी-णक्खत्तम्मि, चंदप्पह-वासुपुज्ज-गुणा॥1197॥
चिंतीअ विसुद्धीए, तं वंदेज्जा पुण पुण भावेहिं।
रोहिणीवद-मप्पगुण-विड्ढीए हेदू वत्तस्स॥1198॥ (जुम्मं)

21 सितंबर 2019 के दिन रोहिणी नक्षत्र में उन्होंने विशुद्धिपूर्वक श्री चंद्रप्रभ व श्री वासुपूज्य भगवान् के गुणों का चिंतन किया। पुनः पुनः भावों से उनकी वंदना की। रोहिणी व्रत आरोग्य और आत्मगुण की वृद्धि का हेतु है।

तस्स विमल-परिणामं समत्तभावं पस्सित्तु गुंजीअ।
जयकारं खवगराय-सिरोमणि-णामेण पसिद्धो॥1199॥

उनके विमल परिणाम और समत्वभाव को देखकर सारा वातावरण जयकारों से गुंजायमान हुआ एवं वे क्षपकराज शिरोमणि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

तस्स णिराउल-वदणं, समत्तं पस्सित्तु कहिदं मए दु।
सामी पुण्ण-पेरगो, संपेरगो विस्सधम्मस्स॥1200॥

उनके निराकुल चेहरे और समत्व परिणामों को देखकर हमने कहा हे स्वामी! आप भव्यों के लिए पुण्य के प्रेरक व विश्व धर्म संप्रेरक हैं।

तव संणासि-जीवणं, कल्लाण-पेरगं अणुकरणीयं।
आयंस-रूवं सया, अणुव्वदि-महव्वदीणं तह॥1201॥

आपका संन्यासी जीवन अनुकरण के योग्य और कल्याण की प्रेरणा देने वाला है और अणुव्रती व महाव्रतियों के लिए सदैव आदर्श रूप है।

भव्वा कल्लाणत्थं, सक्का बंधिदु तित्थयर-पइडिं।
भव्वा सोलस-कारण-भावणा भाविदुं समत्था॥1202॥

स्वकल्याण के लिए भव्यजीव ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने में समर्थ हैं। भव्य जीव ही सोलहकारण भावनाओं को भाने में समर्थ हैं।

तुमं दंसणविसुद्धिं, भावणं दु सम्मत्त-विसुद्धीए।
भावीअ दु तस्स दोस-चागस्स वर-पुरिसट्ठ-रदो॥1203॥

अहो! उत्तम मोक्ष पुरुषार्थ में रत गुरुवर! आपने सम्यक्त्व की विशुद्धि के लिए तथा उसके दोषों के त्याग के लिए दर्शनविशुद्धि भावना भायी।

तव चित्तम्मि उक्किट्ठ-दया-परिणामा सव्वजीवा पडि।
करेमु कहं हं सव्व-जीव-कल्लाणं भावो तव॥1204॥

आपके चित्त में सभी जीवों के प्रति उत्कृष्ट दया के परिणाम हैं। ''मैं सर्व जीवों का कल्याण कैसे करूँ'' ये भाव सदैव आपके रहे हैं।

सम्मत्तणाणचरियं, तवं इमाणं संधारगा पडि वि।
उक्किट्ठ-विणय-भावो, तव मणे उवयार-विणयो वि॥1205॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र व सम्यक् तप एवं इनके धारकों के प्रति भी आपके सदैव उत्कृष्ट विनयभाव रहे हैं। आपके चित्त में उपचारविनय भी दृष्टिगोचर होती है।

विणयसंपण्णभावं, भावीअ णिच्चं तुमं विसुद्धीइ।।

विणयभावो खलु मुत्ति-सुंदरीए परममित्तं व।।1206।।

आपने विशुद्धिपूर्वक नित्य ही विनयसंपन्नता भावना भायी। विनयभाव मुक्ति रूपी सुंदरी के परममित्र के समान है।

जं कं वि वदं गहिदं, विसुद्धीइ तए बालयालादो।

सया जदणं करेज्जा, पालिदुं णिद्दोस-वदं तं।।1207।।

आपने बाल्यकाल से जो कोई भी व्रत विशुद्धिपूर्वक ग्रहण किए उन व्रतों का निर्दोष पालन करने के लिए आपने सदैव यत्न किया।

मण्णेज्ज अदियारं पि, अणायार-कारणं तुमं णिच्चं।

अदियारं णो उज्झदि, जदि होज्ज दोससंजुदो तो।।1208।।

आप अतिचारों को भी नित्य ही अनाचार का कारण मानते हैं। यदि जीव अतिचार को नहीं छोड़ता तो वह दोषयुक्त हो जाता है।

चित्तं बंधिदुं महाथंभोव्व सोहिदुं जलं व णाणं।

बीअं व चिय रुक्खस्स, णंदस्स पहाणहेदू तं।।1209।।

सम्यग्ज्ञान चित्त को बांधने के लिए महास्तंभ के समान है, चित्त के शोधन के लिए जल के समान है एवं जैसे वृक्ष के लिए बीज है उसी प्रकार यह सम्यग्ज्ञान ही आनंद का प्रधान हेतु है।

तुमं चिंतसि उवदिससि, पढसि सुणसि सुमरसि जिणवयणाइं।

णाणुवओगो सययं, तव अभिक्खण-णाणुवजोगी।।1210।।

आप जिनवचनों का चिंतन करते हो, उपदेश देते हो, पढ़ते हो, उन्हें ही सुनते हो व याद करते हो। निरंतर आपका ज्ञानमय उपयोग रहता है, अतः आप अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी हैं।

धम्मे धम्मफलम्मि य, हरिसो भावो हवेदि संवेगो।
परमवेरग्ग-जुत्तो, संवेगी तुमं सव्वदा हि॥1211॥

धर्म व धर्म के फल में हर्षभाव संवेग होता है। आप सदैव ही परम वैराग्य से युक्त संवेगी हैं।

खणलवपडिबोहणत्त-मणिच्चभावं दु भावंतो तुमं।
भावीअ तणुणासस्स, पुव्वे अप्पहिदं पययेज्ज॥1212॥

आपने अनित्य भावना को भाते हुए क्षणलवप्रतिबोधनता भावना को भाया है। अहो! धन्य हैं आप जो इस देह नाश के पूर्व ही आपने आत्महित का प्रयत्न किया है।

दाएज्ज संबोहणं पडि-खणे सगप्पस्स सुहभावाण।
उज्झेज्ज असुहभावं, ठविदुं वरसुहे सगचित्तं॥1213॥

आपने शुभ भावों के लिए अपनी आत्मा को प्रतिक्षण संबोधन दिया है। उत्तम सुख में चित्त को स्थापित करने के लिए सभी अशुभ भावों का परित्याग किया है।

सगसत्ति-अणुसारेण, मुंचेज्ज परत्था परभावणा वि।
सगप्पविसुद्धीए दु, तुमं चाग-भावणा-जुत्तो॥1214॥

स्वात्मा की विशुद्धि के लिए आपने अपनी शक्ति के अनुसार पर पदार्थों व परभावों का भी त्याग किया है। हे गुरुवर! आप त्याग भावना से युक्त हैं।

संसारवड्ढग-सव्व-कामणाणि णिरुंभिय सग-सत्तीइ।
सुतवभावं भावीअ, घादि-मघादि-कम्मं खयिदुं॥1215॥

घातिया व अघातिया कर्मों के क्षय के लिए आपने संसार की वृद्धि करने वाली सभी कामनाओं, इच्छाओं का शक्ति के अनुसार निरोध कर तप भावना भायी।

जीवविवागिं पोग्गल-विवागिं दु खेत्तं भवविवागिं च।
चउविहकम्मं खयिदुं, तवभावणं सया भावीअ॥1216॥

आपने जीवविपाकी, पुद्‌गलविपाकी, क्षेत्रविपाकी और भवविपाकी इन चार प्रकार के कर्मों के क्षय के लिए सदैव तपभावना भायी।

णिच्चं तुमं सहायो, सव्व-साहगाण सल्लेहणाए।
बहु-आइरियुवज्झाय-साहूण सिस्साण वि सामी॥1217॥

हे स्वामी! आप सदैव ही सभी साधकों की, बहुत से आचार्य, उपाध्याय व साधुओं की और शिष्यों की सल्लेखना में भी सहायक रहे हैं।

णिद्दिट्ठा वि तए बहु-साहूण-मज्जाणं समाहि-विही।
संबोहणं दायित्तु, तुमं दु णिरियावगाइरियो ॥1218॥

आपने बहुत से साधु व आर्यिकाओं को समाधि-विधि का निर्देश दिया। क्षपकों को संबोधन देकर आप निर्यापकाचार्य भी हुए हैं।

संजमं च पालंतो, संजद-जीवणे आगदं विग्घं।
विणस्सीअ तुमं हंदि, णाणाइबलेण वच्छलेण॥1219॥

आपने स्वयं संयम का पालन करते हुए संयमीजनों के जीवन में आये विघ्नों को वात्सल्य ज्ञानादि के बल से नष्ट किया है।

कयावि सग-देहेणं, साहूणं करीअ वेज्जावच्चं।
सुद्धोसहि-आदीहिं, बहुविहं अहो खवगरायो॥1220॥

अहो क्षपकराज! आपने कभी अपने शरीर से व कभी शुद्ध औषधि आदि के द्वारा साधुओं की बहुत प्रकार से वैय्यावृत्ति भी की है।

वेज्जावच्चं करिदुं, सया तप्परो सुद्धभावणाए।
सययं भावीअ तुमं, होज्ज सुद्ध-साहणा वदीण॥1221॥

अहो! आप सदैव शुद्ध भावना से वैय्यावृत्ति करने में तत्पर रहे हैं। आपने निरंतर भावना की कि सभी संयमी व्रतियों की साधना विशुद्ध होवे।

जिणदेवा तित्थयरा, पडि तुज्झं चित्तम्मि पराभत्ती।
गाएज्जा पाय तुमं, जिणथोत्तं अज्झप्पगीदं॥1222॥

तीर्थंकर जिनेन्द्रदेव के प्रति आपके चित्त में उत्कृष्ट भक्ति विद्यमान है। आप प्रायः जिनस्तोत्र, आध्यात्मिक भजन गाया करते थे।

जिणवरगुणणुचिंतणं, पणकल्लाण-महुच्छव-चिंतणं च।
अणेगवारं जोगेहि, कुव्वीअ परमविसुद्धीए॥1223॥

आपने जिनेंद्र भगवान् के गुणों का चिंतवन और पंच-कल्याणक महोत्सव का चिंतन अनेक बार तीनों योगों से परम विशुद्धिपूर्वक किया है।

पणायारं पालिदुं, जे के वि रदा भयवद-आइरिया।
ताण वंदणं करीअ, सगायार-सुद्धीए तुमं॥1224॥

जो कोई भी आचार्य भगवन् पंचाचार के पालन में रत हैं आपने अपने आचार की शुद्धि के लिए उनकी वंदना की है।

आइरियाणं भत्तिं, कुव्वीअ सूरि-भत्ति-भावणाए।
ताण गुणाणं पि तुमं, आयार-देवो आइरियो॥1225॥

आचार्य भगवन् आचरण के देवता हैं। आचार्यभक्ति की भावना से आपने आचार्यों की एवं उनके गुणों की भक्ति की है।

एयारसंग-चउदस-पुव्व-अज्झयण-रद-उवज्झायाण।
भत्तिं सुहभावेहिं, करीअ परमदियंबराणं॥1226॥

उपाध्याय ग्यारह अंग व चौदह पूर्व के अध्ययन में रत रहते हैं। आपने शुभभावों से परम दिगंबर उपाध्यायों की भक्ति की है।

पाढगो सुददेवदा, सुदणाण-खओवसम-विड्ढीए दु।
सासय-णाण-पत्तीइ, णिमित्तं उवज्झाय-भत्ती।।1227।।

उपाध्याय श्रुतदेवता हैं। उपाध्याय की भक्ति श्रुतज्ञान के क्षयोपशम की वृद्धि और शाश्वत ज्ञान की प्राप्ति में निमित्त है।

उवएसो जिणवयणं, साहू अवि पवयण-सद्देण जाण।
कुव्वीअ साहुभत्तिं, णियसव्वकम्मक्खयस्स खलु।।1228।।

प्रवचन शब्द से उपदेश, जिनवचन और साधु भी जानना चाहिए। आपने अपने सर्व कर्मों के क्षय के लिए साधुभक्ति की है।

सव्वसाहूणं देज्ज, परमवच्छलेण धम्मविड्ढीए।
जिणसासणपहावणा, असक्का विणा वच्छलेणं।।1229।।

आपने सभी साधुओं को सदैव धर्म की वृद्धि के लिए परमवात्सल्य दिया है। वात्सल्य के बिना जिनशासन की प्रभावना अशक्य है।

सगावसिय-कत्तव्वं, पालीअ सावग-समणवत्थाए।
तुमं असुह-णिरोहस्स, सुहपवित्तीए सक्कं तं।।1230।।

श्रावक व श्रमण की अवस्था में आपने षडावश्यक कर्त्तव्यों का पालन किया। वे आवश्यक कर्त्तव्य अशुभ के निरोध व शुभ में प्रवृत्ति के लिए शक्य हैं।

कत्तव्वं पालेदुं, तुमं तप्परो णिरुंभिदुं चित्तं।
जह कुणदि तह लहदि जं, करीअ कस्स वि उवेक्खं णो।।1231।।

आप सदैव कर्त्तव्यों के पालन और चित्त का निरोध करने में तत्पर रहे। आपने कभी किसी की उपेक्षा नहीं की क्योंकि आप सदैव कहते हैं कि जो जैसा करता है वैसा ही फल प्राप्त करता है।

जिणसासणपहावणा, संजदाणं पाणोव्व पियधम्मो।
तुमं णिच्चं तप्परो, जिणधम्मपहावणं करिदुं॥1232॥

जिनशासन की प्रभावना संयतों के लिए प्राण के समान है, उनका प्रिय धर्म है। आप जिनधर्म की प्रभावना करने में नित्य ही तत्पर रहे हैं।

को वि समणो सावगो, विणा जिणसासणपहावणाए दु।
णेव समत्थो कया वि, कुव्विदुं सगवर-कल्लाणं॥1233॥

जिनशासन की प्रभावना के बिना कोई भी श्रमण व श्रावक स्वपर कल्याण करने में कदापि समर्थ नहीं है।

साहम्मी वच्छल्लं, गोवच्छोव्व कुणदि विणा सत्थेण।
थणादु दुद्धं व सहज-वच्छलं णिस्सरदि धम्मीसु॥1234॥

साधर्मीजन गाय और बछड़े के समान स्वार्थ के बिना परस्पर में वात्सल्य करते हैं। धर्मीजनों में वात्सल्य सहजरूप से वैसे ही निःसृत होता है जैसे गाय के थनों से दुग्ध।

सव्वधम्मिणो पडि सय, तुमं वच्छल-भावणं दु भावीअ।
जं तुमं उप्पालेसि, धम्मीहि विणा णेव धम्मो॥1235॥

आपने सभी धर्मियों के प्रति सदैव वात्सल्य भावना भायी है। क्योंकि आप हमेशा कहते हैं कि धर्मियों के बिना धर्म नहीं होता है।

तुमं सया हि पस्सेसि, भावि-परमप्पं सव्व-धम्मीसुं।
तव चित्ते पज्झरदे, णिज्झरोव्व वच्छलणीरं दु॥1236॥

आप सदैव ही सभी धर्मियों में भावी परमात्मा को देखते हैं। आपके चित्त में झरने के समान वात्सल्य का नीर झरता है।

इमा सोडसभावणा, भावीअ सुणावीअ पढीअ तुमं।
उवदिसीअ भवी जेण, तित्थयरो होदुं सक्केज्ज॥1237॥

आपने ये सोलहकारण भावना पढ़ीं, भायीं, सुनायीं और भव्यों के लिए उपदेश भी दिया जिससे वे तीर्थंकर होने में समर्थ हो सकें।

गुरु-चरणंबुज-जुगले, सिद्ध-सुद-सूरि-भत्तीइ वंदामि।
णमंसामि अच्चेमि य, पुज्जेमि दु पावक्खयेदुं॥1238॥

गुरुवर के चरण-कमल-युगल की मैं सिद्ध, श्रुत व आचार्य भक्ति से वंदना करता हूँ, पाप-क्षय के लिए नमन करता हूँ, अर्चना करता हूँ और पूजा करता हूँ।

भाव-मोक्ख-परिणामं चिंतीअ पुण-पुण परम-सामइगे।
तेण विसोहि-भावेण, उवदिसीअ भवीण मउणेण॥1239॥

आपने परमसामायिक में द्रव्य व भाव मोक्ष के परिणामों का पुनः पुनः चिंतन किया। उस विशुद्धिभाव से मौनपूर्वक भव्यों को उपदेश दिया।

आसव-संवर-णिज्जर-तच्चं णादि ताण कारणेहि सह।
कारणं णिरुंभिय तं, लहदे णाणी परमसोक्खं॥1240॥

अहो! जो आस्रव, संवर व निर्जरा तत्त्व को उनके कारणों के साथ जानता है वह ज्ञानी उनके कारणों का निरोध कर परमसुख को प्राप्त करता है।

एयत्त-विहत्तप्पे, परम-सामाइगे जो सो लीणो।
लहदि चेयण्ण-रयणं, अणुभवेदि सगप्पणंदं हु॥1241॥

जो परम सामायिक में, एकत्व-विभक्त आत्मा में लीन होता है वह चैतन्य रत्न को प्राप्त करता है और स्वात्मा के आनंद का अनुभव करता है।

अप्प-विहवो दु परमो, जस्स समो णो सक्काइ-विहवो वि।
लहेज्ज णणंतभवेसु, तए अणुभविदो इह भवम्मि॥1242॥

आत्मा का वैभव सर्वोत्कृष्ट, सर्वाधिक है, जिसके समान इंद्र आदि का वैभव भी नहीं है। जो आत्मसुख अनंतभवों में प्राप्त नहीं हुआ, इस भव में आपने उस सुख का अनुभव किया है।

तमाणंद-मणुभवेमि, जो णंदो हासदि रायद्दोसं।
अण्णविसोहिकारणं, विसोही साहणाए तुज्झ॥1243॥

मैं भी उस आनंद का अनुभव करता हूँ जो आनंद अपने राग-द्वेष की हानि करता है। आपकी साधना की विशुद्धि अन्यों की भी विशुद्धि का कारण है।

अज्झप्प-गीदं थुदिं, भत्तिं सुणावीअ मंगलपाढं।
तहवि खवगराय-सिरोमणी सया अरिह-जवलीणो॥1244॥

उन्हें आध्यात्मिक भजन, स्तुति, भक्ति व मंगलपाठ सुनाए तथापि वे क्षपकराज शिरोमणि अर्हं जप में लीन थे।

सहसा घुरुक्कंतेहि, अच्छादिदो किण्हघणेहिं णहो।
तिव्व-विट्ठीए ताव-संतो पुढवीए जीवाण॥1245॥

अचानक शाम को संपूर्ण आकाश गरजते काले मेघों से आच्छादित हो गया। उस समय तीव्र बारिश से पृथ्वी पर जीवों का संताप शांत हुआ।

पुढवी अवि णंदेज्जा, विप्पसीएज्जा अणुमण्णेज्जा य।
तव सल्लेहणाविही, देवेहिं सय वंदणीया॥1246॥

हमने कहा—हे स्वामी! पृथ्वी भी अति आनंदित है, प्रसन्न है और अनुमोदना कर रही है। आपकी सल्लेखना विधि सदैव देवों के द्वारा वंदनीय है।

रत्तीइ पढम-पहरे, णिराउल-चित्तेण कुव्वीअ वरं।
सामाइयं च सुहदं, परमसमरसी-भावेणं दु॥1247॥

उन्होंने रात्रि के प्रथम प्रहर में निराकुल चित्त से परमसमरसी भाव से सुखद उत्तम सामायिक की।

चित्ते किंचि चिंतित्तु, बेकरा धरीअ सिरोवरि मज्झं।
णेहेण अंतासीव, पुण थंगेज्ज सगकरा णेव॥1248॥

उन्होंने मन में कुछ विचारकर अपने दोनों हाथ हमारे सिर पर रखे मानो स्नेहपूर्वक अंतिम आशीष ही दिया हो। उसके बाद उन्होंने अपने हाथ ऊपर नहीं उठाए।

सव्वं पडि विअक्खीअ, सो चिय अंतिम-पयाण-इंगिदोव्व।
उस्सासगदिं तस्स दु, इच्छणुसारेण आयरेण॥1249॥
भूमीए विराजित्तु, साहूहिं पढिदो महामंतो दु।
उच्चसरे भत्तीए, खवगरायसिरोमणिं तं च॥1250॥ (जुम्मं)

अनंतर उन्होंने सबकी ओर देखा मानो अंतिम प्रयाण का संकेत ही कर रहे हों पुनः उनकी श्वासों की गति को देखकर उन क्षपकराज शिरोमणि को आदरपूर्वक उनकी इच्छा के अनुसार भूमि पर विराजमान कर साधुओं ने उच्चस्वर में भक्तिपूर्वक महामंत्र पढ़ा।

तदा सिरि-खवगरायो, सज्झाण-लीणो मज्झरत्तीए।
उज्झीअ सगसरीरं, जिण्णवत्थं व समत्तेणं॥1251॥

तब श्री क्षपकराज सद्ध्यान में लीन हुए और समत्वभाव से जीर्णवस्त्र के समान अपने शरीर का परित्याग कर दिया।

बंभमुहुत्ते सासण-पसासण-अहियारी आगच्छीअ।
सहस्सजणेहि सह चउविह-संघो उवट्ठिदो तत्थ॥1252॥

22 सितंबर ब्रह्म मुहूर्त में शासन-प्रशासन अधिकारी कुंदकुंद भारती आए। हजारों लोगों के साथ चतुर्विध संघ भी वहाँ उपस्थित था।

इंदपत्थस्स णिवोव्व, मुक्खमंती आवीअ वंदणाइ।
अण्ण-मंती अवि तत्थ, पत्थिव-सरीरस्स जोगिस्स॥1253॥

दिल्ली के राजा के समान मुख्यमंत्री और अन्य मंत्री भी महायोगी के पार्थिव शरीर की वंदना के लिए आए।

रट्ठ-संतस्स समाहि-महुच्छवे पहाणमंति-आदीहि।
अणुमण्णिदं अप्पिदा, सद्धंजली धम्मभावेण॥1254॥

इन राष्ट्रसंत के समाधि महोत्सव पर प्रधानमंत्री आदि ने भी अनुमोदना की। धर्मभाव से श्रद्धांजलि अर्पित की।

सव्वजणा संतुट्ठा, पस्सित्तु उक्किट्ठ-समाहिं तस्स।
सव्वमणं दुही तदा, विओगजण्ण-विअप्पेणं दु॥।1255॥

उनकी उत्कृष्ट समाधि को देखकर सभी लोग संतुष्ट थे। किंतु उन सभी का मन वियोगजन्य विकल्प से दुखी था।

अंतिमकिरियावसरे, सहस्सजणा संकप्पीअ भयवो।
लहमो समाहिमरणं, आइरियो विज्जाणंदोव्व॥1256॥

उनकी अंतिम क्रिया के अवसर पर हजारों लोगों ने संकल्प किया कि हम भी आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के समान समाधिमरण प्राप्त करें।

तस्स विमाण-जत्ता दु, भारदीइ मुक्खपहं गच्छंता।
आगदा तत्थ जयजयकारं करंता भत्तीए॥1257॥

उनकी विमानयात्रा कुंदकुंदभारती के मुख्यपथ से जाती हुई पुनः जयजयकार करती हुई भक्तिपूर्वक वहाँ कुंदकुंद भारती ही आयी।

मंगल्लवज्जेहिं सह, सहस्सा जणा सेट्ठी विदुवग्गा।
समायस्स सीसत्था, उवट्ठिदा णिगामभत्तीइ॥1258॥

उनकी विमानयात्रा में मंगलकारक वाद्यों के साथ हजारों लोग, श्रेष्ठी, विद्वत्वर्ग, समाज के शीर्षस्थ लोग अत्यंत भक्ति के साथ उपस्थित थे।

आगमविहीए तत्थ, करिदो अंतिम-सक्कारो साहूण।
अपार-जणसमूहस्स, भट्टारय-उवट्ठिदीए दु॥1259॥

अपार जनसमूह के मध्य बहुत से साधुओं और भट्टारकों की उपस्थिति में वहाँ आगमविधि से पुनः उनका अंतिमसंस्कार किया गया।

पुज्जगुरुवरचरणेसु, सिद्ध-सुद-आइरिय-भत्तीए तह।
अणंतवारं णमामि, समाहिमरण-संपत्तीए॥1260॥

सिद्ध, श्रुत व आचार्य भक्ति से गुरुदेव के चरणों में समाधिमरण की प्राप्ति के लिए मैं अनंतबार नमस्कार करता हूँ।

किण्हाइ-असुह-लेस्सा, तस्स मणे ण णिप्पज्जेज्ज कयावि।
दुद्दिणे अक्कुदयोव्व, अमारत्तीए मिअंगोव्व॥1261॥

कृष्ण आदि अशुभ लेश्या उनके मन में कदापि उसी प्रकार उत्पन्न नहीं होती थी जिस प्रकार दुर्दिन में सूर्य का उदय और अमावस रात्रि में चंद्रमा।

पीद-पउम-सुक्क-लेस्स-संजुद-उक्किट्ठ-परिणामा सया।
सुह-सुहदर-सुहदम-परिणामा तस्स पाहण्णेणं॥1262॥

उनके पीत, पद्म व शुक्ल लेश्या से युक्त सदैव उत्कृष्ट परिणाम रहते थे। उनके प्रधानता से शुभ, शुभतर व शुभतम परिणाम ही रहते थे।

जण-भावा वि विसुद्धा, महादुल्लह-समाहीए दु तस्स।
समाहि-भावा फुडिदा, अणेग-भव्वाण चित्तेसुं॥1263॥

उनकी इस महादुर्लभ समाधि से लोगों के भाव भी विशुद्ध हुए। अनेक भव्यों के मन में समाधि के भाव प्रस्फुटित हुए।

संपइयाले सूरी, णरदेहरहिदो ण विज्जदे अत्थ।
तस्स विसिट्ठ-कज्जाणि, सहस्स-वस्संतं पुढवीइ॥1264॥

वर्तमानकाल में आचार्यश्री मानव देह से रहित हैं। वे हमारे मध्य यहाँ विराजमान नहीं हैं किन्तु उनके विशिष्ट कार्य हजारों वर्षों तक पृथ्वी पर रहेंगे।

जइणेदरेहि ठविदं, हियेसु तस्स पूद-जीवण-चरियं।
सुमरंति पुज्जंति ते, वंदंति णमंति सुभावेहि॥1265॥

जैन वा इतर सभी ने उनके पावन जीवन चरित्र को अपने हृदयों में स्थापित किया है। वे सभी शुभभावपूर्वक उनका स्मरण करते हैं, उनकी पूजा करते हैं, वंदन करते हैं और नमन करते हैं।

तस्स कदीओ कयावि, ण सक्को कालो कवलिदं करिदुं।
आदरणीयं विदूहि, पहाणवत्तित्तं चिय तस्स॥1266॥

उनकी कृतियों को कभी भी काल कवलित करने में समर्थ नहीं है। उनका प्रधान व्यक्तित्व विद्वानों के द्वारा आदरणीय है।

गंथपसत्थी

(ग्रंथ प्रशस्ति)

जस्सिं मग्गे सीहो, गच्छदि तस्सिं अण्णलहुजंतू वि।

पुज्ज-सूरि-पसादेण, सिसूव्व भणिदा पुण्णदगुणा॥1267॥

जिस मार्ग पर सिंह चलता है उसी पर अन्य छोटे पशु आदि भी गमन करते हैं। अतः पूज्य आचार्य भगवन् के प्रसाद से बालक के समान मैंने उनके पुण्य देने वाले गुणों को कहा।

तरंगिणीए चलिदुं, समत्थ-कट्ठणिम्मिद-लहुदोणीव।

गुरुकिवाए गुरुगुणा, उप्पालेदुं तप्परो हं॥1268॥

जिस प्रकार लकड़ी से बनी छोटी नाव भी नदी पार कराने में समर्थ होती है उसी प्रकार (यद्यपि मैं बहुत छोटा हूँ तथापि) गुरुकृपा से गुरुगुणों को कहने में तत्पर हो सका।

जम्मि खे रायहंसो, उड्डेदि तत्थ तस्स संताणो वि।

गंथ-लेहण-कज्जं दु, महासूरीण पयएज्ज हं॥1269॥

जिस आकाश में बड़े राजहंस पक्षी उड़ते हैं उसी आकाश में उनकी छोटी-छोटी संतान भी उड़ती हैं उसी प्रकार ग्रंथ लेखन का यह महान् कार्य महान् आचार्यों का ही है तथापि (उसी कुल का छोटे बालक के समान) मैंने भी ग्रंथ लेखन का प्रयत्न किया है।

जिणमग्गरयणायरे, इह महारयणं गुरु-आइरियोव्व

तत्थ पहाणोव्व हं वि, तहवि गुरुकिवा-फलं गंथो॥1270॥

इस जिनमार्ग रूपी रत्नाकर में आचार्य गुरुदेव के समान महारत्न भी हैं तो वहाँ मेरे समान पाषाण भी हैं, तथापि यह ग्रंथ गुरुकृपा का फल ही समझना चाहिए।

कणगकणं अवि कणगं, मंदागिणीए अवि एग-बिंदू।
गंगाणीरं तहेव तित्थ-कुलस्स लहूमुणी हं॥1271॥

जिस प्रकार सोने का टुकड़ा सोना ही होता है, गंगा की एक बूंद भी गंगाजल ही है उसी प्रकार तीर्थंकरों के कुल का मैं भी छोटा मुनि हूँ।

जो रयणत्तयजुत्तो, कुणदि गुरुभत्तिं परमविणयेणं।
सो भवसायरतीरं, लहदि सव्वकम्मं खयित्ता॥1272॥

जो रत्नत्रय से युक्त जीव परमविनय से गुरुभक्ति करता है वह सर्व कर्मों का क्षयकर भव सागर के तट को प्राप्त कर लेता है।

भवदुक्खणासगा गुरु-भत्ती दुग्गदि-णासगा चक्कं व।
भवभमणं खयिदुं कम्मं जयेदुं महासेण्णं व॥1273॥

गुरुभक्ति भवदु:खों का नाश करने वाली और दुर्गति की नाशक है। यह गुरुभक्ति संसार परिभ्रमण का क्षय करने के लिए चक्र के समान और कर्मों को जीतने के लिए विशाल सेना के समान है।

सण्णाणवड्ढगा पुण्णकारगा सम्मत्तविसोहिगा य।
गुरुभत्ती तव-जणणी, वेरग्ग-चरियुप्पायगा दु॥1274॥

गुरुभक्ति सम्यग्ज्ञान का वर्धन करने वाली, पुण्यकारका, सम्यक्त्व को विशुद्ध बनाने वाली, तप की जननी और वैराग्य व चरित्र को उत्पन्न करने वाली है।

अप्पम्मि सव्वसुगुणा, उप्पज्जिदुं गुरुभत्ती णिमित्तं।
जह खेत्तम्मि सस्सस्स, कुणदि किसीवलो किसिकम्मं।।1275।।

जिस प्रकार खेत में फसल के लिए कृषक कृषिकर्म करता है उसी प्रकार आत्मा में सभी शुद्धगुणों को उत्पन्न करने के लिए गुरुभक्ति निमित्त है।

गुरुगुणं भासिदुं हं, पययेज्ज सम्मत्ताइ-विसुद्धीइ।
सासयपदं पाविदुं, परमविणयेण समप्पणेण।।1276।।

सम्यक्त्वादि की विशुद्धि और शाश्वत पद की प्राप्ति के लिए मैंने परम विनय से समर्पण के साथ गुरु के गुणों को कहने का प्रयत्न किया है।

णीरं धोवदि पंकं, रत्तकलंकं मालिण्णं अहवा।
रयणत्तय-संजुद-गुरु-भत्ती खयदि तिविहकम्माणि।।1277।।

जिस प्रकार जल कीचड़, रक्त का दाग वा मलिनता को साफ करता है उसी प्रकार रत्नत्रय से युक्त गुरुभक्ति तीन प्रकार के कर्मों (द्रव्य कर्म, भावकर्म व नोकर्म) को नष्ट करती है।

जयिदु-मक्खमणिंदियं, गुरुभत्तिधम्मचक्केण सक्केदि।
तह जह चक्कवट्टी हु, जयदि छक्खंडं चक्केणं।।1278।।

जिस प्रकार चक्रवर्ती चक्र के माध्यम से षट्खंड पर विजय प्राप्त करता है उसी प्रकार भव्यजीव गुरुभक्ति रूप धर्मचक्र के माध्यम से इंद्रिय व मन को जीतने में समर्थ होता है।

अणाइयालादो गुरु-भत्तीइ लहीअ भेदविण्णाणं।
पुणो परमतवं कडुअ, होज्ज कम्मविहीणा सिद्धा।।1279।।

अनादिकाल से भव्यजीवों ने गुरुभक्ति के माध्यम से भेद विज्ञान को प्राप्त किया है पुनः परमतप करके वे कर्मों से रहित सिद्ध हुए।

जहवि परमेट्ठि-सुगुणा, भासिदुं असक्को तह वि पययेमि।
गुरुपदपसादेण हं, णियगुरुचरियं चिय लिहेदुं।।1280।।

यद्यपि परमेष्ठी के गुणों को कहने में मैं अशक्य हूँ तथापि गुरुपद के प्रसाद से अपने गुरु का चरित्र लिखने का मैंने प्रयत्न किया।

सादिरिक्खम्मि पदिदो, जलबिंदू सिप्पीइ होदि मुत्ता।
भविचित्ते गुरुभत्ती, कुव्वेदि अप्पं परमप्पा।।1281।।

जिस प्रकार स्वाति नक्षत्र में सीप में गिरी जल की बूंद मोती हो जाती है उसी प्रकार भव्य के चित्त में विद्यमान गुरुभक्ति आत्मा को परमात्मा बना देती है।

उच्छाहेण बालोव्व, कुव्विदुं गुरुभत्तिं तप्परो हं।
जहवि उवहास-पत्तो, अभेयरयणत्तय-जोगीहि।।1282।।

यद्यपि गुरुभक्ति में तत्पर अभेद रत्नत्रयधारी योगियों के द्वारा मैं उपहास का पात्र हूँ तथापि बालक के समान उत्साहपूर्वक गुरुभक्ति करने में मैं तत्पर हुआ।

चित्ते मज्झ विज्जंत-सुगुरुभत्तिभावं असमत्थो हं।
संकोइदुं कूकंत-कोइलोव्व मंजरिं पस्सिय।।1283।।

जिस प्रकार आम्र के बौर को देखकर कोयल सहज ही कूकने लगती है उसी प्रकार मेरे चित्त में विद्यमान गुरुभक्ति के भावों को संकुचित करने में मैं असमर्थ हूँ।

गुडस्स महुरिमा इक्खु-दंडस्स जह तह विसेसत्तं।
वयणेसुं सेट्ठत्तं, मे चित्ते विज्जंत-गुरुणा।।1284

जैसे गुड़ की मिठास गन्ने की विशेषता है उसी प्रकार मेरे वचनों में जो भी श्रेष्ठता है वह मेरे चित्त में विराजमान गुरु से है।

णीरबिंदु-पडणेणं, खंडदि अविरलं पासाणखंडं।
पावगिरी परोक्खम्मि, वज्जोव्व दु सुगुरुभत्तीए।।1285।।

जैसे जल की बूंद लगातार गिरने से पाषाण खंड खंडित हो जाता है उसी प्रकार परोक्ष में वज्र के समान गुरु की भक्ति से पाप रूपी पर्वत खंड-खंड हो जाता है।

कच्चं वज्जकंतीव, दीवेदि अक्ककिरण-माहप्पेण।
दिस्सदि सिस्स-जीवणे, गुणकंती गुरुमाहप्पेण।।1286।।

जिस प्रकार सूर्य की किरण के माहात्म्य से काँच भी हीरे की चमक के समान चमकने लगता है उसी प्रकार गुरु के माहात्म्य से शिष्य के जीवन में गुणों की कांति दिखाई देने लगती है।

सयलसंजमं जीवण-पज्जंतं च विज्जाणंद-सूरी।
पालीअ विसुद्धीए, सयलसंजम-सव्वुक्किट्ठो।।1287।।

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने जीवन पर्यंत विशुद्धिपूर्वक सर्वोत्कृष्ट सकलसंयम का पालन किया।

वरणंदं गहिदुं हं, विज्जाणंदस्स सुणंदो सूरी।
वसुकम्मं खयित्तु वसु-गुणं लहिदुं णंदमि णाणे।।1288।।

उत्कृष्ट आनंद को प्राप्त करने के लिए अष्टकर्मों का क्षयकर अष्टगुणों की प्राप्ति के लिए आचार्य विद्यानंद का नंद मैं (आचार्य वसुनंदी) ज्ञान में आनंदित होता हूँ।

अस्सिं भरहे तित्था, पच्छा अणुबद्धकेवली णमामि।
सुदकेवली गणहरा, सुधम्मसंवाहगा सूरी।।1289।।

इस भरतक्षेत्र में तीर्थंकरप्रभु, पश्चात् अनुबद्ध केवली, श्रुतकेवली, गणधर व धर्मसंवाहक आचार्यों को नमस्कार करता हूँ।

उसहपहुडि-वीरंतं, णमंसामि णिव्वाणगदा-सिद्धा।।
किट्टिमाकिट्टिमाइं, जिणचेइय-चेइयालयाणि।।1290।।

श्री आदिनाथ भगवान् से लेकर महावीर भगवान तक सभी तीर्थंकरों को, जिन्होंने मोक्ष को प्राप्त किया उन सभी सिद्धों को एवं कृत्रिमाकृत्रिम जिनचैत्य व चैत्यालयों को नमस्कार करता हूँ।

विण्हुं णंदिमित्त-मवराजिदं गोवड्ढण-भद्दबाहू।
पंचसुदकेवलिणो य, विसाहं-पोट्ठिलं खत्तियं।।1291।।
जयणायधिदिसेणा य, सिद्धत्थं विजयं गंगदेवं पि।
धम्मसेण-णक्खत्ता जयपालं पंडु-धुवसेणा।।1292।।
कंससूरिं सुभद्दं जसोभद्द-गुणहरा चंदणंदिं।
बलदेवं जिणणंदिं पणमामि सुहभत्तिरायेण।।1293।। (तिअं)

श्रीविष्णु, श्री नंदिमित्र, श्री अपराजित, श्री गोवर्धन व श्री भद्रबाहु स्वामी इन पाँचश्रुतकेवलियों को एवं श्री विशाखाचार्य, श्री प्रोष्ठिल, श्री क्षत्रिय, श्री जयसेन, श्री नागसेन, श्री धृतिसेण, श्री सिद्धार्थ, श्री विजय, श्री गंगदेव, श्री धर्मसेन, श्री नक्षत्र, श्री जयपाल, श्री पांडु, श्री ध्रुवसेन, श्री कंसाचार्य, श्री सुभद्र, श्री यशोभद्र, श्री गुणधराचार्य, श्री चंद्रनंदि, श्री बलदेव एवं श्री जिननंदि आचार्य को शुभ भक्ति के राग से मैं नमस्कार करता हूँ।

अज्झसव्वगुत्तं तह, मित्तणंदिं सिवकोडि-विणयहरा।
गुत्तिसुदि-गुत्तिइड्ढी सिवगुत्तं रयणसुहणंदी।।1294।।
बप्पदेवं च कुमार-णंदि अरिहबलिं अरिहदत्तं च।
सिव-विणय-सिरि-दत्ता दु माघणंदिं सिरिधरसेणं।।1295।।
पुप्फदंत-भूदबली मंदज्जं मित्तवीर-माइरियं।
दिवायरसेणं अज्जमंखु णमामि सुविसुद्धीए।।1296।। (तिअं)

आचार्यश्री आर्यसर्वगुप्त, श्री मित्रनंदि, श्री शिवकोटि, श्री विनयधर, श्री गुप्तिश्रुति, श्री गुप्तिऋद्धि, श्री शिवगुप्त, श्री रत्ननंदि, श्री शुभनंदि, श्री बप्पदेव, श्री कुमारनंदि, श्री अर्हद्बलि, श्री अर्हदत्त, श्री शिवदत्त, श्री विनयदत्त, श्रीदत्त, श्री माघनंदि, श्री धरसेनाचार्य, श्री पुष्पदंत, श्री भूतबलि, श्री मंदार्य, श्री मित्रवीर, श्री दिवाकरसेन, श्री आर्यमंक्षु आचार्य को मैं विशुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

सूरि-जसोबाहु-णायहत्थी जदि उसहं तह जिणचंदं।
कोंडकुंडं चिअ उमासामिं समंतभद्द-सूरिं।।1297।।
अरिहसेण-सीहणंदि-कुमारसामिणो बलागपिच्छं च।
जसकित्तिं जसणंदिं, सामकुंडारिइयं विजयं।।1298।।
देवणंदि-सिरिदत्ता पुज्जपाद-मल्लवादि-जयणंदी।
गुणणंदि-वज्जणंदी, परियंदामि सव्वाइरिया।।1299।। (तिअं)

आचार्यश्री यशोबाहु, श्री नागहस्ति, श्री यतिवृषभ, श्री जिनचंद्र, श्री कुंदकुंद स्वामी, श्री उमास्वामि, श्री समंतभद्र स्वामी, श्री अर्हसेन, श्री सिंहनंदि, श्री कुमारस्वामी, श्री बलाकपिच्छाचार्य, श्री यशःकीर्ति, श्री यशोनंदि, श्री शामकुंडाचार्य, श्री विजय, श्री देवनंदि, श्रीदत्त, श्री पूज्यपाद, श्री मल्लवादि, श्री जयनंदि, श्री गुणनंदि, श्री वज्रनंदि सभी आचार्यों की मैं स्तुति करता हूँ।

सव्वणंदिं सिरिलोयचंदं पहाचंदं च जोगिंदु।
णेमिचंद-भाणुणंदि-सिद्धसेण-पत्तकेसरी य।।1300।।
वसुणंदि-मरिहसेणं वीरणंदि-माणतुंग-अकलंका।
कुमुदचंदं च लखमण-सेणं कणगसेणं सूरिं।।1301।।
माणिक्कणंदिं धम्म-रवि-जिण-सेणा मेहबालचंदं।
सुमदिं तह जडासीह-णंदिं काणभिच्छुं वंदे।।1302।। (तिअं)

श्री सर्वनंदि, श्री लोकचंद्र, श्री प्रभाचंद्र, श्री योगेंदुदेव, श्री नेमिचंद, श्री भानुनंदि, श्री सिद्धसेन, श्री पात्रकेसरी, श्री वसुनंदि, श्री वीरनंदि, श्री मानतुंग, श्री अकलंकदेव, श्री कुमुदचंद, श्री लक्ष्मणसेन, श्री कनकसेन, आचार्यश्री माणिकनंदि, श्री धर्मसेन, श्री रविषेण, श्री जिनसेन, श्री मेघचंद, श्री बालचंद, श्री सुमतिदेव, श्री जयसिंहनंदि, श्री काणभिक्षु आचार्य की मैं वंदना करता हूँ।

चरित्तभूसणं सेट्ठ-विज्जाणंदि-मज्जणंदिं सूरिं।
वादीभसीहं वादिरायं तहा एलाइरियं॥1303॥
वीरसेणं सिरिधरं महावीरं च वीर-पउमसेणा।
उग्गदित्ताइरियं च देवसेणं वामदेवं पि॥1304॥
गुणभद्द-ममियचंदं गोलाइरियं कलधोदणंदिं च।
णयणंदिं णयसेणं सुह-सिरि-चंदाहु णमंसामि॥1305॥ (तिअं)

श्री चारित्रभूषण, श्रेष्ठ श्री विद्यानंद, श्री आर्यनंदि, आचार्यश्री वादीभसिंह, श्री वादिराज, श्री एलाचार्य, श्री वीरसेन, श्री श्रीधर, श्री महावीर, श्री वीरसेन, श्री पद्मसेन, श्री उग्रदित्याचार्य, श्री देवसेन, श्री वामदेव, श्री गुणभद्र, श्री गोलाचार्य, श्री कलधौतनंदि, श्री नयनंदि, श्री नयसेन, श्री शुभचंद्र, श्री श्रीचंद्र आचार्यों को मैं नमस्कार करता हूँ।

बालणंदिं तह मल्लि-राम-णाय-णरिंद-हरिसेणा चिअ।
देवचंद-रविचंदा कुलभद्दं तह इंदणंदिं॥1306॥
पारसदेवं कणगामरं दामणंदिं माधवचंदं।
अमिदगदि-मभयणंदिं पउमणंदिं अमोघवस्सं॥1307॥
चामुंडरायं सयलकित्ति-मजिदसेणं सव्वाइरिया।
जिणसासणुण्णदियरा, पणमामि सगप्पसिद्धीए॥1308॥ (तिअं)

आचार्यश्री बालनंदि, श्री मल्लिषेण, श्री रामसेन, श्री नागसेन, श्री नरेन्द्रसेन, श्री हरिषेण, श्री देवचंद्र, श्री रविचंद्र, श्री कुलभद्र, श्री इंद्रनंदि, श्री पारसदेव, श्री दामनंदि, श्री माधवचंद, श्री अमितगति, श्री अमोघवर्ष, श्री सकलकीर्ति, श्री अजितसेनादि जिनशासन की उन्नति करने वाले सभी आचार्यों को मैं स्वात्मसिद्धि के लिए नमस्कार करता हूँ।

परोक्ख-परमुवयारिं, पढमं चरिय-चक्कि-संतिसिंधुं।
महातवसि-पाय-सिंधु-सूरिं पुण अज्झप्पजोगिं।।1309।।
जयकित्ति-सूरिं सिरी-देसभूसणं भारदगोरवं च।
वंदेमि जाण किवाइ, लिहिदं सत्थं विसुद्धीए।।1310।। (जुम्मं)

परोक्ष रूप से परमोपकारी, प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागरजी मुनिराज, महातपस्वी आचार्यश्री पायसागरजी मुनिराज, अध्यात्म योगी आचार्यश्री जयकीर्तिजी मुनिराज, भारत गौरव आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज की मैं वंदना करता हूँ, जिनकी कृपा से विशुद्धिपूर्वक ये शास्त्र लिखा गया।

मम पच्चक्ख-गुरु-सिरी-विज्जाणंद सूरिं परियंदामि।
जस्स पसादेण विणा, ण गंथं लिहिदुं सक्को हं।।1311।।

मेरे प्रत्यक्ष गुरु आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज को नमस्कार करता हूँ जिनके प्रसाद के बिना मैं ग्रंथ लिखने में समर्थ नहीं हूँ।

जुगसेट्ठं जुगजेट्ठं, आयंसेसु महायंसं सूरिं।
अस्सिं जुगे सुपुज्जं, पाविदूणं धण्णा पुढवी।।1312।।

युगश्रेष्ठ, युगज्येष्ठ, आदर्शों में महादर्श, इस युग में सुपूज्य आचार्यश्री विद्यानंद जी मुनिराज को प्राप्तकर यह पृथ्वी धन्य हुई।

जिणसासणपहावगं, तित्थयरोव्व अप्पाणुसासगं च।

विज्जाणंदं सूरिं, परियंदामि भावसुद्धीइ॥1313॥

तीर्थंकर के समान जिनशासन प्रभावक, आत्मानुशासक आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज को मैं भावों की शुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

बहु-तुडी अवि संभवा, इह चरिय-थुदि-गंथो लिहिदो मए।

सुद्धरयणत्तयी णं, जाणिय खमंतु मे बालोव्व1314॥

इस चरित्र स्तुति ग्रंथ 'क्षपकराज शिरोमणि' में कई त्रुटियाँ भी मेरे द्वारा संभव हैं। शुद्ध रत्नत्रय को धारण करने वाले मुनि मुझे बालक के समान जानकर क्षमा करें।

णह-परमेट्ठि-सण्णाण-चेयणा-वीरणिव्वाणद्धम्मि य।

पुण्णो गंथो इणमो, गुरु-समाहि-दिवस-अवसरम्मि॥1315॥

भारद-रायहाणीइ, परिसद-रत्तमंदिरे कालगाइ।

विज्जाणंद-णिलयम्मि, पुण्णाहे अप्पबुद्धीए॥1316॥ (जुम्मं)

नभ (0) परमेष्ठी (5) सम्यग्ज्ञान (3) चेतना (2) किन्तु 'अंकानां वामतो गतिः' के अनुसार वीर निर्वाण संवत् 2550 में गुरुवर आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के समाधि दिवस के अवसर पर भारत की राजधानी दिल्ली में कालकाजी परिषद के लालजिनालय के विद्यानंद निलय में यह ग्रंथ मुझ अल्पबुद्धि के द्वारा पूर्ण हुआ।

जावदु चंदो अक्को, चरंते गगणम्मि वहंति सरिदा।

धम्मो देदि सुहं मे, मणे तावदु गुरुभत्ती सय॥1317॥

जब तक सूर्य व चंद्र आकाश में गमन कर रहे हैं, नदियाँ प्रवाहमान हैं और धर्म सुख देता है तब तक मेरे मन में सदैव गुरुभक्ति विद्यमान रहे।

श्लोकानुक्रमणिका

गाथा पाद	गाथा सं.
(अ)	
अइक्कमादि-दोसाण	1115
अइदुल्लहं सुपुण्णं	449
अइभत्तीए ढिल्ली	276
अइविणयेण गुरुपदं	882
अइसरल जीवणे बहु	1101
अइ-सोहग्गवंतो दु	372
अंकेण विणा सुण्णं	663
अंत-तित्थयरो महावीर	1084
अंतर-तव-भावणाइ	193
अंतरतवेणं विणा	207
अंतरवीयेण विणा	208
अंतिमकिरियावसरे	1256
अग्गह मुज्झेज्ज सयं	552
अग्गिम-वस्साजोगो	797
अग्गि-सामगं णीरं	696
अग्गी-सोहदि धादुं	692
अचेलक्को य वत्था	148
अच्चंत-कोहुदयेण	615
अजुद्धा-चंदपुरी य	1086
अज्जाणं दाएज्ज ण	1000

गाथा पाद	गाथा सं.
अज्जा-बाहुबलीए	889
अज्जिगा अज्जिगा	1072
अज्जिगा-बाहुबलीइ	889
अज्झप्प-गीदं थुदिं	1244
अज्झप्पिय-सुत्तीओ	944
अज्झयणं कराविदुं	828
अज्झयणे चिंतणे वि	188
अज्झसव्वगुत्तं तह	1294
अट्टं रुद्दं असुहं	238
अट्ठ-णव-दस-वासेसु	852
अट्ठदस-णवंबरादु	359
अट्ठमंगलदव्वाणि	1108
अट्ठवीस-मइम्मि	599
अट्ठसदिं च सहस्सिं	247
अट्ठापदो-सम्मेद	1088
अट्ठारस-सिदंबरं	1158
अट्ठारस-सिदंबरे	598
अट्ठावीस-जूणम्मि	580
अट्ठावीस-जूणम्मि	606
अड्डुत्तर-सहस्सेहि	775
अडदालीस-सहस्सा	345

गाथा पाद	गाथा सं.
अणंतरं चउतीसा	158
अणंतरं पहुच्चीअ	832
अणसण-मवमोदरियं	608
अणाइयालादो गुरु	1279
अणिच्चभावणादिं च	392
अणुओ वर-सिस्सो	8
अणुत्तरदसं च पण्ह	376
अणुवेक्खा-चिंतणं दु	1181
अणुवेक्खा-तव-पदत्थ	1139
अणुसासण मावसियं	1002
अणेगंत सत्तभंगि	928
अणेगज्झप्प-गंथा	256
अणेग-णिबंधा तम्मि	899
अणेग-धम्म-कज्जाइं	811
अणेग-धम्मसहा	290
अणेग-पदंसणी गोट्ठी	562
अणेग-विदुसंगोट्ठी	748
अणेग-विदुसेट्ठीणं	831
अणेय-सोह-णिबंधा	790
अणेय-पंता सुणाम	22
अण्णाणी मण्णंते	413
अदिसय-पुण्णफलं चिय	448
अपार जणसमूहो दु	511
अपुव्वकरणाइ सत्त	456
अपुव्व-भविस्स-दिट्ठा	319

गाथा पाद	गाथा सं.
अप्पगुण णासगग्गी	622
अप्पगुणा अहिऊलदि	649
अप्पम्मि सव्वसुगुणा	1275
अप्प-विहवो दु परमो	1242
अबंभं विसयमूलं	725
अभयदाणेण जीवो	712
अभिक्खण-णाणुवजोग	909
अमियासीदिं पमाण	251
अमूढदिट्ठी उवसम	217
अरिहसेण सीहणंदि	1298
अरिहादी परमेट्ठी	1
अरिहो वा सिद्धो हं	1143
अवसप्पिणि-उवसप्पिणि	407
अविवागी णिज्जरा दु	445
असंजमो बेविहो दु	682
असच्चं दुक्ख-हेदू	673
असादवेयणिज्जत्त	182
असुई दु सहावादो	428
अस्स-परंपराए दु	977
अस्सिं दुस्समयाले	1093
अस्सिं भरहे तित्था	1289
अह एयारस बारस	866
अह चंदणयरं तेण	830
अहवा तप्परो तुमं	65
अहिंसाथलम्मि वीर	565

गाथा पाद	गाथा सं.
अहिंसा-पालणस्स हि	590
अहिंसा विस्सजणणी	916
अहियाहिय-अज्झयणं	1036
अहो णिण्णय-सायरो	800
अहो भव्वुल्लो सग	391
(आ)	
आइरिय-उमासामी	895
आइरिय-पेरणाए	984
आइरिय-संतिसायरं	1021
आइरियस्स दु पसंत	1120
आइरियाणं भत्तिं	1225
आइरियेण मुणिभत्त	966
आइरियेण लिहिदा	975
आइरियो दु पालीअ	607
आउअ-णाणं किच्चा	1156
आगच्छीअ गुरुवरो	842
आगच्छेज्ज बहु-विदू	1193
आगमविहीए तत्थ	1259
आगरा-जामाए दु	277
आजीविगाइ सीवण	520
आणंदेणं इत्थं	777
आणा-अपाय-विवाग	227
आणावायोवाया	233
आदि-किसि-सिक्खग	955
आदि-चरण-ठावणं च	311

गाथा पाद	गाथा सं.
आदिसायरं च महा	1023
आयारं सुत्तकिदं	375
आयारिदो बेसहस्सद्दि	744
आयोजण-थल-णियडं	267
आयोजिद-उच्छवम्मि	742
आयोजिदा उससहा	880
आराहणासारं दु	250
आवीअ पहादे	272
आवीअ संजोगेण	81
आसव-संवर-णिज्जर	1240
आसवो बंध-हेदू	433
आसी अत्थि होस्सेदि	717
आहार-ओसहि-णाण	703
(इ)	
इंदपत्थस्स णिवोव्व	1253
इंदस्स महाविहवो	389
इंदोरादो ढिल्लिं	574
इगणवदि-ईसवीए	753
इगतीस-मइम्मि पुणो	600
इगवीस-फरवरीए	521
इगवीस-वस्सवत्था	84
इगवीस-सिदंबरम्मि	1197
इट्ठाणिट्ठ-वत्थूणि	390

गाथा पाद	गाथा सं.
इदिवित्त-परिपेक्खम्मि	1085
इमाए अदिरित्ता दु	991
(उ)	
उक्किट्ठ-सल्लेहणं	1186
उच्छाहेण दायिदो	88
उच्छाहेण बालोव्व	1282
उच्छुवज्झक्खा तस्स	342
उज्जमसीलो सेवा	55
उज्जोदेणं इंदू	732
उड्ढे विमाणिग-सुरा	232
उणवीस-जुलाईदो	807
उणवीसणवंबरम्मि	477
उणवीस-णवंबरम्मि	741
उणवीससयचउसट्ठि	257
उणवीस-सय-छलसीअ	568
उणवीस-सयट्ठ-सट्ठि	291
उणवीस सयतिहत्तर	484
उणवीससय-पणसट्ठि	271
उणवीस-सय-पणसीदि	560
उणवीस-सय-बाहत्तर	336
उणवीस-सयसत्त-छट्ठि	288
उणवीस-सयहत्तरे	296
उणवीस-सिदंबरम्मि	1162
उण्हसीदबाहाए	204
उण्हे वसदिगा-उवरि	1140
उत्तमखमं मद्दवं	613
उत्तम-खमाइ-धम्मं	1066
उत्तमबंभचेरं दु	735
उत्तमसंजमधम्मं	684
उत्तम-सच्चं धम्मं	675
उत्तर-भारदम्मि भो	488
उदर-सोहग-हरडई	698
उप्पादपुव्व-मग्गायणीय	380
उवएसो जिणवयणं	1228
उवदिसिदं मुणिंदेण	591
उवयार-विणयं विणा	212
उववास-अवमोदरिय	195
उववासेणं सहिदं	156
उवसग्गाइ-समयम्मि	618
उवसग्गा दुब्भिक्खं	734
उवसग्गेण खयंते	177
उवसामगो दु पदिदो	457
उसचक्कं वट्टंतो	364
उसहपहुडि-वीरंतं	1290
उस्सिक्कंति सरीरं	387
उहय-णयाणुसारेण	401
(ऊ)	
ऊणतीस-णवंबरे	779

गाथा पाद	गाथा सं.
(ए)	
एक्को कुव्वदि कम्मं	419
एक्को जम्मदि मरदे	418
एक्को बंधदि कम्मं	417
एगणउदि–उत्तरूण	760
एगणवदि–ईसवीइ	758
एगवरिस–पज्जंतं	747
एगवीस–दिसंबरे	549
एगस्सिणुत्तरद्धे	543
एगुत्तर–बेसहस्स	1070
एगुत्तर–बेसहस्से	820
एयत्त–चिंतगो खलु	420
एयत्त–विहत्तप्पे	1241
एयदा अणुरुंधिदो	121
एयदा कहीअ गुरु	1100
एयदा भारदीए	833
एयभवे बे–वारं	458
एयारसंग–चउदस	1226
एलंग खुल्लयं वा	1079
एलगो खुल्लयो वा	1078
एलाइरिय–संघेण	508
एलाइरियो विज्जाणंद	502
(ओ)	
ओग्गहीअ संकप्पं	74
ओसहिदाणेण मोक्ख	710
ओसहि–दायग–णेहल	175
(क)	
कंखेमि तुज्झ देदुं	837
कंससूरिं सुभद्दं	1293
कच्चं वज्जकंतीव	1286
कट्टु गुरुपदवंदणं	10
कडुअ आगमज्झयणं	187
कडुगसद्दे सुणणे वि	616
कणगकणं अवि कणगं	1271
कणगोजलस्स दत्तं	886
कण्णड–सक्किद–पागद	98
कण्णाडं–आगमिदुं	465
कण्णाडं–गच्छंतो	495
कण्णाडग–सुहपंते	23
कण्णाड–मुक्खमंती	530
कण्णिंदिय–विसयेसुं	140
कत्तव्वं पालेदुं	1231
कत्थ ईसरो किदी हु	931
कत्तिगम्मि एयारस	874
कम्मसिद्धंतं णाय	241
कम्मोदयेण जीवा	230
कयावि सग–देहेणं	1220
कराविदा बहुपण	891

गाथा पाद	गाथा सं.
करिदु-मप्पकल्लाणं	723
करीअ पडिक्कमणं दु	143
करेज्ज वेज्जावच्चं	1003
करेदुं संजमतवज्झाण	151
कलसेहिं सह णारी	509
कल्लाणमुणी राओ	962
कवयोव्व जोहाणं च	687
कसाय-पमाद-रहिदो	1184
कस्स वि अण्णदियंबर	539
कहं उच्छुवायरणं	954
कहं पि विहवं लहित्तु	1116
कहिदं पाढगेण	463
कहिदं भो वसुणंदी!	863
कहिदं मए तदा अइ	838
कहिदं मुक्खमंतिणा	514
कहीअ भो गोमादू!	834
कहीअ भो सूरिवरो!	101
काणणे उण्हयाले	162
काल-सत्थमदप्पा य	905
किंचिवि कारणेहिं दु	122
किंचिवि दिण-पच्छा पुण	111
किंचिवि वत्थुं ण मज्झ	127
किं बंधसि कम्मं दिच्चा	113
किं मुणि-विज्जाणंदो	468
किण्णु उणवीससयेग	327
किण्णु सुह सज्झायस्स	73
किण्णु हि असमत्था ते	318
किण्हाइ-असुह-लेस्सा	1261
किण्हाणयरसमायो	826
किदण्हुत्तं दंसिदुं	19
किदायरं बहुजणेहि	185
किदीइ अपरिग्गहादु	916
किदी पहाणमंतिणा	759
किसि-कारग-किसीवलो	21
कुंथुसायर-संघम्मि	761
कुंदकुंदभारदीइ	476
कुंभोज-बाहुबलिं च	503
कुंभोज-बाहुबलिम्मि	538
कुंभोजम्मि-बाहुबलि	555
कुव्विदा दु सेदंबर	349
कुव्विदुं किसं कायं	1129
कुसक्कारं कुसिक्खं	1034
कूवे णीरं व खमा	625
केंदीय-सत्थ-मंती	352
को चिय संजम-जोग्गो	996
कोण्णूर-हुमच-कुंभोजेसु	106
कोथलिं च गच्छंतो	531
कोल्हापुरे ठाएज्ज	497

गाथा पाद	गाथा सं.
को वि पुव्वभववइरी	176
को वि समणो सावगो	1233
(ख)	
खज्ज–सज्ज–लेह–पेय	196
खणलवपडिबोहणत्त	1212
खारवेल–भवणस्स दु	853
खुल्लय–पस्सकित्तिस्स	89
खेडगं व खमा तहा	652
(ग)	
गंभीरं धीर–णाण	83
गंभीररूवेण सो	71
गगणचुंबी सिहरेण	24
गज्ज–पज्ज–संजुत्तं	988
गणि–अज्जाए णिद्देसेण	1075
गवेसेदुं सगसुद्ध	132
गहदि जो वि सद्दिट्ठी	398
गहिदुं अपुव्वणाणं	382
गहीअ धरीअ वत्थुं	134
गिह–गिहे संतिसिंधू	808
गिहाइ–दसविहं बज्झ	704
गुड–तिल्ल–घिद–दहि–दुद्ध	199
गुडस्स महुरिमा	1284
गुणभद्द–ममियचंदं	1305
गुणुत्तर–सेढीइ सग	1166
गुरु–अण्णाइ मग्गसिर	869

गाथा पाद	गाथा सं.
गुरु–अण्णाए गहिदा	87
गुरु–अण्णाए हि गदो	92
गुरु–आणाए लिहिदं	812
गुरु–आणाए हं पि	799
गुरु–आसीए जंबूसामी	989
गुरु–आसीवायेण	818
गुरुकिवाफलं सव्वं	990
गुरुकुल–गोरवुवाहीए	558
गुरुकुल–पद्धती पुण	556
गुरुगुणं भासिदुं हं	1276
गुरु–चरणंबुज–जुगले	1238
गुरुणा कराविदं मम	823
गुरु–तवण्णा पसण्णो	52
गुरु दायदि सिस्साण	1053
गुरु–परिवाय–वियारो	965
गुरुमुहेण गंभीरो	1069
गुरुवंदण–णिमित्तेण	6
गुरुवयण–मिदं सुणिय	1154
गुरु–विज्जाणंदेणं	24
गुरु–संथा महत्तं दु	912
गुरु–संदेसो वि णेव	844
गोम्मडगिरिम्मि तदा हि	569
गोम्मड–जीवकंडं च	245
गोम्मडेस–जिणो सिरी	953
गोम्मडेसं अप्पिदुं	522

गाथा पाद	गाथा सं.
गोम्मडेसरम्मि बाहुबली	326
ग्वालियरादो दु पुणो	315
(घ)	
घंटघर-चउपहे चिय	273
घडणा परिक्खणस्स दु	548
(च)	
चउकरभूमिं सोहिय	130
चउगदीसुं हु जीवा	412
चउगीइ ठाएज्ज पुण	317
चउदसप्पेल-असीदि	499
चउदस-फरवरीदु	496
चउपाडि-खेत्ते तस्स	493
चउमास-पच्छा	108
चउमास-संठावणा	586
चउमासस्स पत्थिदं	312
चउमासो संपण्णो	329
चउविहसंघो सक्को	1001
चंदवाड-णिवासीण	577
चक्किस्स णवणिही	388
चक्खुस्स पंचविसया	139
चदु-उत्तर-बेसहस्स	827
चदुणवदि-वरिसे कुंद	764
चदुत्तरबेसहस्से	822
चरित्तभूसणं सेट्ठ	1303
चरिय-चक्कवट्टिस्स	603
चरिय-चक्कि-सूरि-संति	806
चागं करेज्ज णियमा	702
चागुक्किट्ठा रूवा	705
चामुंडरायं सयलकित्ति	1308
चारुकित्ति-भट्टारग	505
चिंतामुत्तीइ धम्म	1111
चिंतीअ खवगरायो	1168
चिंतीअ विसुद्धीए	1198
चिंतेज्ज पुव्वाइरिय	1020
चिंतेज्ज मणथिरिमाइ	1117
चिट्ठीअ दु पउमासण	170
चित्त-सुई असक्को दु	653
चित्ते किंचि चिंतित्तु	1248
चित्ते मज्झ विज्जंत	1283
चित्तोडगढे करिदं	479
चूलगिरिं पहुच्चित्तु	489
चेयण-अचेयणकिदी	883
(छ)	
छउमत्थो ण समत्थो	713
छम्मासाहिय-यालो	481
छुआ-रोय-दुक्खेहिं	178
छुहाइ-परीसहा	1179

गाथा पाद	गाथा सं.
(ज)	
जइण–जणगणणाए दु	295
जइण–जुवा–संगमेण	282
जइण–णायो जिणागम	1112
जइणधम्मो अहिंसा	972
जइण–बाल–अस्समम्मि	796
जइण–भयण–पसारणं	285
जइण–सक्किदीइ दाण	964
जइण–समायमुक्खेहि	566
जइणाण मूलभासं	1083
जइणेदरेहि ठविदं	1265
जं कं वि वदं गहिदं	1207
जं किंचिवि पस्सेमि दु	386
जंतणं च पंचिंदिय	683
जंबुदीव–पण्णत्तिं	244
जणगपुरि–जइण–मंदिर	478
जणपदस्स सुणेदुस्स	67
जण–भावा वि विसुद्धा	1263
जणवद–सम्मदि–ठवणा	668
जत्थ जत्थ गदं मए	370
जदा पदायिदं मज्झ	1056
जदि गहसि बे रोट्टगं	94
जदि दुट्ठ–जणो वदेज्ज	173
जदि पडिऊल–दसाए	1045

गाथा पाद	गाथा सं.
जदि सोहजुदो कयाइ	1058
जमसल्लेहणावयं	1163
जम्मि खे रायहंसो	1269
जयकित्ति–सूरिं–सिरी	1310
जयणायधिदिसेणा य	1292
जयपुर–रायट्ठाणे	770
जयिदु–मक्खमणिंदियं	1278
जवाहर–लालेणं पि	585
जस्सिं मग्गे सीहो	1267
जस्सिं संघे वुड्ढा	1008
जहण्णेण अज्जिगा दु	1074
जह बालो होदि जुवा	685
जह रक्खंति सगणिवं	686
जह लोयस्साहारो	662
जहवि आइरियो गुरु	1076
जहवि दुल्लहा लोए	450
जहवि परमेट्ठि–सुगुणा	1280
जहवि पुण्णजागरिओ	1157
जह विज्जत्थी विज्जा	1126
जह सरिदाए तीरे	681
जह सलिलं पवहेदि य	635
जाइ–कुल–रूव–धण	636
जा का वि अज्जिगा चिय	1073
जागरिओ भो णाणी	434
जाण संजमीण होज्ज	648

गाथा पाद	गाथा सं.
जाणेसि अहो सिस्सो	1052
जावइआ चदुगदीण	408
जावइयं पुण्णफलं	676
जावइय-सरल-सहजो	645
जावइयो सरलो जण	1096
जावदु चंदो अक्को	1317
जावदु तावदु जंघा	152
जावदु वक्कपवित्तिं	644
जा सुसक्कार-जुत्ता	923
जिणदेवा तित्थयरा	1222
जिणधम्मो बेविहो दु	453
जिणपूया-गुरुसेवा	26
जिणभत्ती गुरुसेवा	1183
जिणभवणं व संजमो	690
जिणमग्गरयणायरे	1270
जिणवर-गुणणुचिंतणं	1223
जिणसत्थाणुसारेण	1048
जिणसासणपहावगा	967
जिणसासण-पहावगं	1313
जिणसासण-पहावणं	740
जिणसासणपहावणा	1232
जिणसासण-सेवाए	894
जिणसासणे णिमित्तं	900
जिणसासणे पसिद्धा	983
जिणसुत्ताणं पढणं	220

गाथा पाद	गाथा सं.
जिणसुदमुणोहिं विणा	435
जिणागमम्मि सीलस्स	731
जिणाणा-पालणं संजम	228
जिणाणं स-चित्ते जो	226
जिण्णकुडीव सरीरं	1176
जीवविवागिं पोग्गल	1216
जीवादी-छद्दव्वा	231
जुगसेट्ठं जुगजेट्ठं	1312
जे के वि महापुरिसा	623
जे णो मणंति थावर	946
जे सिस्सा णियचित्ते	9
जेहिं धम्म-रक्खिदा	1081
जेहि वसणेहि जीवा	907
जोगठाणेहि जीवो	411
जोगसारं च समाहि	253
जो गहदि सुगुरु-सरणं	5
जो देहे अणुरत्तो	430
जो रयणत्तयजुत्तो	1272
जो साहू सग-अप्पे	660
जो सिस्सो पुत्तो वा	7
(झ)	
झाण-झेय-झादु-आइ	1148
झाण-णाण-तव-संजम	879
(ठ)	
ठविद-समण-जइण-भयण	284

गाथा पाद	गाथा सं.
ठविदा चंदणयरम्मि	575
ठविदुं तदा देवीअ	335
ठविरो हु संघंठिरं	1010
ठाइत्तु किंचि यालं	93
ठाएज्ज गुरु-अण्णाइ	829
ठाणं सोहकज्जस्स	353
ठाविदा उडीसाए	780
(ढ)	
ढिल्ली-मुक्खमंतिणा	782
ढिल्ली-रायगिहादो	366
(ण)	
ण को वि जीवो सक्को	621
णमंतो कहीअ जइण	567
ण मे असणं वसणं ण	421
ण मेत्तं जइणा णवरि	362
ण मेत्तं पुण्ण-देसं	348
णयचक्कं च परिक्खा	248
णर-देहो पंचिंदिय	970
णवजुलाई-उणवीस	737
णवदीए-चदुमासो	752
णवरोहदगमग्गम्मि	778
णववहूव सुसज्जिदे	506
णव-वास-पच्छा सिस्स	341
णव-समहिद-बेसहस्स	850
णवहाभत्तीइ दत्त	133

गाथा पाद	गाथा सं.
णवासीदि-वरिसे	750
णवुत्तर-बेसहस्से	843
ण सुविहाजणग-ठाणं	537
णह-परमेट्ठि-सण्णाण	1315
णाणज्झाणतव-रदो	1071
णाण-महत्तं कहिदं	910
णावड्ढण-उच्छवे	876
णाण-वड्ढणुच्छवस्स	350
णाण-साहणा-रदस्स	91
णाणस्स णाणदाणं	709
णाणीजइलसीहेण	572
णाम-धारग-पंडिदा	400
णायगर-अहिवत्ताण	482
णायालयुच्च-विज्जा	322
णारि-ठाण-कत्तव्वे	922
णारीइ धवलपक्खो	924
णिंद वंचणं पराभवं	999
णिग्गंथ-गंथमाला	986
णिग्गंथेणं तदा हि	771
णिच्चं तुमं सहायो	1217
णिच्छयसरणं लहिदुं	399
णिच्छयेण चेयणाइ	669
णिद्दिट्ठा वि तए बहु	1218
णिप्पयोजण-गमणं ण	169

गाथा पाद	गाथा सं.
णिब्भच्छेज्ज ण धम्मी	1030
णिब्भच्छेज्ज विदू णो	1092
णिमित्तणाणिणा तदा	33
णिय-दोसं संगच्छिय	269
णियभाव-पगासणाइ	131
णियोजिदं दइव-भग्ग	902
णिरंतरं सण्णाणे	911
णिरयाउ-बंधगो जह	701
णिरयाउ-बंध-हेदू	729
णिराकरीअ समाये	1029
णिरीह-वित्तीइ समिय	1145
णिव्वाणमहुच्छवम्मि	351
णिव्वाणमहुच्छवस्स	355
णिव्वाणुच्छववसरे	354
णिस्संगो णिम्मोहो	129
णीदि-विण्णाण-गंथं	264
णीरबिंदु-पडणेणं	1285
णीरं धोवदि पंकं	1277
णीरे चलिदु-मसक्का	678
णेमावरो गुणावा	1090
णेव असंजदाणं दु	223
णेव ताण सम्माणं	979
णेव तिरक्करेज्जा य	809
णेव धम्मणिरवेक्खो	958
णेव लंघेज्ज कया वि	1007
णेव समाय-विवाये	1038
णो करेज्ज जयगारं	1027
णो खंडेज्ज समायं	1032
णो चिंतदि पज्जायं	167
णो परिहरेज्ज धम्मं	1017
णो मे किंचिवि वत्थुं	714
णो मे बालावत्था	422
णोयडा-मंदिरादो	1155
(त)	
तए हि मे अत्थित्तं	846
तं जणाविदुं लिहिदा	951
तक्कालीण-मंतिवर	265
तच्च चिंतणम्मि रदो	1135
तच्चवियारं सारं	246
तत्थ अइरुइत्तादो	48
तत्थ एयदा गुरुणा	50
तत्थ जदि-पवयणेहिं	492
तत्थ दु बंभप्पा	95
तत्थ धम्मविरोहीहि	542
तत्थ सत्तवस्साणं	103
तदा गुरुवरो कहीअ	854
तदा जम्मसमयम्मि हि	28
तदा दहेज-कुरीदिं	367
तदा बेपडिमावदं	78
तदा विदियं अणसणं	547

गाथा पाद	गाथा सं.
तदा संपुण्णदेसो	99
तदा सिरि-खवगरायो	1251
तदो कुणसु पुरिसट्ठं	447
तद्दिणादो पहादे	51
तमाणंद-मणुभवेमि	1243
तरंगिणीइ तरंतो	43
तरंगिणीए चलिदुं	1268
तरु-ठिदीइ संवड्ढण	12
तरु-विड्ढी असंभवो	642
तव आणणस्स आभा	1188
तव चित्तम्मि उक्किट्ठ	1204
तव दंसणस्स बहुजण	1187
तव पुण्णेण सहस्सा	1190
तब संणासि-जीवणं	1201
तव समाहिं पस्संति	1192
तवसी उज्जमसीलो	1015
तविदाण भवकाणणे	3
तवो इच्छाणिरोहो	191
तस्स कदीओ कयावि	1266
तस्स णिच्छल-णिण्णयं	115
तस्स णिराउल-वदणं	1200
तस्स दंसणं णाणं	371
तस्स पवयणे मंती	260
तस्स विमल-परिणामं	1199
तस्स विमाणजत्ता दु	1257

गाथा पाद	गाथा सं.
तस्स सिस्सो अवि होज्ज	120
तहवि समग्गजीवणे	1161
तह संजमी साहगा	1127
ताइ उप्पण्णो सिसू	27
ताइ सोहपबंधस्स	297
ताए विसये लिहिदा	949
ताडपत्तगंथाणं	532
ता सव्वा लहिदूण वि	451
ति-अहिय-बेसहस्स	805
तिउत्तरबेसहस्से	810
तिउत्तरबेसहस्से	816
तिजारादो अहिंसा	847
तिजोग-पवित्ती होदि	640
तिण-कंडग-फासेणं	183
तिण्णि-वस्स-पच्छा पुण	77
तित्त-कसायंब-कडुअ	137
तित्थ-मिद-महदुल्लहं	939
तित्थयर-वड्ढमाणे	915
तित्थयराण सव्वाण	1028
तिदियभावे गुरुदो	32
ति-फरवरीइ देविंद	551
तिमासिग-पत्तिगाए	749
तियकोस-दीह-जत्ता	363
तिरियो वा णेरइयो	425

गाथा पाद	गाथा सं.
तिलतुसमेत्तं संगं	147
तीस-दिसंबरम्मि चिय	793
तुमं अप्प-परिणामं	1177
तुमं चिंतसि उवदिससि	1210
तुमं दंसणविसुद्धिं	1203
तुमं दीहयालंतं	1175
तुमं सया हि पस्सेमि	1236
तेरसणवंबरम्मि य	357
ते वर-तारगा अथ	42
तेवीसइम-तित्थयर	981
तेहिं विणिम्मिदं सिद	861
(थ)	
थावरा सव्वलोए	671
थुदि-आइ-मुद्दिगाए	270
थुदिं वंदणं समदं	611
(द)	
दइणिग-पवयणेहि सह	279
दइव-पुरिसत्थ-णामय	901
दंसण-णाण-चरिय-तव	211
दंसण-णाण-चरिय-तव	610
दंसमसगाइ-कीडा	163
दक्खिण-भारद-सहाइ	544
दव्वस्स गुण-णाणेण	394
दसलक्ख-णरणारीहि	755

गाथा पाद	गाथा सं.
दसविहं समणधम्मं	614
दस-समहिद-बे-सहस्स	858
दहविहं सम्मत्तं दु	1113
दाएज्ज परामस्सं	1031
दाएज्ज वच्छलं चउ	997
दाएज्ज संबोहणं	1213
दाणं च विस्सपसिद्ध	980
दाणदायग-पंतिं च	281
दाणवाडम्मि गहिदा	47
दायिदं पडिउत्तरं	604
दायिद-मप्पेलेगे	849
दायिदा तेण आसी	1167
दायिदा पणवीसाण	299
दायिदो पुरक्कारो	855
दायिय वदं तेहि सह	890
दिक्खथीणं करेज्जा	1054
दिक्खाए दु पणवण्ण	787
दिग्घयालीणणुभवी	1011
दिढं अज्झप्पणाणे	1047
दिणे अक्कोव्व महीइ	936
दियंबरजइण-साहित्ते	942
दियंबरत्तं णिएज्ज	307
दिवसे संझायाले	1169
दिस्संति पूद-पावा	58

गाथा पाद	गाथा सं.
दीह-पवासे मुणिस्स	334
दुमुणिदिक्खं दायिदुं	862
दुहं दायिदुं सक्को	619
दुहतिसाविणडियाणं	2
दूरदंसणेण पढम	287
दूरदिट्ठा अप्पा	54
देज्ज उवज्झायपदं	804
देज्ज अस्सासणं सा	821
देज्ज सव्वसिस्साणं	1019
देवगदीए जीवो	410
देवणंदि-सिरिदत्ता	1298
देव-रयण-सेलेसुं	730
देविंदकित्ति-भट्ठारग	104
देस-अणुव्वद-रूवो	454
देस-गउरव-सुरक्खग	66
देसभूसण-सूरिस्स	338
देसमुहेणं लिहिदं	583
देसवदी सिवमग्गे	680
देस-विदेसेसुं तव	1182
देसस्सत्थववत्था	584
देसस्स विदू गुरुकुल	557
देहं सिहिलं पस्सिय	1159
देहसम-परिहरणत्थ	153
देहस्स उण्हयाले	160
देहादीदु णिरीहो	150

गाथा पाद	गाथा सं.
देहादु णिप्पज्जीअ	1141
देहादु ममत्तभाव	143
देहो ण मे सहावो	146
देहो य किसो करिदो	1131
दोणगिरी सउरीपुर	1089
दोसहस्सेगवासे	798
(ध)	
धण-लोही णेव लहदि	657
धम्मं रक्खेदुं लहु	937
धम्मं वड्ढेदुं कट्ठं	215
धम्मखेत्तम्मि मुत्ती	976
धम्मज्झाणे णिसा	1174
धम्मज्झाणेण विणा	194
धम्मदसलक्खणा सय	926
धम्म-पाणो दु सच्चं	665
धम्म-पेम्माणुरायं	1098
धम्मफल-धम्मेसु	210
धम्मसहाए कयावि	1004
धम्मसहाए णिच्चं	1006
धम्माधम्मा याला	672
धम्मि-ववत्थावगेहि	757
धम्मे धम्मफलम्मि य	1211
धूगो पस्सिदु-मक्कं	700
(प)	
पउम-वीर-वज्ज-बंभ	202

गाथा पाद	गाथा सं.
पंचणवदि-वरिसे पुण	765
पंचपरमेट्ठि-झाणं	1137
पंचविहा चूलिगा दु	379
पंचसद-विज्जालया	594
पंचामिय-अहिसेगो	525
पंचायार-परायण	1068
पक्खमासुववास	189
पक्खालिदुं समत्थो	650
पक्खी पसू य मच्छा	677
पच्चक्खाणं विज्जा	381
पच्छा इंदोरादो	330
पच्छा भारदिं वयं	845
पच्छा महुच्छवस्स दु	466
पजलेदु णाणदीवो	930
पडिवज्जिदा दु मुणिणा	314
पडिवेसिओव्व देहो	1064
पढमं करेज्ज मंदं	436
पढम-कामदेव-बाहुबलि	952
पढममुवसंतमोहे	236
पढमाणुजोगम्मि बहु	624
पढिय अणेग-सत्थाणि	70
पण अहियए-बेसहस्से	839
पणपरमेट्ठी ताणं	397
पणरस-वीस-सहस्सा	258

गाथा पाद	गाथा सं.
पणलक्खरासी तहा	856
पणवीस-जणवरीदो	529
पणवीससयम-णिव्वाणु	325
पणायारं पालिदुं	1224
पणुत्तरबेसहस्से	840
पण्णासम-दिक्खा-दिण	516
पण्णासाहिय-पागद	987
पत्तदाणेण जीवो	708
पत्त-मुणिवर-असीइ	313
पत्ताहार-दाणं दु	80
पत्तेयं साहू णो	1067
पत्थीअ तक्कालम्मि	110
पदं पदिट्ठं पूयं	1039
पदत्ताण-हीण-मुणी	168
पमाणपत्त-पदविगा	768
पमादजुदो ववहार	455
पमाद-पोसगो विसय	998
पमेयरयणमालं च	249
परणिंदाए जीवो	1077
परभावा य पदत्था	716
परमट्ठिय-णय-णाणं	426
परमट्ठेणं सुद्धो	719
परमतवो सज्झाओ	222
परमधम्मो अहिंसा	724

गाथा पाद	गाथा सं.	गाथा पाद	गाथा सं.
परमेट्ठि-रक्खगो	1046	पहावी-पवयणेहिं	320
परमेट्ठीसु गुणा	1114	पहुच्चंते चदुविहा देवा	802
परवत्थुगहणभावो	720	पहुच्चीअ मुणि-णियडं	268
परिकम्मं पंचविहं	378	पागद-अज्झयणस्स दु	769
परिग्गहो अहमूलं	918	पाढग-परमेट्ठीणं	373
परिग्गहो दु बीअं व	917	पाढग-विज्जाणंदो	383
परिसद-भवण-दियंबर	871	पाढगो सुददेवदा	1227
परेड-मइदाणे-भव्व	117	पाणवाउं विणा जह	655
परोक्ख-परमुवयारिं	1309	पायच्छित्तं विणओ	206
परोप्परम्मि किड्डीअ	41	पायच्छित्तं विणयं	609
पवयणकिदी अग्गी य	945	पारंभे सो करेज्ज	1133
पवयणत्थं मुणिवरो	262	पारसदेवं कणगामरं	1307
पवीण-किड्डालू सो	44	पालेज्ज खमाभावं	1103
पसण्णभावं अगाह	118	पावकम्मक्खयेदुं	144
पसम-संवेग-अत्थिग	1185	पावकम्म-मुवसमिदं	75
पस्स णिण्णयसायरो	1104	पावण-तित्थवंदणा	819
पस्सिय फासुग-ठाणं	135	पिंडत्थाइ चउविहं	1336
पस्सिय मुणि-णेउण्णं	263	पिच्छिकमंडलु-णामय	898
पस्सिय सासणेण तं	860	पिथगत्तं वितक्कं च	237
पस्सिय सूरिं चरियं	76	पीद-पउम-सुक्क-लेस्स	1262
पहाणमंति-मोरार	461	पुज्जगुरुवरचरणेसु	1260
पहाणमंतिस्स देज्ज	739	पुढवी अवि णंदेज्जा	1246
पहाणा खिप्पिदा जिण	546	पुण ताउ वग्गणाउ हि	405
पहादे णादे गाम	64	पुण तिण्णि-पाढगाणं	887

गाथा पाद	गाथा सं.
पुण विहरंतो समणो	491
पुणो ताए रूसीइ	857
पुणो सावगेहिं जह	573
पुण्णं णेव सस्सदं	396
पुण्णदेस-महुच्छवो	515
पुण्णो-कुंभो अग्गे	510
पुप्फदंत-भूदबली	1296
पुप्फाणं सामिप्पं	17
पुरातच्चविदूहि	961
पुरिसायारो लोओ	446
पुव्वणुपुव्विं पच्छा	1138
पुव्वपावोदयादो	1041
पुव्वबद्ध कम्माणं	442
पुव्वाणं भद्दबाहु	1026
पोग्गलेण सह अप्पा	718
(फ)	
फरीदाबादे जिणालय	848
(ब)	
बंभप्पेणं कहिदं	96
बंभमुहुत्ते सासण	1252
बंभी-संगीद-समयसारो	896
बंभो तिलोयपुज्जो	728
बद्दि-विसाले विसाल	303
बप्पदेव च कुमार	1295

गाथा पाद	गाथा सं.
बलिं अप्पघादादिं	743
बहिरंतर-भेयादो	192
बहु-अज्झप्प-गीदं दु	1196
बहुअ-रायणीदि-दलं	540
बहुजणसंपक्कं सो	1147
बहुतवं वि किच्चा जदि	180
बहु-तुडी अवि संभवा	1314
बहुदोहग्गवंता दु	35
बहु-पत्त-पुप्फ-फल-जुद	641
बाणउदि-वरिसे वि	762
बारसंगाणं अंस	374
बारस-घडि-पज्जंतं	1134
बारसम-दिट्ठिवादं	377
बारसाणुवेक्खा सय	1125
बारसुत्तर-दुसहस्स	864
बालणंदिं तह मल्लि	1306
बालवत्थाए हि सो	68
बावणगजा-णामेण	754
बावण्ण-पिच्छधारग	1178
बावीस-परीसहा दु	190
बावीस फरवरीए	526
बासीदीए करिदो	535
बाहुबलि-रायहाणी	973
बे आरक्खगा तदा	264

गाथा पाद	गाथा सं.
बेजूणम्मि विहरीअ	309
बेदिणं हु गवेसिदं	576
बेलगामे पवेसो	504
बेसहस्स-ईसवीइ	789
बेसहस्स-ईसवी दु	781
बेसहस्सट्ठवासे	841
बेसहस्स-पणारस	870
बेसहस्सबारसवासे	875
बेसहस्सबेवासे	803
बोहि-समाहि-णिहाणं	1132
(भ)	
भगवदि-आराहणं च	243
भत्तिरस-अंगूरो दु	904
भद्दपद-पुण्णिमाए	1133
भमं णिवारिदु-मणेग	897
भवण-जिण्णुद्धारो य	751
भवणं पमुहो केंदो	784
भव-तण-भोय-विरत्तो	164
भव-दुक्खणासगा गुरु	1273
भव-भमण करंताणं	440
भवभमणं णासेदुं	693
भव-भमणस्स कारणं	651
भववड्ढगकारणादु	165
भविस्सवाणी सफला	473

गाथा पाद	गाथा सं.
भव्वजत्ता-उच्छवो	360
भव्वा कल्लाणत्थं	1202
भारदं अणादीदो	20
भारदगोरवं गुरुं	1022
भारद-गोरवाइरिय	119
भारददेस-विआसो	523
भारद-रायहाणीइ	1316
भारद-सक्किदिं णरत्तं	283
भारदिं च पहुच्चीअ	1152
भारदीए ठाएज्ज	878
भारदीए तीस-इग	791
भाव-मोक्ख-परिणामं	1239
भासा-अज्झयणे रुइ	45
भासिदं मुणिणा तदा	471
भिण्ण-भिण्ण-भाव-जुदा	639
भू-ठिद-वत्थुं गहिदुं	634
भूमीए विराजित्तु	1250
भो अंतेवासी!	1033
भो खवगराओ! तुमं	1189
भो खवगराओ! तुमं	1180
भो णिण्णयसायरो!	825
भो सिस्सो! पालेज्जा	1061
(म)	
मइ अज्जिद-कम्मफलं	416

गाथा पाद	गाथा सं.	गाथा पाद	गाथा सं.
मईम्मि चिय एगारस	872	महाविलासिअम्मि तह	1037
मंगल-वक्खाणं चिय	795	महावीर-जयंदीइ	467
मंगलस्स भव्वाणं	963	महावीर-जिणालये	480
मंगल्लवज्जेहिं सह	1258	महावीर-णिव्वाणुच्छवस्स	340
मंस-मज्ज-सेवणं च	908	महावीरुवण्णासं	333
मग्गसिर-वदि-दसमीइ	368	महासत्तिसंपण्णो	38
मज्जादं अइवत्तिय	1005	महुच्छव-अज्झक्ख	486
मज्झ दव्वकम्मं णो	423	महुच्छवुग्घाडो णव	111
मज्झपदेसस्स मुक्ख	483	महु-पहुदि-पदत्थोव्व	437
मज्झ वदं णिद्दोसं	145	महुरकंठेण पढीअ	141
मणवयणकायगुत्ती	612	महुर-तित्त-कडु-कसाय	198
मण्णंति के वि सूरी	235	माणागामं पुण बारस	308
मण्णंति सच्चरूवं	666	माणिक्कणंदिं धम्म	1302
मण्णित्ता जगजणणी	125	माणो कुणदि जीवस्स	628
मण्णेज्ज अदियारं पि	1208	मादंगो अवि पुज्जो	736
मद्दव-मप्पसहावो	627	मादामही-गिहे सो	46
मम पच्चक्ख-गुरु-सिरी	1311	मादु-पबलभावणाइ	34
मरणादु अहियकट्ठं	179	मिच्छत्ताइ-वसेणं	403
मरहट्ठ-भासाए हु	501	मिच्छत्ताविरदि-जोग	432
महप्प-गंधिम्मि जइण	589	मित्ति-पमोद-कारुण्ण	1097
महप्पीसा-खादस्स	947	मित्तेण सेडवालं	72
महरट्ठ-मुक्खमंती	593	मिलाविदो मिच्छासिद्धंतो	941
महातित्थोव्व णयरी	581	मुंच भारदं दु देस	62
महामहुच्छवस्स जण	518	मुक्ख-आदिहीइ तस्सिं	877

गाथा पाद	गाथा सं.
मुणि-गुत्तिसायरस्स दु	884
मुणिपाणोव्व संजमो	1014
मुणि-पेरणाइ ठाविद	783
मुणिवयणेहि सुरिंदो	82
मुणिवर-णिद्देसेणं	490
मुणिवर-पुरिसट्ठेणं	259
मुणिवर-विज्जाणंदो	459
मुणिविज्जाणंदेणं	239
मुणिव्वदं जाणित्ता	1099
मुणीवरो उवट्ठिदो	469
मुणी सुसील-कुमारो	601
मुत्तं विणा सिप्पीव	729
मुत्तिदूदस्स लेहग	332
मुत्ति सुंदरिं गहिदुं	707
मुत्तिसुंदरीए सह	721
मुंबई-बोरीवल्लि	559
मूडबिद्दीए तदा	534
मूलगुणट्ठवीसा दु	157
मूलायारं मूला	242
मे अप्पा सिद्धोव्व हि	1172
मे अप्पे णण्णप्पा	424
मेरठाणंदपुरीइ	813
मोक्खमग्गस्स पहाण	438
मोक्खमग्गीण पढमं	444

गाथा पाद	गाथा सं.
मोक्खं लहिदु-मसक्को	679
मोण-साहणं जिणगुण	1142
मोदगं खिल्लणं जह	1144
मोहणजोदडो जइण	959
मोहोवसमे खीणे	234
(य)	
याले याले दायिदा	993
यूणेक्केणं दु विस्स	794
(र)	
रक्खिदुं संभालिदुं	105
रट्ठ-संतस्स समाहि	1254
रट्ठीय-गुरुकुल	554
रत्तीइ पढम-पहरे	1247
रत्तीए चउप्पहे	63
रत्त-जिणालय-कलसा	868
रयणत्तय-णिमित्तं दु	934
रयणत्तय-फलरूवं	921
रयणत्तयबलेणं दु	654
रयणत्तयं हु धम्मो	15
रयणत्तयविड्ढीए	154
रयणत्तय-सरिदाए	149
रयणपुरी सउरीपुर	1087
रस-साद-इड्ढि-गारव	637
रागेणं त्थी-रूवं	166

गाथा पाद	गाथा सं.
राम-जीवण-चरित्ते	321
रायदोस-णिवत्तीइ	136
रायदोसमलिणप्पा	920
राय-दोसेहि बुद्धदि	431
रायद्दोसं खयिदुं	1016
रिणमोयणं व चिंतदि	620
रिणमोयणं व णियमा	171
रुक्ख-मूलं दु बीअं	659
रुक्खेसु जीवत्थित्त	982
(ल)	
लक्खजणा मेलंते	579
लक्खाहिया सावया	570
लहदि जहण्णाऊदो	409
लहदि संजमुवयरणं	711
लहिदुं विमलसमाहिं	1122
लाल-बहादुर-सत्थी	767
लिहिदा किदी य सातंतं	956
लोए छद्दव्वा बहु	393
लोगे ण पदेसेसो	406
लोगे मण्णदे गुरू	14
लोयम्मि कं वि पावं	674
लोय-ववहारे सव्व	646
लोह-सेट्ठो ण कया वि	656
लोही ण लहदि कया वि	658

गाथा पाद	गाथा सं.
(व)	
वइसालि-जणपद-णाम	774
वंदणाए पेरणं	1091
वक्कगदीए चलदे	643
वच्छलपव्वो वि	933
वच्छल्लेण इगदिणे	835
वण्णिदं लहुकिदीए	932
वत्ता कुणिदा सासण	545
वदसमिदिगुत्तिजुदाण	443
वयणसुद्धीइ हेदू	935
वयणादीदा णियमा	1119
वयं संगच्छेज्जा	347
वयं सिहेज्ज देसस्स	346
वर-आकिंचण-धम्मो	722
वरणंदं गहिदुं हं	1288
ववत्थाण दायित्तं	301
ववसायाइ-खेत्तेसु	323
ववहारकुसलो महा	37
ववहार-णिच्छय-णयो	772
ववहार-पहावणादुवरि	994
ववहार-रयणत्तयं	1065
ववहारे सच्चं दह	667
वसंतदादापाडिल	596
वसुणंदि-मरिहसेण	1301

गाथा पाद	गाथा सं.
वस्सम्मि उणवीस-सय	460
वस्साजोग-पच्छा हु	286
वस्साजोगो करिदो	766
वस्साजोग्गं किच्चा	102
वस्सिग-मेलयस्स	578
वस्से वासीदीए	528
वा पण-छ-वासाउ	57
वाहणं रोहगोव्व य	688
विआरो वित्थारेण	487
विइडिणासग-संजमो	699
विंतर-बाहा-पीडिद	1110
विक्कमी मेसरासी	29
विज्जंत-पुण्णवंता	527
विज्जंत-रावलेणं	305
विज्जंता तिलोयम्मि	404
विज्जाणंद-सूरी वि	1025
विज्जालय-आदीसुं	274
विड्ढीए झाण-णाण	216
विणदो सया समत्थो	631
विणयंजली अप्पिदा	474
विणयभत्ति भावजुदो	90
विणय-संपण्णभावं	1206
विणा गुरुकिवाए णो	11
विणा रयणत्तयेणं	695

गाथा पाद	गाथा सं.
विणा सगपुण्णेणं दु	395
विण्हुं णंदिमित्त	1291
वित्तिं कुणदि जो कट्ठु	200
वित्तिपरिसंखाणं	201
विदुपरिसदो परिसदो	992
विम्हरेज्ज किदं सुहं	1106
वियडिं णिराकरेदुं	968
विरत्तमणेण करिदुं	225
विरागी मोक्खकंखी	1060
विसयविरत्तीइ विणा	726
विसालदिट्ठीइ सम्म	940
विसिट्ठ-णाण-संजुदे	186
विस्मधम्म-दसलक्खण	925
विस्सधम्मस्स मंगल	927
विस्ससंतिठावणा दु	365
विस्ससस्स पाईण	960
विस्से विज्जंतणेग	913
विहरंतो पहुच्चीअ	266
विहरीअ मेरठं पडि	337
विहागो दु भारदीय	298
विहारदिणे सुरिंदो	86
वीयराय-देवस्स दु	1171
वीर-पहु-किदीए चिय	969
वीरसेणं सिरिधरं	1304

गाथा पाद	गाथा सं.
वीस-तीस-सहस्सेहि	745
वीसफरवरीइ पत्त	519
वीसम-सयद्दीए दु	553
वेज्जागंथं आगम	252
वेज्जावच्चं करिदुं	1221
वेण्हव-विज्जालयस्स	324
वेरग्गुप्पत्तीए	384
(स)	
संकराइरियासणे	306
संकिलिट्ठ-परिणामा	159
संकुचिय गमणागमण	1146
संगहणुग्गह-कुसलो	1012
संगीदे रुइवंतो	39
संघस्सं सहंताण	1082
संघाहार-गणहरो	1009
संजम च पालंतो	1219
संजम तवं झाणं	1063
संजमं तवं धम्मं	1044
संजम विणा साहू	1013
संजमधम्मेण विणा	689
संजमविड्ढीइ खेद	214
संजमो पालिदो मुणि	1130
संझासु संतमणेण	1170
संतभवणणामो वयं	814
संतिसायर-अस्समे	49
संपइयाले सूरी	1264
संपुण्ण-तव-सारो दु	1151
संबोहिदा सहा चिय	582
संवच्छरिय-अवही दु	561
संवर-जुद-णिज्जरा हि	441
संसारतावहारग	697
संसार-दुहं पस्सिय	414
संसारवड्ढग-सव्व	1215
संसारी सुवदि देह	172
संसारेण सह चरदि	114
सक्केदि खमं करिदुं	633
सगअप्पे हि णिवसेज्ज	128
सगजम्माइ-उच्छवं	801
सगपय-अणुसारेणं	1049
सगपरमप्पाणुभूदि	727
सगप्पगुणदाहगा य	638
सगप्प-सुद्धगुणा चिय	174
सग-भावाणुसारेण	402
सगसत्ति-अणुसारेण	1214
सगसुद्धप्प-मणुभविदु	1121
सगसुद्धप्पं मुणित्तु	427
सगहंतुं वि णो हणदि	1050
सगहिद-भावणं विणा	221

गाथा पाद	गाथा सं.
सगावसिय-कत्तव्वं	1230
सच्चं विस्साहारं	126
सच्चेण ठिदा णिरये	670
सज्जणस्स सामिप्पं	18
सज्झाओ साहणा य	97
सडखंडागमगंथ	255
सड्ढाए विणा धम्म	462
सड्ढापत्त-मप्पिदं	517
सणिअं सणिअं दु कुंथु	69
सण्णाण-पगासणाइ	213
सण्णाणवड्ढगा पुण्ण	1274
सत्तदसवस्स-पच्छा	498
सत्त-मई ऊणवीस	300
सत्तरस-णवंबरम्मि	475
सत्तावीस-जुलाई	512
सत्थं वण्णवत्तिगा	1057
सत्थ-जंतागारम्मि	60
सत्थ-मज्जादाइं दु	123
सदाहिय-चरिय-गंथा	240
सद्दिट्ठि-खेतवालो	978
सद्धम्मपहावणाइ	1094
समणसक्किदी दीवावली	957
समय-मुल्लो लहुकाय	906
समयसार अट्ठपाहुडाइ	1195
समयसाराइ-गंथा	1105
समयाणुसारेण	1102
समयेगे उवओगो	1109
समायब्भुदयस्स तह	331
समाया पणोल्लेज्जा	1042
समाहाण-दायगा दु	1118
समाहि-आयंसविही	1191
समाहीइ अप्पविहव	1128
समीवत्थ-णयरेसु	278
सम्मत्त-जम-वदेसुं	209
सम्मत्तणाणचरियं	1205
सम्मत्तं सण्णाणं	632
सम्मत्तसमिदिगुत्ती	439
सम्मत्त-सहिदा परम	948
सम्मत्ते संजमे य	1160
सम्माइट्ठी सक्को	1165
समयं जवं कुणंतो	1173
सययं पुप्फविट्ठी दु	361
सयलसंजमं जीवण	1207
सयायारं अहिंसं	588
सरयू-दफ्फरीए	541
सरयू-दफ्फरीय दु	563
सरस्सदी देवी	25
सरीर-मामयालयं	429

गाथा पाद	गाथा सं.
सल्लेहणा-यालो य	1124
सवणबेलगोलं बे	836
सवणबेलगोलाए	507
सव्वं पडि विअक्खीअ	1249
सव्वं रोयं सोगं	218
सव्वजण-हिदकारगं	1107
सव्वजणाण-मुवओगि	914
सव्वजणा संतुट्ठा	1255
सव्वजणिग परिसरम्मि	289
सव्वजीवेसु अप्पा	664
सव्वणंदिं सिरिलोय	1300
सव्व-णिवेदणे समण	344
सव्वतवा पकुव्विदा	205
सव्वदव्वा अणिच्चा	385
सव्वदियंबर-मुणीण	155
सव्वधम्मिणो पडि सय	1235
सव्व-पाईण-पागद	738
सव्व-भवदुहकारणं	229
सव्व-मंचासीणाहि	343
सव्वसंग-मुज्झित्ता	224
सव्व-संपदायाणं	339
सव्वसाहूणं देज्ज	1229
सव्वहिदं कंखदि जो	1062
सव्वुक्किट्ठ-खमा चिय	617
सव्वुदय-तित्थभूदो	938
सव्वेहि-मणुमण्णिदं	356
सहगारी विहारम्मि	302
सहसा आवित्तु गुरु	881
सहसा घुरुक्कंतेहि	1245
सहसा देवीअ अत्थ	316
सहस्सजणा आवीअ	550
सहस्सद्द-उच्छवस्स	464
सहस्सद्दि-मुच्छवस्स	472
सहस्सद्दि-मुहुच्छवो	773
सहा जम्मजयंदीइ	592
सहायी दीण-दुहीण	56
सहारणपुरे वस्से	292
सागाहारो गहिदो	564
सागाहारो दत्तो	571
सातंत-पेम्मी राय	53
सादिरिक्खम्मि पदिदो	1281
सायत्तं कराविदं	971
सायं सत्तवायणे	470
सावण-सुक्क-पणमीइ	116
सावया साविया अवि	1123
सासण-साउज्जेणं	485
सासणस्स कत्तव्वं	597
साहम्मिं साहुं पडि	1095

गाथा पाद	गाथा सं.	गाथा पाद	गाथा सं.
साहम्मी वच्छल्लं	1234	सुक्क-मिदिगा ण सक्का	630
साहु-णिवेदणेण	280	सुक्किदूहि सह तस्स	31
साहु-संतिपसादेण	533	सुगंध-दुग्गंधा बे	138
साहू कहीअ सामी	112	सुणित्तु तस्स पत्थणं	85
साहूण संगडमिदं	859	सुतव-विड्ढीए णूण	197
सिक्खाए खेत्तम्मि दु	595	सुत्तं गंथिजुदं चिय	647
सिक्खावीअ सिस्साण	995	सुद्धप्पज्झाण-रदा	1150
सिग्घं यालो जवीअ	59	सुद्धप्प-णिस्सिद-सहज	1149
सिद्धंतचक्की सिआवाय	929	सुद्धसमय-अणुभूदिं	1051
सिद्धचक्किदधया य	892	सुद्धुवजोग-संजुदो	661
सिद्धभूमिवंदणेण	817	सुपहावणा गुंजिदा	275
सिद्धाइ-भत्तिं-कडुअ	1164	सुप्पसिद्धो मुणिंदो	261
सिमोगा-कण्णाडम्मि	107	सुमरंतो कहीअ सो	1024
सिरिगुरुजीवण-चरियं	4	सुरिंदस्स वरमित्तं	40
सिरिणयरे चउमासो	310	सुरिंदस्सेग-भादू	36
सिरी मुणि-सण्णिहीए	293	सुविसुद्धि-बोहि-समाहि	1194
सिव-हेदू जिणसमये	903	सुसत्ति-सुंदरिमाए	524
सिवाविज्जापीठेण	500	सुसावय-साहु-केवलि	452
सिस्सस्स गुरुकिवा चिय	13	सुहजम्मजयंदीए	873
सीदयालम्मि सीददि	161	सुहणाम-मुच्चगोदं	219
सीयलत्तं जह णीर-धम्मो	691	सुहणामो भवणस्स	815
सीलेण सुक्क-रुक्खो	733	सुहभावं भावेमि हु	605
सुंदर-झाणकेंदो वि	776	सुहभावेहि आगदं	1043

गाथा पाद	गाथा सं.
सुहरुक्खस्स फलं सुह	1035
सुहसिक्ख सक्कारं	1055
सूदग-पादग-विहिं च	1080
सूदग-पादग-विही दु	974
सूरि-आसीवायेण	985
सूरि-जसोबाहु	1297
सूरि-देसभूसणेण	369
सूरि-देसभूसणेण	602
सूरि-पेरणाइ तदा	893
सूरि-विज्जाणंदेण	626
सूरि-विज्जाणंदेण	756
सूरि-विज्जाणंदेण	851
सूरिसंतिसायरस्स	100
सूरी धम्मविड्ढीइ	1018
सूरी विज्जाणंदो	16
सूरुच्चो मेसत्थो	30
सेट्ठ-उवज्झाय-पदं	885
सेट्ठ-भवतरणी-कला	943
सेट्ठ-साहुस्स इड्ढिं	181
सेट्ठि-भागचंद-सोणि	294
सेदूव सुतव-धम्मो	694
सेदेण गहिद-रजेण	184
सो दु रायणीदिण्हू	79
सोलस-कत्तिग-मासे	746
सोलसजूण-णवणउदि	786
सोलस-वस्साउम्मि दु	61
सोलसे भव्वसोहा	358
सोहग्गवदि-णारीहि	536
सोहाजत्ताए सह	304
(ह)	
हं भोत्ता णियमेणं	415
हत्थिणायपुरे तदा	867
हरिदुवण-ढिल्लीए	763
हरिदुवण-ढिल्लीए	785
हिंदि-भासं सिक्खिदुं	328
हीणकुलसंबंधिदो	1059
हीरग-जयंतीए दु	792
होज्ज सायर-सम्मुहे	494
होदि कट्ठं जदि तो वि	203
होही सुणाण-वत्ता	109

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा

रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

(प्राकृत साहित्य)			
क्र.सं.	नाम	क्र.सं.	नाम
1.	प्राकृत वाणी भाग-1	2.	प्राकृत वाणी भाग-2
3.	प्राकृत वाणी भाग-3	4.	प्राकृत वाणी भाग-4
5.	अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)	6.	अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
7.	अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)	8.	जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र)
9.	जदि-किदि-कम्मं(यति कृतिकर्म)	10.	णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)
11.	णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)	12.	तच्चसारो (तत्त्व सार)
13.	धम्म सुत्तं (धर्म सूत्र)	14.	अप्प-विहवो (आत्म वैभव)
15.	सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)	16.	अप्पणिब्भर-भारदं (आत्मनिर्भर भारत)
17.	विज्जा-वसु-सावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार)	18.	रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)
19.	अट्ठंग जोगो (अष्टांग योग)	20.	णमोयार महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)
21.	मूल-वण्णो (मूल वर्ण)	22.	मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र)
23.	विस्स-धम्मो (विश्व धर्म)	24.	विस्स-पुज्जो-दियंबरो (विश्व पूज्य दिगम्बर)
25.	समवसरण सोहा (समवसरण शोभा)	26.	वयण-पमाणत्तं (वचन प्रमाणत्व)
27.	अप्पसत्ती (आत्म शक्ति)	28.	कला-विण्णाणं (कला विज्ञान)
29.	को विवेगी (विवेकी कौन)	30.	पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)
31.	तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)	32.	रयणकंडो (सूक्ति कोश)
33.	धम्मस्स सुत्ति संगहो	34.	कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)
35.	खवगराय सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)	36.	सिरि सीयलणाह-चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)
37.	अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)	38.	समणायारो (श्रमणाचार)
39.	असोग-रोहिणी-चरियं (अशोक रोहिणी चरित्र) (महाकाव्य)	40.	लोगुत्तरवित्ती (लोकोत्तर वृत्ति)
41.	समणभावो (श्रमण भाव)	42.	झाणसारो (ध्यानसार)
43.	इड्ढिसारो (ऋद्धिसार)	44.	जिणवयणसारो (जिनवचनसार)
45.	भत्तिगुच्छो (भक्ति गुच्छ)	46.	पसमभावो (प्रशम भाव)
47.	सम्मेदसिहर महप्पुरो (सम्मेदशिखर महात्म्य)	48.	अम्हाण आयवत्तो (हमारा आर्यावर्त्त)
49.	विणयसारो (विनय सार)	50.	तव-सारो (तप सार)
51.	भाव-सारो (भाव सार)	52.	दाण-सारो (दान सार)
53.	लेस्सा-सारो (लेश्या सार)	54.	वेरग्ग-सारो (वैराग्य सार)
55.	णाण-सारो (ज्ञान सार)	56.	णीदि-सारो (नीति सार)

टीका ग्रंथ			
1.	प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)	2.	वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3.	नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)	4.	श्रीनंदा टीका-सिद्धिप्रिय स्तोत्र (संस्कृत)

इंग्लिश साहित्य			
1.	Inspirational Tales Part& 1&2	2.	Meethe Pravachan Part-I

वाचना साहित्य			
1.	मुक्ति का वाग्दान (इष्टोपदेश)	2.	बोधि वृक्ष (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
3.	शिवपथ का रथ (सामायिक पाठ)	4.	स्वात्मोपलब्धि (समाधि तंत्र)
5.	श्रावकधर्म-संहिता (रत्नकरण्ड श्रावकाचार)		

प्रवचन साहित्य			
1.	आईना मेरे देश का	2.	उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3.	उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)	4.	उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दुःखदानी)
5.	उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)	6.	उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7.	उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)	8.	उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9.	उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)	10.	उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दुःख ही मानो)
11.	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)	12.	खुशी के आँसू
13.	खोज क्यों रोज-रोज	14.	गुरुत्तं भाग 1
15.	गुरुत्तं भाग 2	16.	गुरुत्तं भाग 3
17.	गुरुत्तं भाग 4	18.	गुरुत्तं भाग 5
19.	गुरुत्तं भाग 6	20.	गुरुत्तं भाग 7
21.	गुरुत्तं भाग 8	22.	गुरुत्तं भाग 9
23.	गुरुत्तं भाग 10	24.	गुरुत्तं भाग 11
25.	गुरुत्तं भाग 12	26.	गुरुत्तं भाग 13
27.	गुरुत्तं भाग 14	28.	गुरुत्तं भाग 15
29.	गुरुत्तं भाग 16	30.	गुरुत्तं भाग 17
31.	गुरुत्तं भाग 18	32.	चूको मत
33.	जय बजरंगबली	34.	जीवन का सहारा
35.	ठहरो! ऐसे चलो	36.	तैयारी जीत की
37.	दशामृत	38.	धर्म की महिमा
39.	ना मिटना बुरा है न पिटना	40.	नारी का धवल पक्ष
41.	शायद यही सच है	42.	श्रुत निर्झरी
43.	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा	44.	सीप का मोती (महावीर जयंती)
45.	स्वाती की बूँद		

हिंदी गद्य रचना			
1.	अन्तर्यात्रा	2.	अच्छी बातें
3.	आज का निर्णय	4.	आ जाओ प्रकृति की गोद में
5.	आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान	6.	आहारदान
7.	एक हजार आठ	8.	कलम पट्टी बुद्धिका
9.	गागर में सागर	10.	गुरु कृपा
11.	गुरुवर तेरा साथ	12.	जिन सिद्धांत महोदधि
13.	डॉक्टरों से मुक्ति	14.	दान के अचिन्त्य प्रभाव
15.	धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)	16.	धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17.	निज अवलोकन	18.	वसु विचार
19.	वसुनन्दी उवाच	20.	मीठे प्रवचन (भाग 1)
21.	मीठे प्रवचन (भाग 2)	22.	मीठे प्रवचन (भाग 3)
23.	मीठे प्रवचन (भाग 4)	24.	मीठे प्रवचन (भाग 5)
25.	मीठे प्रवचन (भाग 6)	26.	रोहिणी व्रत कथा
27.	स्वप्न विचार	28.	सद्गुरु की सीख
29.	सफलता के सूत्र	30.	सर्वोदयी नैतिक धर्म
31.	संस्कारादित्य	32.	हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना			
1.	अक्षरातीत	2.	कल्याणी
3.	चैन की जिंदगी	4.	ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5.	मुक्ति दूत के मुक्तक	6.	हाइकू
7.	हीरों का खजाना	8.	सुसंस्कार वाटिका

विधान रचना			
1.	कल्याण मंदिर विधान	2.	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3.	चौसठऋद्धि विधान	4.	णमोकार महार्चना
5.	दुःखों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)	6.	यागमंडल विधान
7.	श्री समवशरण महार्चना	8.	श्री नंदीश्वर विधान
9.	श्री सम्मेदशिखर विधान	10.	श्री अजितनाथ विधान
11.	श्री संभवनाथ विधान	12.	श्री पद्मप्रभ विधान
13.	श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)	14.	श्री चंद्रप्रभ विधान
15.	श्री पुष्पदंत विधान	16.	श्री शांतिनाथ विधान
17.	श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान	18.	श्री नेमिनाथ विधान
19.	श्री महावीर विधान	20.	श्री जम्बूस्वामी विधान

21.	श्री भक्तामर विधान	22.	श्री सर्वतोभद्र महार्चना
23.	श्री पंचमेरू विधान	24.	लघु नंदीश्वर विधान
25.	श्री चौबीसी महार्चना	26.	अभिनव सिद्धचक्र महार्चना
27.	अभिनव सिद्धचक्र मंत्रार्चना		

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य)

1.	आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)	2.	आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य)
3.	आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)	4.	कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	कर्मप्रकृति (सिद्धांतचक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)	6.	गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7.	चार श्रावकाचार संग्रह	8.	जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9.	जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)	10.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र
11.	तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)	12.	तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13.	तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)	14.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15.	तच्च वियारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)	16.	तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17.	धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)	18.	धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19.	ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)	20.	नीतिसारसमुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदीस्वामी जी)
21.	पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)	22.	प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23.	पंचरत्न	24.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्रस्वामी जी)
25.	मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)	26.	भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)
27.	भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)	28.	मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्तिस्वामी जी)
29.	योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबाल चंद्र जी)	30.	योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31.	रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)	32.	वसुऋद्धि
*	रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)	*	स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
*	पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)	*	इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
*	लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)	*	वैराग्यमणिमाला (आ. श्री विशालकीर्ति जी)
*	अर्हत् प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)	*	ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33.	सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगतिस्वामी जी)	34.	सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35.	समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)	36.	समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37.	सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)	38.	विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय)

प्रथमानुयोग साहित्य

1.	अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)	2.	आराधना कथा कोश (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)

3.	करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)	4.	कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	गौतम स्वामी चारित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)	6.	चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7.	चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)	8.	चेलना चरित्र
9.	चंद्रप्रभ चरित्र	10.	चौबीसी पुराण
11.	जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)	12.	त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13.	देशभूषण कुलभूषण चरित्र	14.	धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15.	धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	16.	नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17.	नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)	18.	प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19.	पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)	20.	पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21.	पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)	22.	पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23.	भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)	24.	भद्रबाहु चरित्र
25.	मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	26.	महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27.	महापुराण (भाग 1-2)	28.	महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29.	मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)	30.	यशोधर चरित्र
31.	रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)	32.	रोहिणी व्रत कथा
33.	व्रत कथा संग्रह	34.	वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35.	विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)	36.	वीर वर्धमान चरित्र
37.	श्रेणिक चरित्र	38.	श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39.	श्री जम्बूस्वामी चरित्र (श्री वीर कवि)	40.	शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41.	सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)	42.	सम्यक्त्व कौमुदी
43.	सती मनोरमा	44.	सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45.	सुरसुंदरी चरित्र	46.	सुलोचना चरित्र
47.	सुकुमाल चरित्र	48.	सुशीला उपन्यास
49.	सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बरैया)	50.	सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
51.	हनुमान चरित्र	52.	क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य

1. अरिष्ट निवारक त्रय विधान
   • नवग्रह विधान • वास्तु निवारण विधान • मृत्युंजय विधान (पं. आशाधर जी कृत)
2. श्री जिनसहस्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान
3. श्री जिनसहस्रनाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक
4. शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान
   • भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल) • शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी)
   • सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)

5.	कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)	6.	तत्त्वोपदेश (छहढाला) (पं. प्रवर दौलतराम जी)
7.	दिव्य लक्ष्य (संकलन- हिंदी पाठ, स्तुति आदि)	8.	धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	10.	भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11.	विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)	12.	सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13.	संसार का अंत	14.	स्वास्थ्य बोधामृत
15.	पिच्छि-कमण्डलु (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)		

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1.	आचार्य श्री विद्यानंद जी की यम सल्लेखना (मुनि प्रज्ञानंद)	2.	अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
3.	पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)	4.	वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
5.	दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्व नंदनी, वर्चस्व नंदनी)	6.	स्मृति पटल से भाग-1 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)
7.	स्मृति पटल से भाग-2 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)	8.	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
9.	गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)	10.	परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
11.	स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)	12.	स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
13.	हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)	14.	वसु सुबंधं (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद जी जैन)
15.	समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')		

परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज कृत

जिणवाणी-थुदी

महुरं विसदं पिय-गंभीरं
हिदयरं मिदं सिरिजिणवाणिं।
अणेगंतमयं सिआवायमयं
णिरुवमं समं सिरिजिणवाणिं।
जिणसव्वंगादो णिस्सरिदं
भविचित्तहरं सिरिजिणवाणिं।
बारस-अंगेहिं संजुत्तं
लोएपुज्जं सिरिजिणवाणिं।
कंठादिवचोकारणरहिदं
तयरोयहरं सिरिजिणवाणिं।
जगमंगल्लं जगकल्लाणिं
पणमामि सया सिरिजिणवाणिं।